नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—३२

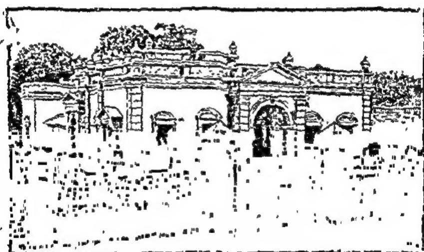
तुलसी-ग्रंथावली

दूसरा खंड

संपादक

रामचंद्र शुक्ल   भगवानदीन

व्रजरत्नदास



गोस्वामी तुलसीदास की त्रिशत जयंती के

अवसर पर

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

१९८०

पहला संस्करण ३०००]   [मूल्य ३॥)

Printed by Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd., Benares-Branch.

ग्रंथ-सूची

रामलला-नहछू

रामलला-नहछू

सोहर छंद

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो॥ १॥
कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो।
देवलोक सब देखहिं आनँद अति हिय हो॥
नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो।
कौसल्या के हर्ष न हृदय समातै हो॥ २॥
आले हि बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो।
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो॥
गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो।
जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो॥ ३॥
गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो।
देइ सुअरघ राम कहँ लेइ बैठाइय हो॥
कनकखंभ चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो।
मानिकदीप बराय बैठि तेहि आसन हो॥ ४॥
बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥
अहिरिनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो॥ ५॥

रूपसलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो ।
जाकी ओर विलोकहि मन तेहि साथहि हो ॥
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो ।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो ॥ ६ ॥
मोचिनि बदन-सकोचिनि हीरा माँगन हो ।
पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो ॥
बतिया कै सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो ।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो ॥ ७ ॥
कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो ।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो ॥
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो ।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो ॥ ८ ॥
कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।
"नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो" ॥
गोद लिहे कौसल्या बैठी रामहि वर हो ।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो ॥ ९ ॥
नाउनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो ।
करि सिंगार अति लोन तौ बिहसति आई हो ॥
कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो ।
आनँद हिय न समाइ देखि रामहि वर हो ॥ १० ॥
काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो ।
गजमुकुता कर हार कंठमनि मोहइ हो ॥
कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो ॥
रानी कै दीन्हीं सारी तौ अधिक बिराजइ हो ॥ ११ ॥
काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो ।
कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥

राम अदहिं दसरथ कै लछिमन आन क हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्रीरघुनाथ क हो ॥ १२ ॥
आजु अवधपुर आनँद नहछू राम क हो।
चलहु नयन भरि देखिय सोभा धाम क हो ॥
अति बड़भाग नउनियाँ छुऐ नख हाथ सों हो।
नैनन्ह करति गुमान तौ श्रीरघुनाथ सों हो ॥ १३ ॥
जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो।
सो पगधूरि सिद्ध मुनि दरसन पावइ हो ॥
अतिसय पुहुप क माल राम-उर सोहइ हो।
तिरछी चितवनि आनँद मुनिमुख जोहइ हो ॥ १४ ॥
नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।
पदुम-पराग-मनिमानहुँ कोमल गातहि हो ॥
जावक रचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो।
प्रभु कर चरन पछालि तौ अति सुकुमारी हो ॥ १५ ॥
भइ निवछावरि बहु विधि जो जस लायक हो।
तुलसिदास बलि जाउँ देखि रघुनायक हो ॥
राजन दीन्हे हाथी, रानिन्ह हार हो।
भरि गे रतनपदारथ सूप हजार हो ॥ १६ ॥
भरि गाड़ी निवछावरि नाऊ लेइ आवइ हो।
परिजन करहिं निहाल असीसत आवइ हो ॥
तापर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहिं हो।
होइ सुखी सब लोग अधिक सुख सोवहिं हो ॥ १७ ॥
गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो।
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥
हिलिमिलि करत सवाँग सभा रसकेलि हो।
नाउनि मन हरषाइ सुगंधन मेलि हो ॥ १८ ॥

दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो ।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो ।।
रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो ।
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो ।। १९ ।।
दसरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहिं हो ।
तुलसिदास बलि जाहि देखि रघुराजहि हो ।।
जे यह नहछू गावैं गाइ सुनावइँ हो ।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो ।। २० ।।

वैराग्य-संदीपिनी

वैराग्य-संदीपिनी

—:※:—

दोहा।

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥
तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुनग्राम।
हृदयकमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि राम ॥ २ ॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ॥ ३ ॥

सोरठा।

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुनरहित जो।
मायापति सोइ राम, दासहेतु नरतनु धरेउ ॥ ४ ॥

दोहा।

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान ॥ ५ ॥
तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रय ताप।
सांति होहि जब सांतिपद, पावै रामप्रताप ॥ ६ ॥
तुलसी वेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र विचार।
यह बिराग-संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार ॥ ७ ॥

(संत-स्वभाव-वर्णन)

दोहा।

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी पहिचानि ॥ ८ ॥

चौपाई ।

अति सीतल अति हीं सुखदाई । सम दम रामभजन अधिकाई ॥
जड़ जीवन को करै सचेता । जग माहीं विचरत एहि हेता ॥ ६ ॥

दोहा ।

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वहु संत ।
परकाजै परमारथी, प्रीति लिये निवहंत ॥ १० ॥
की मुख पट दीन्हें रहै, यथा अर्थ भाषंत ।
तुलसी या संसार में, सो विचारयुत संत ॥ ११ ॥
बोलै वचन विचारि कै, लीन्हें संत सुभाव ।
तुलसी दुख दुर्वचन के, पंथ देत नहिं पाव ॥ १२ ॥
सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी यह मत संत को, बोलै समता माहिं ॥ १३ ॥

चौपाई ।

अति अनन्य गति इँद्रीजीता । जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता ॥
मृगतृष्ना सम जग जिय जानी । तुलसी ताहि संत पहिचानी ॥ १४ ॥

दोहा ।

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
राम-रूप-स्वाती-जलद, चातक तुलसीदास ॥ १५ ॥
सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष ।
तुलसी तृष्ना त्यागि कै, गहेउ सील संतोष ॥ १६ ॥
सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम ॥ १७ ॥
निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून ।
मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोषविहून ॥ १८ ॥
कोमल बानी संत की, स्रवै अमृतमय आइ ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥ १९ ॥

अनुभव सुख-उत्पति करत, भवभ्रम धरै उठाइ।
ऐसी बानी संत की, जो उर भेदै आइ॥ २०॥
सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान॥ २१॥

चौपाई।

प ताप सब सूल नसावै। मोहअंध रविबचन बहावै॥
लसी ऐसे सदगुरु साधू। वेद मध्य गुन विदित अगाधू॥ २२॥

दोहा।

तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं॥ २३॥
मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं।
बचन सुनत मन मोहगत, पूरुब भाग मिलाहिं॥ २४॥
अति कोमल अरु बिमल रुचि, मानस में मल नाहिं।
तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं॥ २५॥
जाके मन ते उठि गई, तिल तिल तृष्ना चाहि।
मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि॥ २६॥
कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥ २७॥

चौपाई।

चन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत॥
लसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रगट राम की देहा॥ २८॥

दोहा।

आकिंचन, इंद्रियदमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे संतजन, बिरले या संसार॥ २९॥
अहंवाद, 'मैं तैं' नहीं, दुष्टसंग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहिं ऊपजै, सुख ते सुख नहिं होइ॥ ३०॥

सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोउ ।
तुलसी या संसार में, कहत संतजन सोइ ॥ ३१ ॥
बिरले बिरले पाइए, मायात्यागी संत ।
तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत ॥ ३२ ॥
"मैं तैं" मेट्यो मोहतम, उगो आतम-भानु ।
संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु ॥ ३३ ॥

(संत-महिमा-वर्णन)

सोरठा ।

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की ।
जिन्हके बिमल बिवेक, सेष महेस न कहि सकत ॥ ३४ ॥

दोहा ।

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ ।
तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ ॥ ३५ ॥
धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रबर सोइ ।
तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु कैसेहु होइ ॥ ३६ ॥
तुलसी जाके बदन तें, धोखेउ निकसत राम ।
ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम ॥ ३७ ॥
तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैनि दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥ ३८ ॥
अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

अति अनन्य जो हरि को दासा । रटै नाम निसि दिन प्रति स्वासा ॥
तुलसी तेहि समान नहिं कोई । हम नीके देखा सब लोई ॥ ४० ॥

जदपि साधु सबही विधि हीना। तद्यपि समता के न कुलीना॥
यह दिन रैनि नाम उच्चरै। वह नित मान-अगिनि में जरै॥ ४१॥

दोहा।

दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि।
तुलसी न्यारे ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि॥ ४२॥

(शांति-वर्णन)

दोहा।

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥ ४३॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग॥ ४४॥

चौपाई।

अमल अदाग शांतिपद सारा। सकल कलेसन करत प्रहारा॥
तुलसी उर धारै जौ कोई। रहै अनंदसिंधु महँ सोई॥ ४५॥
विविध-पाप-संभव जो तापा। मिटहि दोप दुख दुसह कलापा॥
परम सांति सुख रहै समाई। तहँ उतपात न भेदै आई॥ ४६॥
तुलसी ऐसे सीतल संता। सदा रहैं एहि भाँति एकंता॥
कहा करैं खल लोग भुजंगा। कीन्ह्यौ गरलसील जो अंगा॥ ४७॥

दोहा।

अति सीतल अति ही अमल, सकल कामनाहीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन॥ ४८॥

चौपाई।

जौ कोइ कोप भरे मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा-शर पैना॥
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं। सो सीतल कहिए जग माहीं॥ ४९॥

दोहा।

सात दीप नव खंड लौं, तीनि लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ ५०॥

चौपाई।

जहाँ सांति सतगुरु की दई। तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥
सकल कामबासना बिलानी। तुलसी यहै सांति सहिदानी॥ ५१॥
तुलसी सुखद सांति को सागर। संतन गायो करन उजागर॥
तामें तन मन रहै समोई। अहं-अगिनि नहिं दाहै कोई॥ ५२॥

दोहा।

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचैं संतजन, केवल सांति-अधार॥ ५३॥
महा सांतिजल परसि कै, सांत भए जन जोइ।
अहं-अगिनि ते नहि दहैं, कोटि करै जो कोइ॥ ५४॥
तेज होत तन तरनि को, अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥ ५५॥
जद्यपि सीतल, सम सुखद, जग में जीवन प्रान।
तदपि सांतिजल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥ ५६॥

चौपाई।

जरै यरै अरु खीझि खिझावै। राग द्वेष महँ जनम गँवावै॥
सपनेहु सांति नहीं उन देही। तुलसी जहाँ जहाँ व्रत एही॥ ५७॥

दोहा।

सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥ ५८॥
सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेष की हानि॥ ५९॥

चौपाई।

राग द्वेष की अगिनि बुझानी। काम क्रोध वासना नसानी॥
तुलसी जबहिं सांति गृह आई। तब उर ही उर फिरी दोहाई॥ ६० ॥

दोहा।

फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि।
तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि॥ ६१ ॥
यह बिराग-संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित बचन बिचारि कै, जस सुधारि तस देहु॥ ६२ ॥

बरवै रामायण

बरवै रामायण

बाल कांड

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ १ ॥
सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग, सखि! कोमल, कनक कठोर ॥ २ ॥
सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ ॥ ३ ॥
बड़े नयन, कटि, भृकुटी, भाल विसाल।
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल ॥ ४ ॥
चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ ॥ ५ ॥
सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार वेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ६ ॥
साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव?॥ ७ ॥
कुंकुमतिलक भाल, स्रुति कुंडल लोल।
काकपच्छ मिलि, सखि! कस लसत कपोल ॥ ८ ॥
भालतिलक सर, सोहत भौंह कमान।
मुख अनुहरिया केवल चंद समान ॥ ९ ॥
तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि ॥ १० ॥

कामरूप सम तुलसी राम सरूप ।
को कवि समसरि करै परै भवकूप? ॥ ११ ॥

चढ़त दसा यह उतरत जात निदान ।
कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान ॥ १२ ॥

नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन ।
निरखि निसाकर-नृप-मुख भए मलीन ॥ १३ ॥

कमठपीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।
तमकि ताहि ए तोरिहि कहब महेस ॥ १४ ॥

नृप निरास भए निरखत नगर उदास ।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥ १५ ॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥ १६ ॥

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ॥ १७ ॥

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन ।
सिय रघुबर के भए उनींदे नैन ॥ १८ ॥

साँक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन ।
मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन ॥ १९ ॥

अयोध्या कांड

सात दिवस भए साजत सकल बनाउ ।
का पूछहु सुठि राउर सरल सुभाउ ॥ २० ॥

राजभवन सुख विलसत सिय सँग राम ।
बिपिन चले तजि राज, सुविधि बड़ बाम ॥ २१ ॥

कोउ कह नरनारायन, हरिहर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ॥ २२॥
तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।
राम लषन के रूप न देखेउ आन॥ २३॥
तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच।
निगानाँग करि नितहिं नचाइहि नाच॥ २४॥
सजल कठौता कर गहि कहत निषाद।
चढ़हु नाव पग धोइ करहु जनि बाद॥ २५॥
कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ॥ २६॥

(वालमीकि-वचन)

द्वै भुज कर हरि रघुबर सुंदर वेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष॥ २७॥

अरण्य कांड

वेद-नाम कहि, अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥ २८॥
हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ।
हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ॥ २९॥
जटा मुकुट कर सर धनु, संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच॥ ३०॥

(राम-वाक्य)

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ॥ ३१॥

सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि।
किहेसि भँवर कर हरवा हृदय विदारि ॥ ३२ ॥

सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।
अगिनि-ताप ह्वै तम कह सँचरत आइ ॥ ३३ ॥

किष्किंधा कांड

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम ॥
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ३४ ॥

कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ ॥ ३५ ॥

सुंदर कांड

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिँ बुझाइ ॥ ३६ ॥
डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम ॥ ३७ ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ ॥ ३८ ॥
राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार ॥ ३९ ॥

(कपि-वाक्य)

सिय-वियोग-दुख केहि विधि कहउँ बखानि।
फूलबान ते मनसिज बेधत आनि ॥ ४० ॥

सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि ।
विधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि ॥ ४१ ॥

लंका कांड

बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत ।
जलधि सरिस को कहै राम भगवंत ॥ ४२ ॥

उत्तर कांड

चित्रकूट पयतीर सो सुर-तरु-बास ।
लषन राम सिय सुमिरहु तुलसीदास ॥ ४३ ॥
पय नहाइ फल खाहु, परिहरिय आस ।
सीयराम-पद सुमिरहु तुलसीदास ॥ ४४ ॥
स्वारथ परमारथ हित एक उपाय ।
सीयराम-पद तुलसी प्रेम बढ़ाय ॥ ४५ ॥
काल कराल बिलोकहु होइ सचेत ।
रामनाम जपु तुलसी प्रीति समेत ॥ ४६ ॥
संकट सोचबिमोचन, मंगलगेह ।
तुलसी रामनाम पर करिय सनेह ॥ ४७ ॥
कलि नहिं ज्ञान, बिराग, न जोग-समाधि ।
रामनाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ॥ ४८ ॥
रामनाम दुइ आखर हिय हितु जानु ।
राम लषन सम तुलसी सिखब न आनु ॥ ४९ ॥
माय बाप गुरु स्वामि राम कर नाम ।
तुलसी जेहि न सोहाइ ताहि बिधि बाम ॥ ५० ॥

रामनाम जपु तुलसी होइ बिसोक ।
लोक सकल कल्यान, नीक परलोक ॥ ५१ ॥
तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास ।
सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास ॥ ५२ ॥
महिमा रामनाम कै जान महेस ।
देत परम पद कासी करि उपदेस ॥ ५३ ॥
जान आदि-कवि तुलसी नामप्रभाउ ।
उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ ॥ ५४ ॥
कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रतापु ।
कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु ॥ ५५ ॥
तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि ।
बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि ॥ ५६ ॥
रामनाम पर तुलसी नेह निबाहु ।
एहि ते अधिक, न एहि सम जीवनलाहु ॥ ५७ ॥
दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम ।
सकल सुमंगलदायक तुलसी राम ॥ ५८ ॥
केहि गिनती महँ ? गिनती जस बनघास ।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास ॥ ५९ ॥
आगम निगम पुरान कहत करि लीक ।
तुलसी नाम राम कर सुमिरन नीक ॥ ६० ॥
सुमिरहु नाम राम कर, सेवहु साधु ।
तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु ॥ ६१ ॥
कामधेनु हरिनाम, कामतरु राम ।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम ॥ ६२ ॥
तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय ।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय ॥ ६३ ॥

एकहि एक सिखावत जपत आप ।
तुलसी रामप्रेम कर बाधक पाप ॥ ६४ ॥
मरत कहत सब सब कहँ 'सुमिरहु 'राम' ।
तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम ॥ ६५ ॥
तुलसी रामनाम जपु आलस छाँड़ु ।
रामविमुख कलिकाल को भयो न भाँड़ु ॥ ६६ ॥
तुलसी रामनाम सम मित्र न आन ।
जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान ॥ ६७ ॥
नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु ॥ ६८ ॥
जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहि देहु ।
तहँ तहँ राम निबाहिब नामसनेहु ॥ ६९ ॥



पार्वती-मंगल

पार्वती-मंगल

बिनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरिहि, गननाथहि ।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि ॥ १ ॥
गावउँ, गौरि-गिरीस-बिबाह सुहावन ।
पापनसावन, पावन, मुनि-मन-भावन ॥ २ ॥
कबितरीति नहिं जानउँ, कबि न कहावउँ ।
शंकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवावउँ ॥ ३ ॥
पर अपबाद-बिबाद-बिदूषित बानिहि ।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहि ॥ ४ ॥
जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरु दिनु ।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥
गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि ।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर ॥ ७ ॥
मंगलखानि भवानि प्रगट जब तें भइ ।
तब तें रिधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ ॥ ८ ॥
नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं ।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
पितु, मातु, प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं ।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं ॥ १ ॥
कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं ।
गिरिजा-जोग जुरिहि बरु अनुदिन लोचहिं ॥ ९ ॥

एक समय हिमवान भवन नारद गए ।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए ॥ ११ ॥
उमहिं बोलि ऋषिपगन मातु मेलति भइ ।
मुनिमन कीन्ह प्रनाम, वचन आसिप दइ ॥ १२ ॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥ १३ ॥
अति सनेह सतिभाय पाँय परि पुनि पुनि ।
कह मैना मृदु वचन "सुनिय विनती, मुनि ! ॥ १४ ॥
तुम तिभुवन तिहुँकाल विचारविसारद ।
पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद" ॥ १५ ॥
मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥ १६ ॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो विधि दाहिन ॥ १७ ॥
दाहिन भए विधि, सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई ।
वर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगलमई ॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही ।
हिमवानकन्या जोग वर बाउर विबुध बंदित सही ॥ १८ ॥
मोरेहु मन अस आव मिलिहि वर बाउर" ।
लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर ॥ १९ ॥
सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति—
"गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥ २० ॥
नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूपनु ।"
"दोपदलनु" मुनि कहेउ "बाल विधुभूपनु ॥ २१ ॥
अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
कोटि कलपतरु सरिस संभु-अवराधन ॥ २२ ॥

तुम्हरे आस्रम अवहिँ ईस तप साधहिँ ।
कहिय उमहिँ मनु लाइ जाइ अवराधहिँ" ॥ २३ ॥
कहि उपाउ दंपतिहि मुदित मुनिवर गए ।
अति सनेह पितु मातु उमहिं सिखवत भए ॥ २४ ॥
सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि ।
बदति जननि, "जगदीस जुवति जिनि सिरजहि" ॥ २५ ॥
जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि ।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ॥ २६ ॥
भेवहि भगति मन, वचन करम अनन्य गति हरचरन की ।
गौरव सनेहु सँकोच सेवा जाइ केहि विधि वरन की ॥
गुनरूप जोबनसींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिए ।
ते धीर अछत विकारहेतु जे रहत मनसिज बस किए ॥ २७ ॥
देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ ।
कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धायउ ॥ २८ ॥
बामदेय सन काम बाम होइ बरतेउ ।
जग-जय-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ ॥ २९ ॥
रति पतिहीन मलीन बिलोकि बिसूरति ।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ ३० ॥
आसुतोप परितोप कीन्ह बर दीन्हेउ ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ ॥ ३१ ॥
उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गइ ।
कलपबेलि बन बढ़त बिपम हिम जनु दइ ॥ ३२ ॥
समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे ।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३३ ॥
जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं ।
बिलपहिं बाम बिधातहि दोप लगावहिं ॥ ३४ ॥

जो न होहिं मंगलमग सुर विधि बाधक ।
तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक ॥ ३५ ॥
साधक क़लेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों ।
को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम कों ॥
समुझाइ सबहिं दृढ़ाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै ।
लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥ ३६ ॥
फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजापन ।
जेहि अनुरागु लागु, चितु, सोइ हितु आपन ॥ ३७ ॥
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु ।
मुनि-मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु ॥ ३८ ॥
सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु ।
तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु ॥ ३९ ॥
पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन ।
देखि प्रेम ब्रतु नेमु सराहहि सज्जन ॥ ४० ॥
नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु ।
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु ॥ ४१ ॥
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं ।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥ ४२ ॥
नाम अपरना भयो परन जब परिहरे ।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥ ४३ ॥
देखि सराहहिं गिरजहि मुनिवरु मुनि बहु ।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ ॥ ४४ ॥
काहू न देख्यो कहहि यह तपु जोगु फल फल चारि का ॥
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका ।
बटुवेष पेषन पेम पन ब्रत नेम ससिसेखर गए ।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए ॥ ४५ ॥

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय ग्रसि आयउ॥ ४६॥
बंस प्रसंसि, मातु पितु कहि सब लायक।
अमिअ बचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक॥ ४७॥
"देवि! करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब॥ ४८॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर।
तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनागर॥ ४९॥
अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहिं अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ॥ ५०॥
जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय?॥ ५१॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि?"॥ ५२॥
लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ॥ ५३॥
गौरी निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
"तप करहि हरहितु" सुनि बिहँसि बटु कहत "मुरुखाई महा॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो॥ ५४॥
कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहिं॥ ५५॥
भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं॥ ५६॥
भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं॥ ५७॥

सुमुखि सुलोचनि! हर मुखपंच, तिलोचन ।
वामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन ॥ ५८ ॥
एकउ हरहि न वर गुन, कोटिक दूषन ।
नरकपाल, गजखाल, व्याल, विष भूषन ॥ ५९ ॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन ।
कहाँ असंगल वेषु विशेषु भयावन ॥ ६० ॥
जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि ? ।
कहा मोर मन धरि न वरिय वर वौरेहि ॥ ६१ ॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु ।
व्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ॥ ६२ ॥
पछिताव भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै ।
जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ॥
गजअजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै ।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहि 'मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै' ॥६३॥
तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं ।
निरखि नगर नर नारि विहँसि मुख गोइहहिं" ॥ ६४ ॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ? ॥ ६५ ॥
साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ ।
सावनसरिस सिंधुरुख सूप सों घेरइ ॥ ६६ ॥
मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६७ ॥
करनकटुक वटु वचन विसिष सम हिय हए ।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि, अधर फरकत भए ॥ ६८ ॥
बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थरथर ।
"आलि ! विदा करु बटुहि वेगि, बड़ बरबर ॥ ६९ ॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि?।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि ॥ ७० ॥
दोसनिधान, इसानु सत्य सबु भाषेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥ ७१ ॥
को करि बादु बिबादु बिषादु बढ़ावइ?।
मीठ काह कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥ ७२ ॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि।
बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि ॥ ७३ ॥
जनि कहहि कछु बिपरीत जानत प्रीतिरीति न बात की।
सिव-साधु-निंदकु मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी" ॥
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भए प्रगट करुनासिंधु संकर, भाल चंद्र सुहावनो ॥ ७४ ॥
सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मनु मोहइ ॥ ७५ ॥
सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरषु पुलक तनु पूरति ॥ ७६ ॥
पुनि पुनि करै प्रनाम, न आवत कछु कहि।
"देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर, सहि!" ॥ ७७ ॥
जैसे जनमदरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ ॥ ७८ ॥
सफल मनोरथ भयउ, गौरि सोहइ सुठि ॥
घर तें खेलन मनहुँ अबहिं आई उठि ॥ ७९ ॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥ ८० ॥
"हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ।
पार्वती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ ॥ ८१ ॥

श्रब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि ।"
सुनि महेस मृदु वचन पुलकि पाँयन परि ॥ ८२ ॥
परि पाँय सखिमुख कहि जनायो आप बाप-अधीनता ।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रवीनता ॥
हर हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह बिधि मनभावनो ।
आनंद प्रेम समाज मंगलगान बाजु बधावनो ॥ ८३ ॥
सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिरनाइन्हि ।
कीन्ह संभु सनमानु जनमफल पाइन्हि ॥ ८४ ॥
"सुमिरहिँ सुकृत तुम्हहिँ जन तेइ सुकृतीवर ।
नाथ जिन्हहि सुधि करिअ तिन्हहिँ सम तेइ, हर!"॥ ८५ ॥
सुनि मुनिबिनय महेस परम सुख पायउ ।
कथाप्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥ ८६ ॥
"जाहुहिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु ।
जौ मन मान तुम्हार तौ लगन लिखायहु ॥ ८७ ॥
श्ररुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि ।
नारि कुसल इहि काजु, काजु बनि आइहि" ॥ ८८ ॥
"दुलहिनि उमा, ईस बर, साधक ए मुनि ।
बनिहि अवसि यहु काज" गगन भइ अस धुनि ॥ ८९ ॥
भयउ अकनि आनंद महेस मुनीसन्ह ।
देहिँ सुलोचनि सगुन कलस लिए सीसन्ह ॥ ९० ॥
सिव सों कहे दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ ।
चले मुदित मुनिराज गए गिरिबर पहँ ॥ ९१ ॥
गिरिगेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी ।
घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी ॥
सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै ।
रिषि साथ प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै ॥ ९२ ॥

विप्रबृंद सन्मानि पूजि कुलगुरु सुर।
परेउ निसानहिं घाउ, चाउ चहुँ दिसि पुर॥ ९३॥
गिरि, बन, सरित, सिंधु, सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिवर-नायक नेवति पठायउ॥ ९४॥
धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिए।
कँचन चीर उपहार हार मनिगन लिए॥ ९५॥
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।
हरषित लगीं सुवासिनि मंगल गावन॥ ९६॥
तोरन कलस चँवर धुज विविध बनाइन्हि।
हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि॥ ९७॥
गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय।
जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय॥ ९८॥
जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और ही।
रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथक ठौरहि ठौर ही॥
यहि भाँति ब्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रँग-मगे॥ ९९॥
बेगि बुलाइ बिरंचि बँचाइ लगन तब।
कहेन्हि 'बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब'॥ १००॥
बिधि पठए जहँ तहँ सब सिवगन धावन।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन॥ १०१॥
रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले॥ १०२॥
मुदित सकल सिवदूत भूतगन गाजहिं।
सूकर, महिष, स्वान, खर वाहन साजहिं॥ १०३॥
नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं।
अज, उलूक, बृक नाद गीत गन गावहिं॥ १०४॥

रमानाथ, सुरनाथ, साथ सब सुरगन ।
आए जहँ विधि संभु देखि हरषे मन ॥ १०५ ॥
मिले हरिहि हर हरषि सुभाखि सुरेसहिं ।
सुर निहारि सनमानेउ, मोदु महेसहिं ॥ १०६ ॥
बहु विधि बाहन जान विमान बिराजहिं ।
चली बरात निसानु गहागह बाजहिं ॥ १०७ ॥
बाजहिं निसान, सुगान नभ, चढ़ि बसह विधुभूषन चले ।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले ॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे ।
गजछाल, व्याल, कपालमाल विलोकि बर सुर हरि हँसे ॥१०८॥
विबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ ॥ १०९ ॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं ।
बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं ॥ ११० ॥
कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं ।
नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं ॥ १११ ॥
बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा ।
सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा ॥ ११२ ॥
बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत ।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥ ११३ ॥
पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु-अखंडलु ।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि विधुमंडल ॥ ११४ ॥
प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि ।
भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि ॥ ११५ ॥
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत ।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत ॥ ११६ ॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब॥ ११७॥
"प्रेत बैताल बराती, भूत भयानक।
बरद चढ़ा बर बाउर, सबइ सुबानक॥ ११८॥
कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय"॥ ११९॥
समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं।
नारद कै उपदेस कवन घर गे नहिं?॥ १२०॥
घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनिसात स्वारथ सारथी॥
उर लाइ उमहिं अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ "इसान महिमा अगम, निगम न जानई"॥१२१॥
सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चलीं।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गलीं॥ १२२॥
श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमलकर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि॥ १२३॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुंदर सतकोटि मनोज मनोहर॥ १२४॥
नील निचोल छाल भइ, फनि मनिभूषन।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन॥ १२५॥
गन भए मंगलवेष मदन-मनमोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन॥ १२६॥
संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन॥ १२७॥
गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई॥ १२८॥

होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर ।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर ॥ १२९ ॥
पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक ।
इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक ॥ १३० ॥
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति ।
रति सिहाहिँ लखि रूप, गान सुनि भारति ॥ १३१ ॥
भरी भाग अनुराग पुलकतनु मुदमन ॥
मदनमत्त गजगवनि चलीँ बर परिछन ॥ १३२ ॥
बर बिलोकि बिधुगौर सु अंग उजागर ।
करति आरती सासु मगन सुखसागर ॥ १३३ ॥
सुखसिंधुमगन उतारि आरति करि निछावरि निरखि कै ।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चली मंडप हरषि कै ॥
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानि कै ।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडपु आनि कै ॥ १३४ ॥
अरघ देइ मनिआसन बर बैठायउ ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ ॥ १३५ ॥
सपत ऋपिन्ह विधि कहेउ, बिलंब न लाइय ।
लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइय ॥ १३६ ॥
थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ ।
आनहु दुलहिनि बेगि समउ अब आयउ ॥ १३७ ॥
सखी सुवासिनि संग गौरि सुठि सोहति ।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ॥ १३८ ॥
भूषन बसन समय सम सोभा सो भली ।
सुखमा बेलि नवल जनु रूपफलनि फली ॥ १३९ ॥
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि ।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि ॥ १४० ॥

आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं ।
भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥ १४१ ॥
बिप्र बेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि ।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि ॥ १४२ ॥
बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं ।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं ॥ १४३ ॥
लोक-बेद-बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर ।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर ॥ १४४ ॥
पूजे कुलगुरु देव, कलसु सिल सुभ धरी ।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी ॥ १४५ ॥
बंदन बंदि, ग्रंथिबिधि करि, धुव देखेउ ।
भा बिवाह सब कहहिं जनमफल पेखेउ ॥ १४६ ॥
पेखेउ जनमफल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा ।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा ॥
दाइज बसन मनि धेनु धनु हय गय सुसेवक सेवकी ।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी पेव की ॥ १४७ ॥
बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि ।
दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहि ॥ १४८ ॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥ १४९ ॥
जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहि ।
अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि ॥ १५० ॥
सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब बिधि ।
जनवासहि वर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥ १५१ ॥
भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर ।
बैठाए गिरिराज धरम-धरनी-धुर ॥ १५२ ॥

परुसन लगे सुवार, विबुध जन जेवहिं ।
देहिं गारि वर नारि मोद मन भेवहिं ॥ १५३ ॥
करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह ।
जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥ १५४ ॥
भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ ॥ १५५ ॥
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि ।
कीन्हि बड़ाई विनय सनेह-सुहावनि ॥ १५६ ॥
गहि सिवपद कह सासु विनय मृदु मानवि ।
गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानवि ॥ १५७ ॥
भेँटि बिदा करि बहुरि भेँटि पहुँचावहि ।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं ॥ १५८ ॥
उमा मातुमुख निरखि नयन जल मोचहिं ।
'नारि जनमु जग जाय' सखी कहि सोचहिं ॥ १५९ ॥
भेँटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन ।
बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन ॥ १६० ॥
संकर गौरि समेत गए कैलासहि ।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि ॥ १६१ ॥
उमा महेस बियाह-उछाह भुवन भरे ।
सबके सकल मनोरथ विधि पूरन करे ॥ १६२ ॥
प्रेमपाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि ।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ॥ १६३ ॥
मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो ।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा-सार सो ॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं ।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥ १६४ ॥

जानकी-मंगल

जानकी-मंगल

मंगल छंद

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि स्रुति संत सरल मति॥ १॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय-रघुबीर-बिबाहु जथामति गावौं॥ २॥
सुभ दिन रच्यो स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय-रघुनायक॥ ३॥
देस सुहावन पावन बेद बखानिय।
भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय॥ ४॥
तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर॥ ५॥
जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक।
सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक॥ ६॥
भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ।
सीय सुता भै जासु सकल मंगलमइ॥ ७॥
नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुरु परिजन।
करि मत रचेउ स्वयंबर सिवधनु धरि पन॥ ८॥
पन धरेउ सिवधनु रचि स्वयंबर अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी।
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं॥
सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहि आवहीं॥ ९॥

जानकी-मंगल

मंगल छंद

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकवि स्रुति संत सरल मति॥ १॥
हाथ जोरि करि विनय सवहि सिर नावौं।
सिय-रघुबीर-विवाहु यथामति गावौं॥ २॥
सुभ दिन रच्यौ स्वयंवर मंगलदायक।
सुनत स्रवन हिय वसहिं सीय-रघुनायक॥ ३॥
देस सुहावन पावन वेद वखानिय।
भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय॥ ४॥
तहँ वस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सव सुखसागर॥ ५॥
जनक नाम तेहि नगर वसै नरनायक।
सव गुनअवधि, न दूसर पटतर लायक॥ ६॥
भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ।
सीय सुता भै जासु सकल मंगलमइ॥ ७॥
नृप लखि कुँवरि सयानि वोलि गुरु परिजन।
करि मत रचेउ स्वयंवर सिवधनु धरि पन॥ ८॥
पन धरेउ सिवधनु रचि स्वयंवर अति रुचिर रचना वनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सव आपनी।
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं॥
सव साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं॥ ९॥

रूप सील वय बंस बिरुद बल दल भले।
मनहुँ पुरंदरनिकर उतरि अवनी चले॥ १०॥
दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन।
सुनि धरि धरि नृपवेष चले प्रमुदित मन॥ ११॥
एक चलहि, एक बीच, एक पुर पैठहिं।
एक धरहि धनु धाय नाइ सिर बैठहि॥ १२॥
रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि।
ललकि लोभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं॥ १३॥
जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत।
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत॥ १४॥
गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ।
सीय-बियाह-उछाह जाइ कहि का पहँ?॥ १५॥
गाधिसुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ।
नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ॥ १६॥
पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन।
कहेउ भूप "मोहिं सरिस सुकृत किए काहु न"॥ १७॥
'काहू न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं।
महिपाल मुनि को मिलनसुख महिपाल मुनि मन जानहीं॥
अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं।
हिय हरषि सुतन्ह समेत रानी आइ ऋषिपायन्ह परीं॥ १८॥
कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भईं।
सींचीं मनहुँ सुधारस कलपलता नईं॥ १९॥
रामहिं भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ।
नैन नीर, तनु पुलक, रूप मन मोहेउ॥ २०॥
परसि कमलकर सीस हरषि हिय लावहि।
प्रेमपयोधि-मगन मुनि, पार न पावहि॥ २१॥

मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं।
बार बार दसरथ के सुकृत सराहहिं ॥ २२ ॥
राउ कहेउ कर जोरि सुबचन सुहावन ॥
"भयउँ कृतारथ आजु देखि पद पावन ॥ २३ ॥
तुम्ह प्रभु पूरनकाम, चारि-फल-दायक ॥
तेहि तें बूझत काजु डरौं मुनिनायक" ॥ २४ ॥
कौसिक सुनि नृपबचन सराहेउ राजहि ॥
धर्मकथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहि ॥ २५ ॥
जबहिं मुनीस महीसहि काज सुनायउ ॥
भयउ सनेह-सत्य-बस उतर न आयउ ॥ २६ ॥
आयउ न उतरु बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समुझायऊ।
कहि गाधिसुत तपतेज कछु रघुपतिप्रभाउ जनायऊ ॥
धीरजु धरेउ गुरुबचन सुनि कर जोरि कह कोसलधनी।
"करुनानिधान सुजान प्रभु सों उचित नहिं बिनती घनी ॥२७॥
नाथ मोहिं बालकन्ह सहित पुर परिजन।
राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन" ॥ २८ ॥
दीन बचन बहु भाँति भूप मुनि सन कहे।
सौंपि राम अरु लखन पाँयपंकज गहे ॥ २९ ॥
पाइ मातु-पितु-आयसु गुरु पाँयन परे।
कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे ॥ ३० ॥
पुरबासी नृप रानिन संग दिये मन।
बेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनंदन ॥ ३१ ॥
ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु।
न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु ॥ ३२ ॥
चलत सकल पुरलोग बियोग बिकल भए।
सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए ॥ ३३ ॥

होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ ।
राम लपन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ ॥ ३४ ॥
स्यामल गौर किसोर मनोहरतानिधि ।
सुखमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि ॥ ३५ ॥
बिरचे बिरंचि बनाइ बाँचो रुचिरता रंचौ नहीं ।
दसचारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कही ॥
ऋषि संग सोहत जात मगु छबि बसति सो तुलसी हिए ।
कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए ॥ ३६ ॥
गिरि तरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं ।
धावहि बाल सुभाय, बिहँग मृग रोकहिं ॥ ३७ ॥
सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं ।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं ॥ ३८ ॥
देखि बिनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर ।
करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥ ३९ ॥
बधी ताड़का; राम जानि सब लायक ।
बिद्या-मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक ॥ ४० ॥
मग-लोगन्ह के करत सफल मन लोचन ।
गए कौसिक आस्रमहिं बिप्र-भय-मोचन ॥ ४१ ॥
मारि निसाचर-निकर यज्ञ करवायउ ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ ॥ ४२ ॥
बिप्र साधु सुरकाज महामुनि मन धरि ।
रामहिं चले लिवाइ धनुपमख मिसु करि ॥ ४३ ॥
गौतमनारि उधारि पठै पतिधामहिं ।
जनकनगर लै गयउ महामुनि रामहि ॥ ४४ ॥
लै गयउ रामहि गाधिसुवन बिलोकि पुर हरषे हिए ।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर लिए ॥

नृप गहे पाँय; असीस पाइ मान आदर अति किए।
अवलोकि रामहिं अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन दिए ॥ ४५ ॥
देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥ ४६ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर ॥ ४७ ॥
पुन्यपयोधि मातुपितु ए सिसु सुरतरु।
रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु ॥ ४८ ॥
"केहि सुकृती के कुँवर" कहिय मुनिनायक।
"गौर स्याम छबिधाम धरे धनुसायक ॥ ४९ ॥
बिषयबिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहि देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ" ॥ ५० ॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि, "महिपालक!
ए परमारथरूप ब्रह्ममय बालक ॥ ५१ ॥
पूषन-बंस-बिभूषन दसरथनंदन।
नाम राम अरु लषन सुरारिनिकंदन" ॥ ५२ ॥
रूप सील बय बंस राम परिपूरन।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥ ५३ ॥
लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै।
लै चले देखावन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै ॥
कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक सुनि हरषित भए।
तब राम लषन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए ॥ ५४ ॥
राजत राजसमाज जुगल रघुकुलमनि।
मनहुँ सरदबिधु उभय, नखत धरनीधनि ॥ ५५ ॥
काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुहलोचन।
गौर स्याम सत-कोटि-काम-मद-मोचन ॥ ५६ ॥

तिलक ललित सर, भ्रुकुटी काम-कमानै ।
स्रवन विभूपन रुचिर देखि मन मानै ॥ ५७ ॥
नासा चिवुक कपोल अधर रद सुंदर ।
बदन सरद-विधु-निंदक सहज मनोहर ॥ ५८ ॥
उर विसाल वृपकंध सुभग भुज अति वल ।
पीत वसन उपवीत, कंठ मुकुताफल ॥ ५९ ॥
कटि निपंग, कर-कमलन्हि धरं धनुसायक ।
सकल अंग मनमोहन जोहन लायक ॥ ६० ॥
राम-लपन-छवि देखि मगन भए पुरजन ।
उर आनँद, जल लोचन, प्रेम पुलक तन ॥ ६१ ॥
नारि परस्पर कहहिं देखि दुहुँ भाइन्ह ।
"लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह ॥ ६२ ॥
जग जनमि लोचनलाहु पाए" सकल सिवहि मनावहीं ।
"वर मिलौ सीतहि साँवरो हम हरपि मंगल गावहीं" ॥
एक कहहिं "कुँवर किसोर कुलिस-कठोर सिवधनु है महा ।
किमि लेहिं बाल मराल मंदर नृपहिं अस काहु न कहा" ॥६३॥
भे निरास सब भूप विलोकत रामहिं ।
"पन परिहरि सिय देब जनक बर स्यामहिं" ॥ ६४ ॥
कहहिं एक "भलि बात, व्याहु भल होइहि ।
वर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि" ॥ ६५ ॥
सुचि सुजान नृप कहहिं "हमहि अस सूझइ ।
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ ॥ ६६ ॥
चितइ न सकहु रामतन, गाल बजावहु ।
विधि बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु ॥ ६७ ॥
अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि ।
गवनिहि राजसमाज नाक असि फूटिहि ॥ ६८ ॥

कस न पियहु भरि लोचन रूप-सुधा-रसु ।
करहु कृतारथ जनम, होहु कत नरपसु" ॥ ६९ ॥
दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिवर ।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर ॥ ७० ॥
काकपच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि ।
लाल कमल जनु लालत बालमनोजनि ॥ ७१ ॥
"मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू ।
बिनु काज राजसमाज महँ तजि लाज आपु बिगोवहू" ॥
सिख देइँ भूपनि साधु भूप अनूप छबि देखन लगे ।
रघुबंस कैरवचंद चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे ॥ ७२ ॥
पुर-नर-नारि निहारहि रघुकुलदीपहि ।
दोसु नेहबस देहिं बिदेह महीपहि ॥ ७३ ॥
एक कहहिं "भल भूप, देहु जनि दूषन ।
नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन ॥ ७४ ॥
हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ ।
पनमिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ ॥ ७५ ॥
अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि ।
सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि ॥ ७६ ॥
प्रथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहि ।
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहिं ॥ ७७ ॥
अब करि पैज पंच महँ जो पन त्यागै ।
बिधिगति जानि न जाइ, अजसु जग जागै ॥ ७८ ॥
अजहुँ अवसि रघुनंदन चाप चढ़ाउब ।
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब" ॥ ७९ ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपतिभामिनि ।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि ॥ ८० ॥

जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुंदरि सोहहीं ।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं ॥
सियमातु हरषी निरखि सुखमा अति अलौकिक राम की ।
हिय कहति "कहँ धनु कुँवर कहँ बिपरीत गति बिधि बाम की" ॥८१॥

कहि प्रिय वचन सखिन्ह सन रानि बिसूरति ॥
"कहाँ कठिन सिवधनुष कहाँ मृदु मूरति ॥ ८२ ॥
जौ बिधि लोचनअतिथि करत नहिं रामहिं ।
तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं ॥ ८३ ॥
अब असमंजस भयउ न कछु कहि आवै" ।
रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै ॥ ८४ ॥
"देवि! सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय ।
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय ॥ ८५ ॥
तीनि काल कर ज्ञान कौसिकहि करतल ।
सो कि स्वयंबर आनहि बालक बिनु बल ?" ॥ ८६ ॥
मुनिमहिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ ।
तब सुबाहु-सूदन-जसु सखिन सुनायउ ॥ ८७ ॥
सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरखइ ।
बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन परखइ ॥ ८८ ॥
नृप रानी पुरलोग रामतन चितवहिं ।
मंजु मनोरथ-कलस भरहिं अरु रितवहिं ॥ ८९ ॥

रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु छिनु निरखि रामहि सोचहीं ।
नर नारि हरष-बिषाद-बस हिय सकल सिवहि सकोचहीं ॥
तब जनकआयसु पाइ कुलगुरु जानकिहि लै आयऊ ।
सिय रूपरासि निहारि लोचनलाहु लोगन्हि पायऊ ॥ ९० ॥

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं ।
देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिं ॥ ९१ ॥

रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील-कमल-सर-स्रेनि मयन जनु डारइ॥ ९२॥
छिनु सीतहि छिनु रामहि पुरजन देखहिं।
रूप सील बय बंस बिसेष बिसेषहिं॥ ९३॥
राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥ ९४॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं॥ ९५॥
रामसीय बय, समौ, सुभाय सुहावन।
नृप जोवन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥ ९६॥
सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै?॥ ९७॥
तब बिदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ॥ ९८॥
नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।
टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए॥
इक करहिं दाप, न चाप सज्जनबचन जिमि टारे टरै।
नृप नहुष ज्यों सब के बिलोकत बुद्धिबल बरबस हरै॥ ९९॥
देखि सपुर परिवार जनकहिय हारेउ।
नृपसमाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ॥ १००॥
कौसिक जनकहि कहेउ "देहु अनुसासन।
देखि भानु-कुल-भानु इसानु-सरासन"॥ १०१॥
"मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं॥ १०२॥
बानु बानु जिमि गयउ, गवहिं दसकंधरु।
को अवनीतल इन्ह सम बीरधुरंधरु॥ १०३॥

पारबती-मन सरिस अचल धनुचालक ।
हहिं पुरारि तेउ एक-नारि-ब्रत-पालक ॥ १०४ ॥
सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि ।
भेद कि सिरिस सुमन कनकुलिस कठोरहि ॥ १०५ ॥
रोम रोम छबि निंदति सोम मनोजनि ।
देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि" ॥ १०६ ॥
मुनि हँसि कहेउ "जनक यह मूरति सो हइ ।
सुमिरत सकृत मोहमल सकल बिछोहइ ॥ १०७ ॥
सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू ।
धनुसिंधु नृप-बल-जल बढ़ो रघुबरहि कुंभज लेखहू ॥
सुनि सकुचि सोचहिँ जनक गुरु पद बंदि रघुनंदन चले ।
नहिं हरप हृदय विषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले ॥ १०८॥
बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं ।
मुदित जनक पुर-परिजन नृप गन लाजहिं ॥ १०९ ॥
महि महिधरनि लषन कह बलहि बढ़ावन ।
राम चहत सिवचापहि चपरि चढ़ावन ॥ ११० ॥
गए सुभाय राम जब चाप समीपहि ।
सोच सहित परिवार बिदेह महीपहि ॥ १११ ॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ ।
गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सकोचइ ॥ ११२ ॥
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहिं ।
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहिं ॥ ११३ ॥
धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहिंन ।
बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन ॥ ११४ ॥
अंतरजामी राम मरम सब जानेउ ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ ॥ ११५ ॥

प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृग-राज-किसोर महा गज गंजेउ॥ ११६॥
गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।
रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥
हित मुदित, अनहित रुदित मुख, छबि कहत कबि धनुजाग की।
जनु भोर चक्र चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥ ११७॥
नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे।
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे॥ ११८॥
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत।
चलीं लेवाइ जानकिहि भा मनभावत॥ ११९॥
कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ?॥ १२०॥
सीय सनेह-सकुच-बस पियतन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥ १२१॥
लसत ललित करकमल माल पहिरावत।
कामफंद जनु चंदहि बनज फँदावत॥ १२२॥
राम-सीय-छबि निरुपम, निरुपम सो दिनु।
सुखसमाज लखि रानिन्ह आनँद छिनु छिनु॥ १२३॥
प्रभुहि माल पहिराइ जानकिहि लै चली।
सखी मनहुँ बिधु-उदय मुदित कैरव-कली॥ १२४॥
बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुरु पहिं गय॥ १२५॥
गए राम गुरु पहिं, राउ रानी नारि नर आनँद भरे।
जनु तृषित करि-करिनी-निकर सीतल सुधासागर परे॥
कौसिकहि पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहि अवध पठायऊ॥१२६॥

गुनि गन बोलि कहेउ नृप माड़व छावन ।
गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन ॥ १२७ ॥
सीय-राम-हित पूजहिं गौरि गनेसहि ।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ॥ १२८ ॥
प्रथम हरदि बेदन करि मंगल गावहिं ।
करि कुलरीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं ॥ १२९ ॥
गे मुनि अवध, बिलोकि सुसरित नहायउ ।
सतानंद सत-कोटि-नाम-फल पायउ ॥ १३० ॥
नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ ।
दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ ॥ १३१ ॥
सुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं ।
सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहिं ॥ १३२ ॥
राउ छाँड़ि सब काज साज सब साजहिं ।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहिं ॥ १३३ ॥
बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि ।
सियनैहर जनकौर नगर नियराइन्हि ॥ १३४ ॥
नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए ।
देखत परस्पर मिलत, मानत, प्रेमपरिपूरन भए ॥
आनंद पुर कौतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ ।
लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ ॥ १३५ ॥
गे जनवासहि कौसिक रामलखन लिए ।
हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए ॥ १३६ ॥
हृदय लाइ लिए गोद मोद अति भूपहि ।
कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहि ॥ १३७ ॥
राय कौसिकहि पूजि दान बिप्रन्ह दिए ।
राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए ॥ १३८ ॥

ब्याह-विभूषन-भूषित भूषन-भूषन ।
✓ बिस्वबिलोचन, बनजविकासक पूषन ॥ १३९ ॥
मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ ।
मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ ॥ १४० ॥
पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह ।
देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन्ह ॥ १४१ ॥
बेदबिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर ।
पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित उर ॥ १४२ ॥
जाइ कहेउ "पगु धारिय" मुनि अवधेसहि ।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि ॥ १४३ ॥
चले सुमिरि गुरु सुर सुमन बरषहिं, परे बहु बिधि पाँवड़े ।
सनमानि सब बिधि जनक दसरथ किए प्रेम कनावड़े ॥
गुन सकल सम समधी परस्पर मिलत अति आनँद लहे ।
जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे ॥१४४॥
तीनि लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ ।
दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ ॥ १४५ ॥
सजहिं सुमंगल साज रहस रनिवासहिं ।
गान करहिं पिकबैनि सहित परिहासहिं ॥ १४६ ॥
उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं ।
कपट नारि-बर-बेष बिरंचि मंडप गईं ॥ १४७ ॥
मंगल आरति साजि बरहिं परिछन चलीं ।
जनु बिगसीं रवि-उदय कनक-पंकज-कलीं ॥ १४८ ॥
नख सिख सुंदर रामरूप जब देखहिं ।
सब इंद्रिन्ह महँ इंद्रबिलोचन लेखहिं ॥ १४९ ॥
परम प्रीति कुलरीति करहिं गजगामिनि ।
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि ॥ १५० ॥

नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहिँ ।
निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिँ ॥ १५१ ॥
करि आरती निछावरि वरहिँ निहारहिँ ।
प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिँ ॥ १५२ ॥
नहिँ तनु सम्हारहिँ, छवि निहारहिँ निमिषरिपु जनु रन जए।
चकवै-लोचन रामरूप-सुराज-सुख भोगी भए ॥
तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए ।
कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अंबर नए ॥ १५३ ॥
देत अरघ रघुवीरहि मंडप लै चलीं ।
करहिं सुमंगल गान उमँगि आनँद अलीं ॥ १५४ ॥
वर विराज मंडप महँ विस्व विमोहइ ।
ऋतु वसंत वनमध्य मदन जनु सोहइ ॥ १५५ ॥
कुल-बिवहार, बेदविधि चाहिय जहँ जस ।
उपरोहित दोउ करहिँ मुदित मन तहँ तस ॥ १५६ ॥
बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन ।
चलीं दुलहिनिहिं ल्याइ पाइ अनुसासन ॥ १५७ ॥
जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ ॥ १५८ ॥
दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरपहिँ ।
छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर बरपहिं ॥ १५९ ॥
लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिँ ।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिँ ॥ १६० ॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ ।
कन्यादान विधान संकलप कीन्हेउ ॥ १६१ ॥
संकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभामई ।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दई ॥

सिंदूरबंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी।
सिलपोहनी करि मोहनी मन हर्‌यौ मूरति साँवरी ॥ १६२ ॥
यहि विधि भयो विवाह उछाह तिहूँ पुर।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर ॥ १६३ ॥
मनभावत विधि कीन्ह, मुदित भामिनि भईं।
बर दुलहिनिहि लेवाइ सखीं कोहबर गईं ॥ १६४ ॥
निरखि निछावरि करहिं बसन मनि छिनु छिनु।
जाइ न बरनि बिनोद मोदमय सो दिनु ॥ १६५ ॥
सियभ्राता के समय भौम तहँ आयउ।
दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ ॥ १६६ ॥
चतुर नारिबर कुँवरिहि रीति सिखावहिं।
देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं ॥ १६७ ॥
जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति-हारि-मिस देहिं गारि दुहुँ रानिन्ह ॥ १६८ ॥
सीयमातु मन मुदित उतारति आरति।
को कहि सकइ अनंद मगन भइ भारति ॥ १६९ ॥
जुवति जूथ रनिवास रहस-बस यहि विधि।
देखि देखि सिय राम सकल मंगलनिधि ॥ १७० ॥
मंगलनिधान बिलोकि लोयन-लाह लूटति नागरी।
दइ जनक तीनिहु कुँवरि कुँवर बिवाहि सुनि आनँदभरी ॥
कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छवि मन मोहई।
सुरधेनु, ससि, सुरमनि सहित मानहुँ कलपतरु सोहई ॥१७१॥
जनक-अनुज-तनया दुइ परम मनोरम।
जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति सय सम ॥ १७२ ॥
सिय लघुभगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि।
लषन-अनुज श्रुतिकीरति सब-गुन-आगरि ॥ १७३ ॥

रामविवाह समान ब्याह तीनिउ भए ।
जीवनफल, लोचनफल विधि सब कहँ दए ॥ १७४ ॥
दाइज भयउ विविध विधि, जाइ न सो गनि ।
दासी, दास, बाजि, गज, हेम, बसन, मनि ॥ १७५ ॥
दान मान परमान प्रेम पूरन किए ।
समधी सहित बरात बिनय बस करि लिए ॥ १७६ ॥
गे जनवासेहि राउ, संग सुत सुतवहु ।
जनु पाए फल चारि सहित साधन चहुँ ॥ १७७ ॥
चहुँ प्रकार जेंवनार भई बहु भाँतिन्ह ।
भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह ॥ १७८ ॥
देहिँ गारि वर नारि नाम लै दुहुँ दिसि ।
जेंवत बढ़ेउ अनंद, सोहावनि सो निसि ॥ १७९ ॥
सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने बाजहिं भले ।
नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहि चले ॥
नट भाट मागध सूत जाचक जस प्रतापहि बरनहीं ।
सानंद भूसुर-बृंद मनि गज देत मन करषैं नहीं ॥ १८० ॥
करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह ।
जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह ॥ १८१ ॥
'प्रात बरात चलिहि' सुनि भूपतिभामिनि ।
परि न बिरहबस नींद, बीति गइ जामिनि ॥ १८२ ॥
खरभर नगर, नारि नर विधिहि मनावहिं ।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिँ ॥ १८३ ॥
सकल चलन के साज जनक साजत भए ।
भाइन्ह सहित राम तब भूपभवन गए ॥ १८४ ॥
सासु उतारि आरती करहिं निछावरि ।
निरखि निरखि हिय हरषहि मूरति साँवरि ॥ १८५ ॥

माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी ।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी ॥ १८६ ॥
सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं ।
बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं ॥ १८७ ॥
"तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन ।
अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन ॥ १८८ ॥
जन जानि करब सनेह, बलि" कहि दीन बचन सुनावहीं ।
अति प्रेम बारहिं बार रानी बालकन्हि उर लावहीं ॥
सिय चलत पुरजन नारि हय गय बिहँग मृग ब्याकुल भए ।
सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंसमनि पितु पहिं गए ॥१८९॥
परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहि चले ।
सुरगन बरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले ॥ १९० ॥
जनक जानकिहि भेंटि सिखाइ सिखावन ॥
सहित सचिव गुरु बंधु चले पहुँचावन ॥ १९१ ॥
प्रेम पुलकि कह राय "फिरिय अब राजन ॥"
करत परस्पर बिनय सकल गुनभाजन ॥ १९२ ॥
कहेउ जनक कर जोरि "कीन्ह मोहिं आपन ॥
रघु-कुल-तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन ॥ १९३ ॥
बिलग न मानब मोर जो बोलि पठायउँ ॥
प्रभुप्रसाद जस जाति सकल सुख पायउँ" ॥ १९४ ॥
पुनि बसिष्ठ आदिक मुनि बंदि महीपति ॥
गहि कौसिक के पाँय कीन्हि बिनती अति ॥ १९५ ॥
भाइन्ह सहित बहोरि बिनव रघुबीरहि ॥
गदगद, कंठ नयन जल, उर धरि धीरहि ॥ १९६ ॥
"कृपासिंधु सुखसिंधु सुजान-सिरोमनि ।
तात! समय सुधि करबि छोह छाड़ब जनि ॥ १९७ ॥

जनि छाँह छाँड़ब विनय सुनि रघुबीर बहु विनती करी।
मिलि भेंटि सहित सनेह फिरेउ विदेह मन धीरज धरी॥
सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे।
तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे॥ १६८॥

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किए॥ १६६॥
राम कीन्ह परितोप रोप रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥ २००॥
रघुबर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख बिधि सब भाँतिन्ह॥२०१॥
एहि विधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ।
मगलोगनि सुख देत अवधपति आयउ॥ २०२॥
होहिं सुमंगल सगुन सुमन सुर बरपहिं।
नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरपहिं॥ २०३॥
घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहि।
बीथी सींचि सुगंध सुमंगल गावहि॥ २०४॥
चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहि।
विविध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं॥ २०५॥
बंदनवार वितान पताका घर घर।
रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर॥ २०६॥

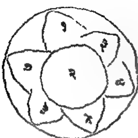
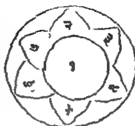
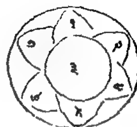
मंगल विटप मंजुल विपुल दधि दूब अच्छत रोचना।
भरि थार आरति सजहिं सब सारंग-सावक-लोचना॥
मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी।
सजि साजि परिछन चलीं रामहिं मत्त-कुंजरगामिनी॥ २०७॥

बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहि॥ २०८॥

करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरीं ।
दुलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय-निधि परीं ॥ २०९ ॥
देत पाँवड़े अरघ चलीं लै सादर ।
उमगि चलेउ आनंद भुवन भुइँ बादर ॥ २१० ॥
नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं ।
नैनलाहु लहि जनम सफल करि लेखहि ॥ २११ ॥
भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए ।
बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए ॥ २१२ ॥
जाचक कीन्ह निहाल असीसहि जहँ तहँ ।
पूजे देव पितर सब राम-उदय कहँ ॥ २१३ ॥
नेगचार करि दीन्ह सबहि पहिरावनि ।
समधी सकल सुआसिनि गुरुतिय पावनि ॥ २१४ ॥
जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं ।
मनहुँ कुमुद बिधु-उदय मुदित मन बिकसहिं ॥ २१५ ॥
बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई ।
एहि जुगुति राजबिबाह गावहिं सकल कबि कीरति नई ॥
उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं ।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिनु पावहीं ॥ २१६ ॥

रामाज्ञा-प्रश्न

रामाज्ञा-प्रश्न

अष्टोत्तर सत कमल फल, मुष्टी तीनि प्रमान।
सप्त सप्त तजि सेष को, राखै सब बिलगान॥
प्रथम सर्ग जो सेष रह, दूजे सप्तक होइ।
तीजे दोहा जानिए, सगुन बिचारब सोइ॥

प्रथम सर्ग

सप्तक—१

बानि बिनायकु अंब रबि, गुरु हर रमा रमेस।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देस बिदेस॥ १॥
गुरु सरसइ सिंधुरबदन, ससि सुरसरि सुरगाइ।
सुमिरि चलहु मग मुदित मन, होइहि सुकृत सहाइ॥ २॥

गिरा गौरि गुरु गनप हर, मंगल मंगलमूल।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल ॥ ३ ॥
भरत भारती रिपुदवनु, गुरु गनेस बुधवार।
सुमिरत सुलभ सुधरम फल, विद्या विनय विचार ॥ ४ ॥
सुरगुरु गुरु सिय राम गन, राउ गिरा उर आनि।
जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल खानि ॥ ५ ॥
सुक्र सुमिरि गुरु सारदा, गनपु लपनु हनुमान।
करिय काज सबु साजु भल, निपटहि नीक निदान ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरि लपन हनुमान।
काजु विचारेहु सो करहु, दिनु दिनु बड़ कल्यान ॥ ७ ॥

सप्तक–२

दसरथ राज न ईति-भय, नहिं दुख दुरित दुकाल।
प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख सदा सुकाल ॥ १ ॥
कौसल्यापद नाइ सिर, सुमिरि सुमित्रापाय।
करहु काज मंगल कुसल, विधि हरि संभु सहाय ॥ २ ॥
विधिबस बन मृगया फिरत, दीन्ह अंध मुनि साप।
सो सुनि विपति विषाद बड़, प्रजहि सोकु संताप ॥ ३ ॥
सुतहित बिनती कीन्हि नृप, कुलगुरु कहा उपाउ।
होइहि भल संतान सुनि, प्रमुदित कोसलराउ ॥ ४ ॥
पुत्रजागु करवाइ ऋषि, राजहि दीन्ह प्रसाद।
सकल-सुमंगल-मूल जग, भूसुर-आसिरवाद ॥ ५ ॥
रामजनम घर घर अवध, मंगल गान निसान।
सगुन सुहावन होइ सुव, मंगल-मोद-निधान ॥ ६ ॥
रामु भरतु सानुज लपन, दसरथ बालक चारि।
तुलसी सुमिरत सगुन सुभ, मंगल कहव पचारि ॥ ७ ॥

सप्तक—३

भूप भवन भाइन्ह सहित, रघुबर बाल बिनोद ।
सुमिरत सब कल्यान जग, पग पग मंगल मोद ॥ १ ॥
करनवेध चूड़ाकरन, श्रीरघुबर-उपवीत ।
समय सकल कल्यानमय, मंजुल मंगल गीत ॥ २ ॥
भरत सत्रुसूदन लपन, सहित सुमिरि रघुनाथ ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलहि सुमंगल साथ ॥ ३ ॥
रामु लपनु कौसिक सहित, सुमिरहु करहु पयान ।
लच्छि-लाभ जय जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान ॥ ४ ॥
मुनि मखपाल कृपाल प्रभु, चरनकमल उर आनु ।
तजहु सोच संकट मिटिहि, सत्य सगुन जिय जानु ॥ ५ ॥
हानि मीचु दारिद दुरित, आदि-अंत-गत बीच ।
राम बिमुख अघ आपने, गए निसाचर नीच ॥ ६ ॥
सिला-साप-मोचन चरन, सुमिरहु तुलसीदास ।
तजहु सोच संकट मिटिहि, पूजिहि मन कै आस ॥ ७ ॥

सप्तक—४

सीय-स्वयंबर समउ भल, सगुन साध सब काज ।
कीरति बिजय बिवाह बिधि, सकल सुमंगल साज ॥ १ ॥
राजत राजसमाज महँ, राम भंजि भवचाप ।
सगुन सुहावन लाभु बड़, जय पर-सभा प्रताप ॥ २ ॥
लाभ मोद मंगल अवधि, सिय रघुबीर बिवाहु ।
सकल सिद्धिदायक समउ, सुभ सब काज उछाहु ॥ ३ ॥
कोसलपालक बाल उर, सिय मेली जयमाल ।
समउ सुहावन सगुन भल, मुद मंगल सब काल ॥ ४ ॥

हरपि बिबुध बरषहिं सुमन, मंगल गान निसान।
जय जय रविकुल-कमल-रवि, मंगल-मोद-निधान ॥ ५ ॥
सतानंद पठये जनक, दसरथ सहित समाज।
आये तिरहुति सगुन सुभ, भए सिद्ध सब काज ॥ ६ ॥
दसरथ पूरन परब-बिधु, उदित समय संजोग।
जनकनगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रमुदित लोग ॥ ७ ॥

सप्तक—५

मन मलीन मानी महिप, कोक कोकनद बृंद।
सुहृद समाज चकोर चित, प्रमुदित परमानंद ॥ १ ॥
तेहि अवसर रावन-नगर, असगुन असुभ अपार।
होहिँ हानि-भय-मरन-दुख-सूचक बारहि बार ॥ २ ॥
मधु माधव दसरथ जनक, मिलब राज ऋतुराज।
सगुन सुवन नव दल सुतरु, फूलत फलत सुकाज ॥ ३ ॥
बिनय-पराग सुप्रेम रस, सुमन सुभग संवाद।
कुसुमित काज रसाल तरु, सगुन सुकोकिल-नाद ॥ ४ ॥
उदित भानुकुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस।
गए गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये महेस ॥ ५ ॥
चारि चारु दसरथ कुँवर, निरखि मुदित पुर लोग।
कोसलेस मिथिलेस को, समउ सराहन जोग ॥ ६ ॥
एक बितान बिवाहि सब, सुवन सुमंगल रूप।
तुलसी सहित समाज सुख, सुकृत-सिंधु दोउ भूप ॥ ७ ॥

सप्तक—६

दाइज भयउ अनेक विधि, सुनि सिहाहिँ दिसिपाल ।
सुख संपति संतोषमय, सगुन सुमंगल-माल ॥ १ ॥
वर दुलहिनि सब परसपर, मुदित पाइ मनकाम ।
चारु चारि जोरी निरखि, दुहुँ समाज अभिराम ॥ २ ॥
चारिउ कुँवर वियाहि पुर, गवने दसरथ राउ ।
भए मंजु मंगल सगुन, गुरु-सुर-संभु-पसाउ ॥ ३ ॥
पंथ परसुधर आगमनु, समय सोच सब काहु ।
राजसमाज विषाद बड़, भयवस मिटा उछाहु ॥ ४ ॥
रोष कलुष लोचन भ्रुकुटि, पानि परसु धनु बान ।
काल कराल विलोकि मुनि, सब समाज बिलखान ॥ ५ ॥
प्रभुहिं सौंपि सारंग मुनि, दीन्ह सुआसिरबाद ।
जय मंगल सूचक सगुन, राम-राम-संवाद ॥ ६ ॥
अवध अनंद बधावनो, मंगल गान निसान ।
तुलसी तोरन कलस पुर, चँवर पताक वितान ॥ ७ ॥

सप्तक—७

साजि सुमंगल आरती, रहस विवस रनिवासु ।
मुदित मातु परिछन चलीं, उमगत हृदय हुलासु ॥ १ ॥
करहिँ निछावरि आरती, उमगि उमगि अनुराग ।
बर दुलहिनि अनुरूप लखि, सखी सराहहिँ भाग ॥ २ ॥
मुदित नगर नर नारि सब, सगुन सुमंगल मूल ।
जय धुनि मुनि सुर दुंदुभी, बाजहिँ बरषहिँ फूल ॥ ३ ॥
आए कोसलपाल पुर, कुसल समाज समेत ।
समउ सुनत सुमिरत सुखद, सकल सिद्धि सुभ देत ॥ ४ ॥

रूप सील बय बंसगुन, सम बिवाह भये चारि ।
मुदित राउ रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि ॥ ५ ॥
बिधि हरि हर अनुकूल अति, दसरथ राजहि आजु ।
देखि सराहत सिद्ध सुर, संपति समउ समाजु ॥ ६ ॥
सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम ।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गंगा राम ॥ ७ ॥

द्वितीय सर्ग

सप्तक—१

समय राम-जुबराज कर, मंगल-मोद-निकेतु।
सगुन सुहावन संपदा, सिद्धि सुमंगल हेतु ॥ १ ॥
सुर-माया-बस केकयी, कुसमय कीन्हि कुचालि।
कुटिल नारि मिस होइ छलु, अनभल आजु कि कालि ॥ २ ॥
कुसमय कुसगुन कोटि सम, राम-सीय-बनबास।
अनरथ अनभल-अवधि जग, जानब सरबस-नास ॥ ३ ॥
सोचत पुर परिजन सकल, बिकल राउ रनिवास।
छल-मलीन मन तीयमिस, बिपति बिषाद बिनास ॥ ४ ॥
लषन-राम-सिय-बनगमनु, सकल अमंगल मूल।
सोच पोच संताप बस, कुसमय संसय सूल ॥ ५ ॥
प्रथम बास सुरसरि-निकट, सेवा कीन्हि निषाद।
कहब सुभासुभ सगुन फल, बिसमय हरष बिषाद ॥ ६ ॥
चले नहाइ प्रयाग प्रभु, लषन सीय रघुराज।
तुलसी जानब सगुन फल, होइहि साधु समाज ॥ ७ ॥

सप्तक—२

सीय रामु लोने लषनु, तापस-बेष अनूप।
तप तीरथ जप जाग हित, सगुन सुमंगल रूप ॥ १ ॥
सीता लषन समेत प्रभु, जमुना उतरि नहाइ।
चले सकल संकट समन, सगुन सुमंगल पाइ ॥ २ ॥

अवध सोक-संताप बस, विकल सकल नर नारि।
बाम बिधाता राम बिनु, माँगत मीचु पुकारि॥ ३॥
लपन सीय रघुबंसमनि, पथिक पाय उर आनि।
चलहु अगम मग सुगम सुभ, सगुन सुमंगल खानि॥ ४॥
ग्राम-नारि-नर मुदित मन, लपन राम सिय देखि।
होइ प्रीति पहिचान बिनु, मान बिदेस बिसेपि॥ ५॥
बन मुनिगन रामहिं मिलहिं, मुदित सुकृत फल पाइ।
सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ॥ ६॥
चित्रकूट पयतीर प्रभु, बसे भानुकुल-भानु।
तुलसी तप जप जोग हित, सगुन सुमंगल जानु॥ ७॥

सप्तक—३

हंसबंस-अवतंस जब, कीन्ह बास पथ पास।
तापस साधक सिद्ध मुनि, सब कहँ सगुन सुपास॥ १॥
बिटप बेलि फूलहिं फलहिं, जल थल बिमल बिसेपि।
मुदित किरात बिहंग मृग, मंगल-मूरति देखि॥ २॥
सींचति सीय सरोज-कर, बये बिटप बट बेलि।
समउ सुकालु किसानहित, सगुन सुमंगल केलि॥ ३॥
हय हाँके फिरि दखिन दिसि, हेरि हेरि हिहिनात।
भये निपाद बिपाद-बस, अवध सुमंतहि जात॥ ४॥
सचिव सोच व्याकुल सुनत, असगुन अवध प्रवेस।
समाचार सुनि सोकबस, माँगी मीचु नरेस॥ ५॥
राम राम कहि राम सिय, रामसरन भये राउ।
सुमिरहु सीता राम अब, नाहिंन आन उपाउ॥ ६॥
रामबिरह दसरथमरनु, मुनि मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन-तरु, सुचि सनेह जल सींचु॥ ७॥

सप्तक—४

धीर बीर रघुबीर प्रिय, सुमिरि समीरकुमारु।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचारु ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रुसूदन-चरन, सगुन सुमंगल मानि।
परपुर बाद-बिबाद-जय, जूझ जुआ जय जानि ॥ २ ॥
सेवक सखा सुबंधु हित, सगुन बिचारु बिसेषि।
भरत नाम गुनगन बिमल, सुमिरि सत्य सब लेषि ॥ ३ ॥
साहिब समरथ सीलनिधि, सेवत सुलभ सुजान।
राम सुमिरि सेइय सुप्रभु, सगुन कहब कल्यान ॥ ४ ॥
सुकृत-सील-सोभा-अवधि, सीय सुमंगल खानि।
सुमिरि सगुन तियधरम हित, कहब सुमंगल जानि ॥ ५ ॥
ललित लषनमूरति हृदय, आनि धरें धनुबान।
करहु काज सुभ सगुन सब, मुद मंगल कल्यान ॥ ६ ॥
रामनाम पर रामते, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस ॥ ७ ॥

सप्तक—५

गुरु आयसु आए भरत, निरखि नगर-नर-नारि।
सानुज सोचत पोच बिधि, लोचन मोचत बारि ॥ १ ॥
भूप-मरन प्रभु-बन-गवनु, सब बिधि अवध अनाथ।
रोवत समुझि कुमातु-कृत, मींजि हाथ धुनि माथ ॥ २ ॥
वेद-विहित पितु-करम करि, लिये संग सब लोग।
चले चित्रकूटहिं भरत, व्याकुल राम-बियोग ॥ ३ ॥
रामदरसु हिय हरषु बड़, भूपति मरन बिषादु।
सोचत सकल समाज सुनि, राम-भरत-संवादु ॥ ४ ॥

सुनि सिप आसिप, पाँवरी, पाइ, नाइ पद माथ ।
चले अवध संतापबस, बिकल लोग सब साथ ॥ ५ ॥
भरत-नेम व्रत धरम सुभ, रामचरन-अनुराग ।
सगुन समुझि साहस करिय, सिद्ध होइ जप जाग ॥ ६ ॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभुसिय लपन समेत ।
रामनाम-जप जापकहि, तुलसी अभिमत देत ॥ ७ ॥

सप्तक—६

पय पावनि, बनभूमि भलि, सैल सुहावन पीठ ।
रागिहि सीठ बिसेपि थलु, बिषय-बिरागिहि मीठ ॥ १ ॥
फटिक-सिला मंदाकिनी, सिय-रघुबीर-बिहार ।
रामभगत हित सगुन सुभ, भूतल भगतिभँडार ॥ २ ॥
सगुन सकल-संकट-समन, चित्रकूट चलि जाहु ।
सीता-राम-प्रसाद सुभ, लघु साधन बड़ लाहु ॥ ३ ॥
दिये अत्रितिय जानकिहि, बसन बिभूपन भूरि ।
रामकृपा संतोष सुख, होहिं सकल दुख दूरि ॥ ४ ॥
काककुचालि, बिराधबध, देह तजी सरभंग ।
हानि-मरन-सूचक सगुन, अनरथ-असुभ-प्रसंग ॥ ५ ॥
राम लपन मुनिगन मिलन, मंजुल मंगल-मूल ।
सत समाज तब होइ जब, रमा राम अनुकूल ॥ ६ ॥
मिले कुंभसंभव मुनिहि, लपन सीय रघुराज ।
तुलसी साधु-समाज-सुख, सिद्ध दरस सुभ काज ॥ ७ ॥

सप्तक—७

सुनि मुनि आयसु प्रभु कियो, पंचवटी बसबास ।
भइ महि पावनि परसि पद, भा सब भाँति सुपास ॥ १ ॥

सरित सरोवर सजल सब, जलज विपुल बहुरंग ।
समउ सुहावन सगुन सुभ, राजा प्रजा प्रसंग ॥ २ ॥
विटप बेलि फूलहिं फलहिं, सीतल सुखद समीर ।
मुदित विहँग मृग मधुप गन, बनपालक दोउ बीर ॥ ३ ॥
मोदाकर गोदावरी, विपिन सुखद सब काल ।
निर्भय मुनि जप तप करहिं, पालक राम कृपाल ॥ ४ ॥
भेंट गीध रघुराज सन, दुहुँ दिसि हृदय हुलासु ।
सेवक पाइ सुसाहिवहि, साहिव पाइ सुदासु ॥ ५ ॥
पढ़हिं पढ़ावहिं मुनितनय, आगम निगम पुरान ।
सगुन सुविद्या लाभहित, जानब समय समान ॥ ६ ॥
निजकर सींचति जानकी, तुलसी लाइ रसाल ।
सुभ दूती उनचास भलि, बरषा कृषी सुकाल ॥ ७ ॥

तृतीय सर्ग

सप्तक–१

संतकथन पावन-करन, चरन-सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं, खल तरहिं, होइँ रंक तें राउ ॥ १ ॥
कपटरूप मन-मलिन गइ, सूपनखा प्रभु पास।
कुसगुन कठिन कुनारि-फल, कलह कलुष उपहास ॥ २ ॥
नाक कान बिनु बिकल भइ, बिकट कराल कुरूप।
कुसगुन, पाउ न देव मग, पग पग कंटक कूप ॥ ३ ॥
खर दूषन देखी दुखित, चले साजि सब साज।
अनरथ असगुन अघ असुभ, अनभल अखिल अकाज ॥ ४ ॥
कटु कुठाय करटा रटहिं, फेकरहिं फेरु कुभाँति।
नीच निसाचर मीचु-बस, अनी मोहमद माति ॥ ५ ॥
राम-रोष-पावक प्रबल, निसिचर सलभ समान।
लरत परत जरि जरि मरत, भये भसम जगु जान ॥ ६ ॥
सीता लषन समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास।
हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमंगल बास ॥ ७ ॥

सप्तक–२

सुभट सहस चौदह सहित, भाइ कालबस जानि।
सूपनखा लंकहि चली, असुभ अमंगल-खानि ॥ १ ॥
बसन सकल सोनित-समल, बिकट बदन गत गात।
रोवति रावन की सभा, तात मात, हा! भ्रात ॥ २ ॥

काल कि मूरति कालिका, कालराति विकराल ।
बिनु पहिचाने लंकपति, सभा सभय तेहि काल ॥ ३ ॥
सूपनखा सब भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल ।
समय साढ़साती सरिस, नृपहि प्रजहि प्रतिकूल ॥ ४ ॥
परबस गवनत रावनहिं, असगुन भए अपार ।
मीचु गनत नहिं मीचुबस, मिलि मारीच बिचार ॥ ५ ॥
इत रावन, उत राम-कर, मीचु जानि मारीच ।
कपट कनक-मृग-बेष तब, कीन्ह निसाचर नीच ॥ ६ ॥
पंचबटी बट बिटपतर, सीता लषन समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु, सकल सुमंगल देत ॥ ७ ॥

सप्तक—३

मायामृग पहिचानि प्रभु, चले सीयरुचि जानि ।
बंचक चोर प्रपंचकृत, सगुन कहब हितहानि ॥ १ ॥
सीयहरन अवसर सगुन, भय संसय संताप ।
नारि काजहित निपट गत, प्रगट पराभव पाप ॥ २ ॥
गीधराज रावन समर, घायल बीर बिराज ।
सूर सुजसु संग्राम महि, मरनु सुसाहिब काज ॥ ३ ॥
राम लषनु बन बन बिकल, फिरत सीय सुधि लेत ।
सूचत सगुन बिषादु बड़, असुभ अरिष्ट अचेत ॥ ४ ॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय सुधि कहि 'सिय राम' कहि, तजी देह मतिधीर ॥ ५ ॥
दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज ।
सोचत बंधुसमेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराज ॥ ६ ॥
तुलसी सहित सनेह नित, सुमिरहु सीताराम ।
सगुन सुमंगल सुभ सदा, आदि मध्य परिनाम ॥ ७ ॥

सप्तक-४

सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु ।
कीरति विजय विभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रुसूदन चरन, चलहु करहु सब काज ।
सत्रु-पराजय निज विजय, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
भरत नाम सुमिरत मिटहिं, कपट कलेस कुचालि ।
नीति प्रीति परतीति हित, सगुन सुमंगल सालि ॥ ३ ॥
रामनाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानंद ॥ ४ ॥
सीताचरन प्रनामु करि, सुमिरि सुनामु सनेम ।
सुतिय होहिं पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥ ५ ॥
लपन ललित मूरति मधुर, सुमिरहु सहित सनेह ।
सुख संपति कीरति विजय, सगुन सुमंगल गेह ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी मंजरी, मंगल मंजुल मूल ।
देखत सुमिरत सगुन सुभ, कलपलता फल फूल ॥ ७ ॥

सप्तक-५

खलबल अंध कबंध बस, परे सुबंधु समेत ।
सगुन सोच संकट कहव, भूत प्रेत दुख देत ॥ १ ॥
पाई नीच सुमीचु भलि, मिटा महामुनि साप ।
बिहँगमरन, सिय सोचु भल, सगुन सभय संताप ॥ २ ॥
कहि सवरी सब सीय-सुधि, प्रभु सराहि फल खात ।
सोच समय संतोष सुनि, सगुन सुमंगल बात ॥ ३ ॥
पवनसुवन सन भेंट भइ, भूमिसुता सुधि पाइ ।
सोचविमोचन सगुन सुभ, मिला सुसेवक आइ ॥ ४ ॥

राम लखन हनुमान मन, दुहुँ दिसि परम उछाहु ।
मिला सुसाहिब सेवकहि, प्रभुहि सुसेवक लाहु ॥ ५ ॥
कीन्ह सखा सुग्रीव प्रभु, दीन्हि बाहँ रघुबीर ।
सुभ सनेह हित सगुन फलु, मिटइ सोच भयभीर ॥ ६ ॥
चले बालि बलसालि दलि, सखा कीन्ह कपिराज ।
तुलसी राम कृपालु को, बिरद गरीबनेवाज ॥ ७ ॥

सप्तक—६

बंधुबिरोध न कुसल कुल, कुसगुन कोटि कुचालि ।
रावनरवि को राहु सो, भयो कालवस बालि ॥ १ ॥
कीन्ह वास बरषा निरखि, गिरिवर सानुज राम ।
काज बिलंबित सगुन फल, होइहि भल परिनाम ॥ २ ॥
सीय-सोध कपि भालु सब, बिदा किये कपिनाथ ।
जतन करहु आलस तजहु, नाइ रामपद माथ ॥ ३ ॥
हनूमान हिय हरषि तब, राम जोहारे जाइ ।
मंगलमूरति मारुतिहि, सादर लीन्ह बुलाइ ॥ ४ ॥
डाँटे बानर भालु सब, अवधि गये बिन काज ।
जो आइहि सो कालबस, कोपि कहा कपिराज ॥ ५ ॥
ज्ञान-सिरोमनि जानि जिय, कपि बल-बुद्धि-निधानु ।
दीन्हि मुद्रिका मुदित प्रभु; पाइ मुदित हनुमानु ॥ ६ ॥
तुलसी करतल सिद्धि सब, सगुन सुमंगल साज ।
करि प्रनाम रामहिं चलहु, साहस सिद्ध सुकाज ॥ ७ ॥

सप्तक—७

नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुहँ मेलि ।
चलेउ सुमिरि सारंगधर, आनिहि सिद्धि सकेलि ॥ १ ॥

संग नील नल कुमुद गद, जामवंतु जुवराज।
चले रामपद नाइ सिर, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
पैठि बिवर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फलु खाइ।
सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ ॥ ३ ॥
बनचर बिकल बिषाद-बस, देखि उदधि अवगाह।
असमंजस बड़ सगुन गत, बिधिबस होइ निबाह ॥ ४ ॥
सब सभीत संपाति लखि, हहरे हृदय हरास।
कहत परस्पर गीध-गति, परिहरि जीवन-आस ॥ ५ ॥
नव तनु पाइ देखाइ प्रभु, महिमा कथा सुनाइ।
धरहु धीर साहसु करहु, मुदित सीय-सुधि पाइ ॥ ६ ॥
तुलसी रामप्रभाउ कहि, मुदित चले संपाति।
सुभ तीसर उनचास भल, सगुन सुमंगल पाँति ॥ ७ ॥

चतुर्थ सर्ग

सप्तक—१

रामजनम सुभ सगुन भल, सकल सुकृत सुखसारु।
पुत्रलाभ कल्यानु बड़, मंगलचारु बिचारु॥ १॥
दसरथ कुलगुरु की कृपा, सुतहित जाग कराइ।
पायस पाइ बिभाग करि, रानिन्ह दीन्ह बुलाइ॥ २॥
सब सगरभ सोहहिं सदन, सकल सुमंगलखानि।
तेज प्रताप प्रसन्नता, रूप न जाहिं बखानि॥ ३॥
देखि सुहावन सपन सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कहहिं भूप सन मुदित मन, हर्ष न हृदय समाइ॥ ४॥
सपन सगुन सुनि राउ कह, कुलगुरु-आसिरबाद।
पूजिहि सब मनकामना, संकर गौरिप्रसाद॥ ५॥
मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह बार।
सकल सुमंगल मूल जग, राम लीन्ह अवतार॥ ६॥
भरत लषन रिपुदवन सब, सुवन सुमंगल मूल।
प्रगट भये नृप सुकृतफल, तुलसी बिधि अनुकूल॥ ७॥

सप्तक—२

घर घर अवध बधावने, मुदित नगर-नर-नारि
बरषि सुमन हरषहिं बिबुध, बिधि त्रिपुरारि मुरारि॥ १॥
मंगलगान निसान नभ, नगर मुदित नरनारि।
भूप-सुकृत-सुरतरु निरखि, फरे चारु फल चारि॥ २॥
पुत्रकाज कल्यान नृप, दिये दान बहु भाँति।
रहस बिबस रनिवास सब, मुद मंगल दिन राति॥ ३॥

अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद ।
मुदित मातु पितु लोग लखि, रघुबर बालविनोद ॥ ४ ॥
करनबेध चूड़ाकरन, लौकिक वैदिक काज ।
गुरु-आयसु भूपति करत, मंगल साज समाज ॥ ५ ॥
राज-अजिर राजत रुचिर, कोसलपालक बाल ।
जानु-पानि-चर चरित वर, सगुन सुमंगल माल ॥ ६ ॥
लहे मातु पितु भागवस, सुत जग जलधि ललाम ।
पुत्र-लाभ-हित सगुन सुभ, तुलसी सुमिरहु राम ॥ ७ ॥

सप्तक—३

बाल विभूषन बसन धर, धूरि-धूसरित अंग ।
बालकेलि रघुबर करत, बालबंधु सब संग ॥ १ ॥
राम भरत लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभ नाम ।
सुमिरत दसरथसुवन सब, पूजहिं सब मनकाम ॥ २ ॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ ।
ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ ॥ ३ ॥
सुदिन साधि मंगल किये, दिये भूप ब्रतबंध ।
अवध बधाव बिलोकि सुर, बरषत सुमन सुगंध ॥ ४ ॥
भूपति भूसुर भाट नट, जाचक पुर-नर-नारि ।
दिये दान सनमानि सब, पूजे कुल-अनुहारि ॥ ५ ॥
सखी सुआसिनि विप्रतिय, सनमानी सब राय ।
ईस मनाय असीस सुभ, देहिँ सनेह सुभाय ॥ ६ ॥
रामकाज कल्यान सब, सगुन सुमंगल मूल ।
चिरजीवहु तुलसीस सब, कहि सुर बरषहिं फूल ॥ ७ ॥

सप्तक—४

रामजनम सुभकाज सब, कहत देवऋषि आइ ।
सुनि सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अमाइ ॥ १ ॥
भरतु स्यामतन राम सम, सब गुन रूपनिधान ।
सेवक सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २ ॥
ललित लाहु लोने लषनु, लोयन-लाहु निहारि ।
सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि ॥ ३ ॥
मंगलमूरति मोदनिधि, मधुर मनोहर बेष ।
राम-अनुग्रह पुत्रफल, होइहि सगुन बिसेष ॥ ४ ॥
सोधत मख महि जनकपुर, सीय सुमंगलखानि ।
भूपति पुन्य-पयोधि जनु, रमा प्रगट भइ आनि ॥ ५ ॥
नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमा-सील-निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥ ६ ॥
बालक कोसलपाल के, सेवकपाल कृपाल ।
तुलसी मनमानस बसत, मंगल मंजु मराल ॥ ७ ॥

सप्तक—५

जनकनंदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आइ ।
तब तें सब सुख संपदा, अधिक अधिक अधिकाइ ॥ १ ॥
सीय स्वयंबर जनकपुर, सुनि सुनि सकल नरेस ।
आए साज समाज सजि, भूषन बसन सुदेस ॥ २ ॥
चले मुदित कौसिक अवध, सगुन सुमंगल साथ ।
आए सुनि सनमानि गृह, आने कोसलनाथ ॥ ३ ॥
सादर सोरह भाँति नृप, पूजि पहुनई कीन्हि ।
बिनय बड़ाई देखि मुनि, अभिमत आसिष दीन्हि ॥ ४ ॥

मुनि माँगे दसरथ दिये, रामु लखनु दोउ भाइ।
पाइ सगुन फल सुकृत-फल, प्रमुदित चले लेवाइ॥ ५॥
स्यामल गौर किसोर वर, धरे तून धनुबान।
सोहत कौसिक सहित मग, मुद मंगल कल्यान॥ ६॥
सैल सरित सर बाग बन, मृग विहंग बहुरंग।
तुलसी देखत जात प्रभु, मुदित गाधिसुत संग॥ ७॥

सप्तक—६

लेत बिलोचन-लाभु सब, बड़भागी मगलोग।
रामकृपा दरसनु सुगम, अगम जाग जप जोग॥ १॥
जलदछाँह मृदु मग अवनि, सुखद पवन अनुकूल।
हरषत बिबुध बिलोकि प्रभु, बरषत सुरतरु-फूल॥ २॥
दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिष आसिष दीन्हि।
विद्या बिस्वामित्र सब, सुथल समरपित कीन्हि॥ ३॥
अभय किए मुनि राखि मखु, धरे बान धनु भाथ।
धनु मख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ॥ ४॥
गौतमतिय-तारन चरन, कमल आनि उर देषु।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल सगुन विसेषु॥ ५॥
जनक पाइ प्रिय पाहुने, पूजे पूजन जोगु।
बालक कोसलपाल के, देखि मगन पुरलोगु॥ ६॥
सनमाने आने सदन, पूजे अति अनुराग।
तुलसी मंगल सगुन सुभ, भूरि भलाई भाग॥ ७॥

सप्तक—७

कौसिक देखन धनुष मख, चले संग दोउ भाइ।
कुँवर निरखि पुर नारि नर, मुदित नयनफल पाइ॥ १॥

भूपसभा भवचाप दलि, राजत राजकिसोर ।
सिद्धि सुमंगल सगुन सुभ, जय जय जय सब ओर ॥ २ ॥
जयमय मंजुल माल उर, मंगलमूरति देषि ।
गान निसान प्रसून झरि, मंगल मोद बिसेषि ॥ ३ ॥
समाचार सुनि अवधपति, आए सहित समाज ।
प्रीति परस्पर मिलत मुद, सगुन सुमंगल साज ॥ ४ ॥
गान निसान बितान घर, बिरचे बिबिध बिधान ।
चारि बिवाह उछाह बड़, कुसल काज कल्यान ॥ ५ ॥
दाइज पाइ अनेक बिधि, सुत सुतबधुन समेत ।
अवधनाथु आए अवध, सकल सुमंगल लेत ॥ ६ ॥
चौथ चारु उनचास पुर, घर घर मंगलचार ।
तुलसिहि सब दिन दाहिने, दसरथ राजकुमार ॥ ७ ॥

पंचम सर्ग

सप्तक—१

रामनाम कलि कामतरु, रामभगति सुरधेनु।
सगुन सुमंगल मूल जग, गुरु-पद-पंकज-रेनु ॥ १ ॥
जलधि-पार मानस अगम, रावन-पालित लंक।
सोच विकल कपि भालु सब, दुहुँ दिसि संकट संक ॥ २ ॥
जामवंत हनुमंत बलु, कहा पचारि पचारि।
राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये न हारि ॥ ३ ॥
रामकाज लगि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।
होइ पुत्र फलु सगुन सुभ, राम भगतु बलवान ॥ ४ ॥
कहत उछाहु बढ़ाइ कपि, साथी सकल प्रबोधि।
लागत रामप्रसाद मोहिं, गोपद सरिस पयोधि ॥ ५ ॥
राखि तोपि सबु साथ सुभ, सगुन सुमंगल पाइ ॥
कूदि कुधर चढ़ि आनि उर, सीय सहित दोउ भाइ ॥ ६ ॥
हरषि सुमन बरषत बिबुध, सगुन सुमंगल होत।
तुलसी प्रभु लंघेउ जलधि, प्रभुप्रताप करि पोत ॥ ७ ॥

सप्तक—२

राहुमातु माया-मलिन, मारी मारुतपूत।
समय सगुन मारग मिलहिं, छल मलीन खल धूत ॥ १ ॥
पूजा पाइ मिनाक पहिं, सुरसा कपि संबादु।
मारग अगम सहाय सुभ, होइहि रामप्रसादु ॥ २ ॥

लंका लोलुप लंकिनी, काली काल कराल ।
काल करालहि दीन्हि बलि, कालरूप कपिकाल ॥ ३ ॥
मसकरूप दसकंधपुर, निसि कपि घर घर देषि ।
सीय विलोकि असोक तर, हरप विषाद विसेषि ॥ ४ ॥
फरकत मंगल अंग सिय, बाम विलोचन बाहु ।
त्रिजटा सुनि कह सगुन फल, प्रिय सँदेस बड़ लाहु ॥ ५ ॥
सगुन समुझि त्रिजटा कहति, सुनु, सिय! अयहाँ आजु ।
मिलिहि रामसेवक कहिहि, कुसल लपनु रघुराजु ॥ ६ ॥
तुलसी प्रभु गुनगन वरनि, आपनि बात जनाइ ।
कुसल खेम सुग्रीवपुर, रामु लपनु दोउ भाइ ॥ ७ ॥

सप्तक—३

सुरुष जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत ।
दीन्हि मुद्रिका, लीन्हि सिय, प्रीति प्रतीति समेत ॥ १ ॥
पाइ नाथ कर मुद्रिका, सियहिय हरप विषादु ।
प्राननाथ प्रिय सेवकहि, दीन्ह सुआसिरबादु ॥ २ ॥
नाथ-सपथ पन रोपि कपि, कहत चरन सिरु नाइ ।
नहिं बिलंब, जगदंव ! अब, आइ गयें दोउ भाइ ॥ ३ ॥
समाचार कहि सुनत प्रभु, सानुज सहित सहाय ।
आए अब रघुबंसमनि, सोचु परिहरिय माय ॥ ४ ॥
गए सोच संकट सकल, भए सुदिन जिय जानु ।
कौतुक सागर सेतु करि, आये कृपानिधानु ॥ ५ ॥
सकुल सदल जमराजपुर, चलन चहत दसकंधु ।
काल न देखत कालवस, बीस-बिलोचन-अंधु ॥ ६ ॥
आसिप आयसु पाइ कपि, सीयचरनु सिर नाइ ।
तुलसी रावन-बाग-फल, खात बराइ बराइ ॥ ७ ॥

सप्तक—४

सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीरकुमार ।
सुमिरत सब सुख संपदा, मुद-मंगल-दातार ॥ १ ॥
सत्रुसमन पद-पंकरुह, सुमिरि करहु सब काज ।
कुसल खेम कल्यान सुभ, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
भरत भलाई की अवधि, सील सनेह निधान ।
धरम भगति भायप समय, सगुन कहब कल्यान ॥ ३ ॥
सेवकपाल कृपालचित, रबिकुल-कैरवचंद ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, पग पग परमानंद ॥ ४ ॥
सियपद सुमिरि सुतीय हित, सगुन सुमंगल जान ।
स्वामि सोहागिल, भाग बड़, पुत्रकाजु कल्यान ॥ ५ ॥
लछिमन पदपंकज सुमिरि, सगुन सुमंगल पाइ ।
जय बिभूति कीरति कुसल, अभिमत लाभु अघाइ ॥ ६ ॥
तुलसी कानन कमलबन, सकल सुमंगल बास ।
राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत तुलसीदास ॥ ७ ॥

सप्तक—५

रूख निपातत, खात फल, रच्छक अच्छ निपाति ।
कालरूप बिकराल कपि, सभय निसाचर जाति ॥ १ ॥
बनु उजारि जारेउ नगर, कूदि कूदि कपिनाथ ।
हाहाकार पुकार सब, आरत मारत माथ ॥ २ ॥
पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाय ।
खेम कुसल जय जानकी, जय जय जय रघुराय ॥ ३ ॥
सुनि प्रमुदित रघुबंसमनि, सानुज सेन समेत ।
चले सकल मंगल सगुन, बिजय सिद्धि कहि देत ॥ ४ ॥

रामपयान निसान नभ, बाजहिं गाजहिँ बीर ।
सगुन सुमंगल समर जय, कीरति कुसल सरीर ॥ ५ ॥
कृपासिंधु प्रभु सिंधु सन, माँगेउ पंथु न देत ।
विनय न मानहिं जीव जड़, डाटे नवहिं अचेत ॥ ६ ॥
लाभु लाभु लोवा कहत, छेमकरी कह छेम ।
चलत विभीषन सगुन सुनि, तुलसी पुलकत पेम ॥ ७ ॥

सप्तक—६

पाहि पाहि असरन-सरन, प्रनतपाल रघुराज ।
दियो तिलक लंकेसु कहि, राम गरीबनेवाज ॥ १ ॥
लंक असुभ चरचा चलति, हाट, बाट, घर, घाट ।
रावन सहित समाज अब, जाइहि बारह बाट ॥ २ ॥
ऊकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार ।
उदित केतु, गतहेतु महि, कंपति बारहिं बार ॥ ३ ॥
रामकृपा कपि भालु करि, कौतुक सागर सेतु ।
चले पार बरषत विबुध, सुमन सुमंगल हेतु ॥ ४ ॥
नीच निसाचर मीचु-बस, चले साजि चतुरंग ।
प्रभु-प्रताप-पावक प्रबल, उड़ि उड़ि परत पतंग ॥ ५ ॥
साजि साजि वाहन चलहिं, जातुधानु बलवानु ।
असगुन असुभ न गनहिं गत, आइ कालु नियरानु ॥ ६ ॥
लरत भालु कपि सुभट सब, निदरि निसाचर घोर ।
सिर पर समरथ राम सो, साहिब, तुलसी तोर ॥ ७ ॥

सप्तक—७

मेघनादु, अतिकाय भट, परे महोदर खेत ।
रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंगु अचेत ॥ १ ॥

उठि विसाल विकराल बड़, कुंभकरनु जमुहान ।
लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुहान ॥ २ ॥
राम स्याम वारिद सघन, बसन सुदामिनि माल ।
वरपत सर हरपत विबुध, दला दुकालु दयाल ॥ ३ ॥
राम रावनहि परसपर, होति रारि रन घोर ।
लरत पचारि पचारि भट, समर सोर दुहुँ ओर ॥ ४ ॥
बीस बाहु , दस सीस दलि, खंड खंड तनु कीन्ह ।
सुभट सिरोमनि लंकपति, पाछे पाउ न दीन्ह ॥ ५ ॥
बिबुध बजावत दुंदुभी, हरपत बरपत फूल ।
राम बिराजत जीति रन, सुर सेवक अनुकूल ॥ ६ ॥
लंका थापि बिभीपनहिं, बिबुध बसाइ सुवास ।
तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास ॥ ७ ॥

षष्ठ सर्ग

सप्तक—१

रघुबर-आयसु अमरपति, अमिय सींचि कपि भालु ।
सकल जिआये सगुन सुभ, सुमिरहु राम कृपालु ॥ १ ॥
सादर आनी जानकी, हनूमान प्रभु पास ।
प्रीति परस्पर समउ सुभ, सगुन सुमंगल बास ॥ २ ॥
सीता-सपथ प्रसंग सुभ, सीतल भयउ कृसानु ।
नेम प्रेम व्रत धरम हित, सगुन सुहावनु जानु ॥ ३ ॥
सनमाने कपि भालु सब, सादर साजि बिमानु ।
सीय सहित, सानुज, सदल, चले भानुकुल-भानु ॥ ४ ॥
हरषत सुर, बरषत सुमन, सगुन सुमंगल गान ।
अवधनाथु गवने अवध, खेम कुसल कल्यान ॥ ५ ॥
सिंधु, सरोवर, सरित, गिरि, कानन, भूमिबिभाग ।
राम दिखावत जानकिहि, उमगि उमगि अनुराग ॥ ६ ॥
तुलसी मंगल सगुन सुभ, कहत जोरि जुग हाथ ।
हंस-बंस-अवतंस जय, जय जय जानकिनाथ ॥ ७ ॥

सप्तक—२

अवध अनंदित लोग सब, ब्योम बिलोकि बिमानु ।
मनहुँ कोकनद कोक मन, मुदित उदित लखि भानु ॥ १ ॥
मिले गुरुहि, जन, परिजनहिं, भेंटत भरत सप्रीति ।
लषनु राम सिय कुसल पुर, आए रिपु रन जीति ॥ २ ॥

उदवस अवध अनाथ सब, अवदसा दुख देखि।
राम लषनु सीता सकल, बिकल बिषाद बिसेखि ॥ ३ ॥
मिलीं मातु, हित, मीत, गुरु, सनमाने सब लोग।
सगुन समय बिसमय हरष, प्रिय संयोग बियोग ॥ ४ ॥
अमर अनंदित, मुनि मुदित, मुदित भुवन दसचारि।
घर घर अवध बधावने, मुदित नगर-नर-नारि ॥ ५ ॥
सुदिन सोधि गुरु वेदविधि, कियो राज-अभिषेक।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, दायक दोहा एक ॥ ६ ॥
भाँति भाँति उपहार लेइ, मिलत जुहारत भूप।
पहिराए सनमानि सब, तुलसी सगुन अनूप ॥ ७ ॥

सप्तक–३

जयधुनि गान निसान सुर, बरषत सुरतरु फूल।
भये रामु राजा अवध, सगुन सुमंगल मूल ॥ १ ॥
भालु, बिभीषन कीसपति, पूजे सहित समाज।
भली भाँति सनमानि सब, बिदा किये रघुराज ॥ २ ॥
रामराज संतोष सुख, घर, बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग बिलास ॥ ३ ॥
रामराज सब काज कहँ, नीक एक ही आँक।
सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारु न बाँक ॥ ४
कुंभकरन रावन सरिस, मेघनाद से बीर।
ढहे समूल बिसाल तरु, कालनदी के तीर ॥ ५ ॥
सकुल सदल रावन सरिस, कवलित काल कराल।
सोच पोच असगुन असुभ, जाय जीव जंजाल ॥ ६ ॥
अविचल राज बिभीषनहिं, दीन्ह राज रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक पर, तुलसी सहित समाज ॥ ७ ॥

सप्तक—४

मंजुल मंगल मोदमय, मूरति मारुतपूत ।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल, सुमिरत रघुबर-दूत ॥ १ ॥
सगुन समय सुमिरत सुखद, भरत-आचरनु चारु ।
स्वामिधरम व्रत पेम हित, नेम निबाह निहारु ॥ २ ॥
ललित लषन-लघु-बंधु पद, सुखद सगुन सब काहु ।
सुमिरत सुभ कीरति विजय, भूमि धाम गृह लाहु ॥ ३ ॥
रामचंद्र-मुख-चंद्रमा, चित चकोर जब होइ ।
रामराज सब काज सुभ, समउ सुहावन सोइ ॥ ४ ॥
भूमिनंदिनी-पद-पदुम, सुमिरत सुभ सब काज ।
बरषा भलि, खेती सुफल, प्रमुदित प्रजा सुराज ॥ ५ ॥
सेवक, सखा, सुबंधु हित, नाइ लषनुपद माथु ।
कीजिय प्रीति प्रतीति सुभ, सगुन सुमंगल साथु ॥ ६ ॥
रामनाम रति नाम गति, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, तुलसी तुलसीदास ॥ ७ ॥

सप्तक—५

बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ रामदुआर ।
दंपति बिलपत सोक अति, आरत करत पुकार ॥ १ ॥
राम सोच संकोच सब, सचिव बिकल संताप ।
बालक-मीचु अकाल भइ, रामराज केहि पाप ॥ २ ॥
बिबुध बिमल बानी गगन, हेतु प्रजा अपचारु ।
रामराज परिनाम भल, कीजिय बेगि बिचारु ॥ ३ ॥
कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ ।
सगुन कुसल कल्यान सुभ, रोगी उठै नहाइ ॥ ४ ॥

बालकु जिया बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ।
सोच-बिमोचन सगुन सुभ, रामकृपा भल होइ॥ ५॥
सिला सुतिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिये जग जान।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान॥ ६॥
केवट निसिचर बिहँग मृग, किये साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा, सगुन सुमंगलखानि॥ ७॥

सप्तक—६

रामराज राजत सकल, धरम-निरत नरनारि।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥ १॥
बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ।
नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ॥ २॥
जती-स्वान संवाद सुनि, सगुन कहब जिय जानि।
हंस-बंस-अवतंस-पुर, बिलग होत पय पानि॥ ३॥
राम कुचरचा करहिं सब, सीतहि लाइ कलंक।
सदा अभागी लोग जग, कहत सकोचु न संक॥ ४॥
सती-सिरोमनि सीय तजि, राखि लोगरुचि राम।
सहे दुसह दुख सगुन गत, प्रियबियोगु परिनाम॥ ५॥
बरन-धरम आस्रम-धरम, निरत सुखी सब लोग।
रामराज मंगल सगुन, सुफल जाग जप जोग॥ ६॥
बाजिमेध अगनित किए, दिए दान बहु भाँति।
तुलसी राजा राम जग, सगुन सुमंगल पाँति॥ ७॥

सप्तक—७

असमंजसु बड़ सगुन गत, सीता-राम-बियोग।
गवन बिदेस, कलेस कलि, हानि, पराभव, रोग॥ १॥

मानिय सिय अपराध बिनु, प्रभु परिहरि पछतात ।
रुचै समाज न राजसुख, मन मलीन, कृस गात ॥ २ ॥
पुत्र-लाभ, लव-कुस-जनम, सगुन सुहावन होइ ।
समाचार मंगल कुसल, सुखद सुनावइ कोइ ॥ ३ ॥
रामसभा लव-कुस ललित, किए राम-गुन-गान ।
राज-समागम सगुन सुभ, सुजस लाभ सनमान ॥ ४ ॥
बालमीकि लव-कुस सहित, आनी सिय सुनि राम ।
हृदय हरषु जानब प्रथम, सगुन सोक परिनाम ॥ ५ ॥
अनरथ असगुन अति असुभ, सीता-अवनि-प्रबेसु ।
समय सोक, संताप, भय, कलह, कलंक कलेसु ॥ ६ ॥
सुभग सगुन उनचास रस, रामचरितमय चारु ।
राम-भगत हित सफल सब, तुलसी बिमल बिचारु ॥ ७ ॥



सप्तम सर्ग

सप्तक—१

राम लषनु सानुज भरत, सुमिरत सुभ सब काज।
साहित प्रीति प्रतीति हित, सगुन सकल सुभ काज॥ १॥
सुख-मुद-मंगल-कुमुद-बिधु, सगुन-सरोरुह-भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ, आनि हियँ हनुमान॥ २॥
राजकाज, मनि, हेम, हय, रामरूप रबिवार।
कहब नीक जयलाभ सुभ, सगुन समय अनुहार॥ ३॥
रस गोरस खेती सकल, बिप्र-काज सुभ साज।
राम-अनुग्रह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज॥ ४॥
मंगल मंगल भूमिहित, नृपहित जय संग्राम।
सगुन बिचारब समय सम, करि गुरुचरन प्रनाम॥ ५॥
बिपुल बनिज, बिद्या, बसन, बुध बिसेषि गृहकाजु।
सगुन सुमंगल कहब सुभ, सुमिरि सीय रघुराजु॥ ६॥
गुरुप्रसाद मंगल सकल, रामराज सब काज।
जग्य, बिवाह-उछाह, ब्रत, सुभ तुलसी सब साज॥ ७॥

सप्तक—२

सुक्र सुमंगल काज सब, कहब सगुन सुभ देखि।
जंत्र मंत्र मनि औषधी, सहसा सिद्धि बिसेषि॥ १॥
रामकृपा थिर काज सुभ, सनि-बासर बिस्राम।
लोह, महिष, गज, बनिज भल, सुख सुपास गृह ग्राम॥ २॥
राहु केतु उलटे चलहिं, असुभ अमंगल मूल।
रुंड मुंड पाषंड-प्रिय, असुर अमर प्रतिकूल॥ ३॥

समउ राहु रवि-गहनु-मत, राजहिं प्रजहिं कलेस।
सगुन सोच संकट विकट, कलह कलुप दुख देस ॥ ४ ॥
राहु सोम संगमु विषमु, असगुन उदधि अगाधु।
ईति भीति खल दल प्रबल, सीदहिं भूसुर साधु ॥ ५ ॥
सात पाँच ग्रह एक थल, चलहिं बाम गति धाम।
राज विराजिय समउ-गत, सुभहित सुमिरहु राम ॥ ६ ॥
खेती बनि विद्या बनिज, सेवा सिलिप सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज ॥ ७ ॥

सप्तक—२

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति-भगति, सगुन सुमंगल सात ॥ १ ॥
सिद्ध समागम संपदा, सदन सरीर सुपास।
सीतानाथ-प्रसाद सुभ, सगुन सुमंगल बास ॥ २ ॥
कैासल्या कल्यानमय, मूरति करत प्रनामु।
सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहिं सियरामु ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिँ सुनेम।
सुवन लखन रिपुदवनु से, पावहिँ पति-पद-प्रेम ॥ ४ ॥
दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि धाम धन धरम सुख, सुत गुन रूप-निधान ॥ ५ ॥
कलह कपट कलि कैकई, सुमिरत काज नसाइ।
हानि मीचु दारिद दुरित, असगुन असुभ अघाइ ॥ ६ ॥
राम बाम दिसि जानकी, लषनु दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥ ७ ॥

सप्तक-४

मध्यम दिन, मध्यम दसा, मध्यम सकल समाज ।
नाइ माथ रघुनाथपद, जानब मध्यम काज ॥ १ ॥
हित पर बढ़इ बिरोधु जब, अनहित पर अनुराग ।
रामबिमुख बिधि बामगत, सगुन अघाइ अभाग ॥ २ ॥
कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजिय सुभ सोइ ॥ ३ ॥
पहिले हित परिनामगत, बीच बीच भल पोच ।
सगुन कहब अस रामगति, कहबि समेत सकोच ॥ ४ ॥
रमा रमापति गौरि हरु, सीताराम सनेहु ।
दंपति-हित, संपति सकल, सगुन सुमंगल गेहु ॥ ५ ॥
प्रीति प्रतीति न रामपद, बड़ो आस, बड़ लोभ ।
नहिं सपनेहुँ संतोष सुख, जहाँ तहाँ मन छोभ ॥ ६ ॥
पय नहाइ, फल खाइ, जपु, रामनाम षट मास ।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास ॥ ७ ॥

सप्तक-५

बड़ कलेस कारज अलप, बड़ो आस, लहु लाहु ।
उदासीन सीतारमन, समय सरिस निरबाहु ॥ १ ॥
दस दिसि दुख दारिद दुरित, दुसह दसा दिन दोष ।
फेरे लोचन राम अब, सनमुख साज सरोष ॥ २ ॥
खेती बनिज न, भीख भलि, अफल उपायकदंब ।
कुसमय जानब, बाम बिधि, रामनाम अवलंब ॥ ३ ॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम ।
सुलभ सिद्धि सब सगुन सुभ, सुमिरत सीताराम ॥ ४ ॥

भागु भाग तजि भालयलु, आलस ग्रसे उपाउ ।
असुभ अमंगल सगुन सुनि, सरन राम के आउ ॥ ५ ॥
गइ बरषा करषक बिकल, सूखत सालि सुनाज ।
कुसमउ कुसगुन कलह कलि, प्रजहि कलेसु कुराज ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरहु लषन समेत ।
दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत ॥ ७ ॥

सप्तक–६

उदबस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि ।
राजभंग कुसमाज बड़, गत ग्रह-चालि बिचारि ॥ १ ॥
अवध-प्रवेस अनंदु बड़, सगुन सुमंगल माल ।
राम-तिलक-अवसर कहब, सुख संतोष सुकाल ॥ २ ॥
राम-राज-बाधक बिबुध, कहब सगुन सति भाउ ।
देखि देवकृत दोष दुख, कीजिय उचित उपाउ ॥ ३ ॥
मंद मंथरा मोहबस, कुटिल कैकई कीन्ह ।
ब्याधि बिपति सब देवकृत, समय सगुन कहि दीन्ह ॥ ४ ॥
रामबिरह दसरथ दुखित, कहति कैकई काकु ।
कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमबिपाकु ॥ ५ ॥
लखन राम सिय बसत बन, बिरह-बिकल पुरलोग ।
समय सगुन कह करमबस, दुख सुख जोग बियोग ॥ ६ ॥
तुलसी लाइ रसाल तरु, निज कर सींचति सीय ।
फूपो सफल भल सगुन सुभ, समउ कहब कमनीय ॥ ७ ॥

सप्तक–७

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम ।
सगुन बिचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम ॥ १ ॥

मुनि गनि, दिन-गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, वचन, सगुन समय अनुहारि ॥ २ ॥
सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान ॥ ३ ॥
गुरु गनेस हरु गौरि सिय, रामु लपनु हनुमानु ॥
तुलसी सादर सुमिरि सब, सगुन विचार विधानु ॥ ४ ॥
हनूमान सानुज भरत, राम सीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन बिचारु बखानि ॥ ५ ॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब रामगति गोइ ॥ ६ ॥
गुन बिस्वास, विचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु।
तुलसी रघुबर-भगत-उर, विलसत विमल विचारु ॥ ७ ॥

दोहावली

दोहावली

—:❀:—

दोहा

राम बाम दिसि जानकी लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥
सीता लषनु समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास।
हरषत सुर, बरषत सुमन सगुन सुमंगलवास ॥ २ ॥
पंचवटी बटबिटप-तरु सीता-लषन-समेत।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥ ३ ॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय-लषन-समेत।
रामनाम-जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ॥ ४ ॥
पय अहार फल खाइ जपु रामनाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ ५ ॥
रामनाम-मनि-दीप धरु जीह-देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार ॥ ६ ॥
हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ ७ ॥
सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं, निर्गुन मन ते दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन-मूरि ॥ ८ ॥
एक छत्र, इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर-नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ ९ ॥
रामनाम को अंक है सब साधन है सून।

७—पुरट = सोना।

अंक गये कछु हाथ नहिँ अंक रहे दसगून ॥ १० ॥
नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान-निवास ।
जो सुमिरत भयो भाग तेँ तुलसी तुलसीदास ॥ ११ ॥
रामनाम जपि जीह जन भए सुकृत सुखसालि ।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥ १२ ॥
नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि ।
तुलसी मन परिहरत नहिँ घुरविनिआ की बानि ॥ १३ ॥
कासी विधि बसि तनु तजै हठि तन तजै प्रयाग ।
तुलसी जो फल सो सुलभ रामनाम-अनुराग ॥ १४ ॥
मीठो अरु कठवति भरो रौंताई अरु खेम ।
स्वारथ परमारथ सुलभ रामनाम के प्रेम ॥ १५ ॥
रामनाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति ।
कुतरुक सुरपुर-राजमग लहत भुवन-विख्याति ॥ १६ ॥
स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रवेस ।
रामनाम सुमिरत मिटहि तुलसी कठिन कलेस ॥ १७ ॥
'मोर मोर' सब कहँ कहसि तू को ? कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥ १८ ॥
हम लखि लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि ? रामनाम जपु नीच ॥ १९ ॥
रामनाम-अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
बरषत बारिद-बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥ २० ॥
तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि ।
लाभ राम सुमिरत बड़ो बड़ो बिसारे हानि ॥ २१ ॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु ।
होहि राम को, नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥ २२ ॥

१३-घुरविनिआ = घूर (कूड़ाखाने) में पड़े दाने चुननेवाली ।

प्रीति प्रतीति सुरीति सों रामनाम जपु राम ।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ॥ २३ ॥
संपति-रस रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह ।
तुलसी हरहित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २४ ॥
बरषाऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥ २५ ॥
रामनाम नर-केसरी कनककसिपु कलिकालु ।
जापकजन पह्लाद जिमि पालहिं दलि सुरसालु ॥ २६ ॥
रामनाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥ २७ ॥
रामनाम कलि कामतरु रामभगति सुरधेनु ।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद-पंकज-रेनु ॥ २८ ॥
जथा भूमि सब बीज मँ नखत-निवास अकास ।
रामनाम सब धरम में जानत तुलसीदास ॥ २९ ॥
सकल कामनाहीन जे रामभगति-रसलीन ।
नामप्रेम-पीयूष-ह्रद तिनहुँ किए मन मीन ॥ ३० ॥
ब्रह्मराम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि ।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥ ३१ ॥
सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद-बिदित गुनगाथ ॥ ३२ ॥
रामनाम पर राम तें प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन-सुमंगल-कोस ॥ ३३ ॥
लंक बिभीषन, राज कपि पति मारुति, खग मीच ।
लही राम सों नामरति चाहत तुलसी नीच ॥ ३४ ॥
हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ।

२४–हरहित बरन = रामनाम । २६–सुरसाल = राक्षस । ३१–रामचरित = रामायण

रामनाम नित कहत हर गावत वेद पुरान ॥ ३५ ॥
तुलसी प्रीति प्रतीति सों रामनाम-जप-जाग।
किए होय विधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग ॥ ३६ ॥
जल थल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक।
तुलसी तोसे दीनकहँ रामनाम-गति एक ॥ ३७ ॥
राम भरोसो, राम बल, रामनाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥ ३८ ॥
रामनाम रति, राम गति, रामनाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥ ३९ ॥
रसना साँपिनि, बदन बिल, जे न जपहिँ हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि विधाता बाम ॥ ४० ॥
हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिँ, स्रवहिँ, पुलकहिँ नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥ ४१ ॥
रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय।
तुलसी जिनहिँ न पुलक तनु ते जग जीवत जाय ॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवहि हरिगुन सुनत।
कर न रामगुन-गान जीह सो दादुरजीह सम ॥ ४३ ॥
स्रवै न सलिल सनेह तुलसी सुनि रघुबीर-जस।
ते नयना जनि देहु, राम करहु बरु आँधरो ॥ ४४ ॥
रहै न जल भरि पूरि, राम! सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिए ॥ ४५ ॥
बारक सुमिरत तोहि होहिँ तिनहिँ सन्मुख सुखद।
क्यों न सँभारहि मोहिँ, दयासिंधु दसरत्थ के? ॥ ४६ ॥
साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरेउ ॥ ४७ ॥

दोहा

तुलसी रामहिं आपु तें सेवक की रुचि मीठि।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥ ४८ ॥
तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि? ॥ ४९ ॥
प्रभु तरुतर, कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम सों साहिब सीलनिधान ॥ ५० ॥
रे मन! सबसों निरस ह्वै सरस राम सों होहि।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥ ५१ ॥
हरे चरहिँ, तापहिँ बरत, फरे पसारहिँ हाथ।
तुलसी स्वारथमीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥ ५२ ॥
स्वारथ सीताराम सों, परमारथ सियराम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहाँ कहु काम ॥ ५३ ॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ५४ ॥
तुलसी स्वारथ रामहित, परमारथ रघुबीर।
सेवक जाके लषन से पवनपूत रनधीर ॥ ५५ ॥
ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित, बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी विचारि ॥ ५६ ॥
रामप्रेम बिनु दूबरो, रामप्रेम ही पीन।
रघुबर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन ॥ ५७ ॥
राम सनेही, राम गति, रामचरन-रति जाहि।
तुलसी फल जग-जनम को दियो बिधाता ताहि ॥ ५८ ॥
आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥ ५९ ॥

स्वारथ-परमारथ-रहित सीताराम-सनेह।
तुलसी सो फल चारि को फल-हमार मत एह ॥ ६० ॥
जे जन रूखे विषयरस, चिकने रामसनेह।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसहिं कि गेह ॥ ६१ ॥
जथा लाभ संतोप सुख, रघुबर-चरन-सनेह।
तुलसी जौ मन खूँद सम कानन बसहु कि गेह ॥ ६२ ॥
तुलसी जौपै राम सों, नाहिंन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥
तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और।
सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत ॥ ६५ ॥
सेए सीताराम नहिं, भजे न शंकर गौरि।
जनम गँवायो बादि ही परत पराई पौरि ॥ ६६ ॥
तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए सदल, सकुल कुरुराज ॥ ६७ ॥
तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनु ओझ।
सुरसरिगत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ ॥ ६८ ॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥ ६९ ॥
साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग।
तुलसी तबहीं भाल तें भभरि भागिहै भाग ॥ ७० ॥
करिहौ कोसलनाथ तजि जबहि दूसरी आस।
जहाँ तहाँ दुख पाइहौ तब हीं तुलसीदास ॥ ७१ ॥

६२—खूँद = घोड़े की उछल कूद की चाल।
६८—ओझ = ओझा। गंगोझ = गंगोदक, गंगाजल।

बिध न ईंधन पाइए, सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेरघर जो बिपच्छ रघुबीर॥ ७२॥
बरषा को गोबर भयो, को चहै, को करै प्रीति?
तुलसी तू अनुभवहि अब राम-बिमुख की रीति॥ ७३॥
सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि॥ ७४॥
तुलसी उद्यम करम जुग जब जेहि राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ, ताहि सब सनमुख, प्रभु तन पीठि!॥ ७५॥
प्रेम-कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ॥ ७६॥
निज दूषनु, गुन राम के समुझे तुलसीदास।
होय भलो कलिकाल हू उभय लोक अनयास॥ ७७॥
कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुई महँ रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि॥ ७८॥
तुलसी दुई महँ एक ही खेल, छाँड़ि छल, खेलु।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परहेलु॥ ७९॥
निगम अगम, साहेब सुगम, राम साँचिलो चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह॥ ८०॥
सनमुख आवत पथिक ज्यों दिए दाहिनो बाम।
तैसोइ होत सु आपको, त्यों ही तुलसी राम॥ ८१॥
राम-प्रेम-पथ पेखिये दिये बिषय तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपहूँ डीठि॥ ८२॥
तुलसी जौलों बिषय की, मुधा माधुरी मीठि।
तौलौं सुधा सहस्र सम रामभगति सुठि सीठि॥ ८३॥

७९—परहेलु = तिरस्कार कर।

८३—मुधी = व्यर्थ। सीठि = सीठी, नीरस।

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल ।
तै। तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥ ८४ ॥
है तुलसी के एक गुन अवगुननिधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥ ८५ ॥
प्रीति राम सोँ, नीतिपथ चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥ ८६ ॥
सत्य बचन, मानस बिमल, कपटरहित करतूति ।
तुलसी रघुबर सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति ॥ ८७ ॥
तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति ।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥८८॥
नातो नाते राम के, रामसनेह सनेहु ।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥ ८९ ॥
सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान ।
ज्यों त्यों मन-मंदिर बसहिं राम धरे धनु बान ॥ ९० ॥
जौ जगदीस तै। अति भलो, जौ महीस तै। भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन-अनुराग ॥ ९१ ॥
परहुँ नरक, फलचारि-सिसु, मीच डाँकिनी खाउ ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ ॥ ९२ ॥
हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ ।
उदासीन सब सों सरल, तुलसी सहज सुभाउ ॥ ९३ ॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार ॥ ९४ ॥
रामहिं डरु, करु राम सों ममता, प्रीति, प्रतीति ।
तुलसी निरुपधि राम को भये हारेहू जीति ॥ ९५ ॥
तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष ।

८७—धूती सकै = धोखा दे सकता है ।

होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष ॥ ९६ ॥
सुमिरन सेवा राम सों, साहब सों पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥ ९७ ॥
जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान ?।
तुलसी यह सुनि समुझि हिय आनु धरे धनुबान ॥ ९८ ॥
करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञानविहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो रामदुआरें दीन ॥ ९९ ॥
बाधक सब सब के भए, साधक भए न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥ १०० ॥
संकरप्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि घोर नरक महँ बास ॥ १०१ ॥
बिलग बिलग सुख संग दुख, जनम मरन सोइ रीति।
रहियत राखे राम कें, गए ते उचित अनीति ॥ १०२ ॥
जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब बिना रामपद-प्रेम ॥ १०३ ॥
लोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु छेम।
त्यों तुलसी के भावगत रामप्रेम बिनु नेम ॥ १०४ ॥
राम निकाई रावरी है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥ १०५ ॥
तुलसी राम जो आदर्‌यो खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धर्‌यो, धर्‌यो सु धर्‌यो धरोइ ॥ १०६ ॥
तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥ १०७ ॥
लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज?
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥ १०८ ॥

९९—त्रिपथ = कर्म, ज्ञान और उपासना कांड।

घर घर माँगे टूक, पुनि भूपनि पूजे पाय ।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥ १०९ ॥
तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान? ॥ ११० ॥
तुलसी रामहु तें अधिक रामभक्त जिय जान ।
ऋनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान ॥ १११ ॥
कियो सुसेवक-धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि ।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि ॥ ११२ ॥
भगत-हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनुभूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत-नर-अनुरूप ॥ ११३ ॥
ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-गोपार ।
सोइ सच्चिदानंदघन करत चरित्र उदार ॥ ११४ ॥
हिरन्याच्छ भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान ।
जेहि मारे सोइ अवतरे कृपासिंधु भगवान ॥ ११५ ॥
सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुलकेतु ।
चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागरसेतु ॥ ११६ ॥
बाल-बिभूषन बसन बर, धूरि-धूसरित अंग ।
बालकेलि रघुबर करत, बाल-बंधु सब संग ॥ ११७ ॥
अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद ।
मुदित मातु-पितु लोग लखि रघुबर बाल-बिनोद ॥ ११८ ॥
राज-अजिर राजत रुचिर कोसलपालक-बाल ।
जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन-सुमंगल-माल ॥ ११९ ॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ ।
ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज सिसु साथ ॥ १२० ॥
राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभनाम ।
सुमिरत दसरथ-सुवन सब पूजहिं सब मनकाम ॥ १२१ ॥

बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल ।
तुलसी मन-मानस बसत मंगल मंजु मराल ॥ १२२ ॥
भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥ १२३ ॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर, महि, गो, द्विज, लागि ।
सगुन-उपासक संग तहँ रहे मोच्छ सब त्यागि ॥ १२४ ॥
परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन-काम ।
प्रेमभगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ॥ १२५ ॥
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तेँ बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल ॥ १२६ ॥
हरिमाया-कृत दोष गुन बिनु हरिभजन न जाहिं ।
भजिय राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं ॥ १२७ ॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥ १२८ ॥
श्रीरघुबीर-प्रताप तेँ सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाय प्रभु आन ॥ १२९ ॥
लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चंड ।
भजहि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड ॥ १३० ॥
तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ सोकधाम तजि काम ॥ १३१ ॥
बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग ॥ १३२ ॥
बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम ॥ १३३ ॥

सोरठा

अस विचारि मन धीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥ १३४ ॥
भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीतारमन ॥ १३५ ॥
कहहिं विमलमति संत, बेद पुरान विचारि अस।
द्रवैं जानकीकंत, तब छूटै संसारदुख ॥ १३६ ॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु?
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु? ॥ १३७ ॥

दोहा

रामचंद्र के भजन बिनु जो चहै पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान ॥ १३८ ॥
जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ ॥
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ॥ १३९ ॥
सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, रामभगति थिरताइ।
लरिकाईं को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ ॥ १४० ॥
सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास ॥ १४१ ॥
जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह-बस बानर भे हनुमान ॥ १४२ ॥
जानि रामसेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान ॥ १४३ ॥
तुलसी रघुबर-सेवकहि खल डाटत मन माखि।
बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि ॥ १४४ ॥
रावनरिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि ॥ १४५ ॥

पुन्य, पाप, जस, अजस, के भावी भाजन भूरि ।
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि ॥ १४६ ॥
खेलत बालक व्याल सँग, मेलत पावक हाथ ।
तुलसी सिसु पितु-मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ ॥ १४७ ॥
तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति ।
निसि बासर ताकहँ भलो मानै राम-इताति ॥ १४८ ॥
तुलसी जाने सुनि समुझि कृपासिंधु रघुराज ।
महँगे मनि कंचन किए, सौंघे जग, जल नाज ॥ १४९ ॥
सेवा, सील, सनेह, बस करि, परिहरि प्रिय लोग ।
तुलसी ते सब राम सों सुखद सुजोग वियोग ॥ १५० ॥
चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरे चारि को दानि चारि चख चाहु ॥ १५१ ॥
सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति ।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर-प्रेम-प्रसूति ॥ १५२ ॥
बेप बिसद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइए भए विषय-जल-मीन ॥ १५३ ॥
बचन-बेप तें जो बनै सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम ॥ १५४ ॥
नीच मीचु लै जाइ जो राम-रजायसु पाइ ।
तौ तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ ॥ १५५ ॥
जातिहीन, अघ-जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि विसारि ? ॥ १५६ ॥
बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि ।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ॥ १५७ ॥

१४८—इताति = इताअत, अनुशासन, आज्ञा ।
१४९—सौंघे = स्वर्घ, सस्ते ।

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीबनिवाज ॥ १५८ ॥
कहा बिभीषन लै मिलो, कहा बिगार्‍यो बालि?
तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आए पालि ॥ १५९ ॥
तुलसी कोसलपाल सो, को सरनागत-पाल?
भज्यो बिभीषन बंधु-भय, भंज्यो दारिद-काल ॥ १६० ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस रामकर, समुझि परै कहु काहि? ॥ १६१ ॥
बलकल भूषन, फल असन, तृन सज्या, द्रुम प्रीति।
तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति ॥ १६२ ॥
जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिए दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ १६३ ॥
अबिचल राज बिभीषनहिं दीन्ह राम रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज ॥ १६४ ॥
कहा बिभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जाने बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ ॥ १६५ ॥
बैरिबंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक।
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक ॥ १६६ ॥
तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु-महिमा कहौं, सेवक को बिस्वास ॥ १६७ ॥
सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहौं बसनबेष जदुनाथ ॥ १६८ ॥

१६१—चाहि = अपेक्षा। उससे (बढ़कर)।

१६८—इगारहौं = दस अवतारों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ वस्त्र का रूप।

आहि तीन कह्यो द्रौपदी तुलसी राजसमाज।
प्रथम बढ़े पट, बिय बिकल, चहत चकित निज काज ॥१६९॥

सुखजीवन सब कोउ चहत, सुखजीवन हरिहाथ।
तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ ॥ १७० ॥

कृपिन देइ, पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि जो कीजै सुभ सोइ ॥ १७१ ॥

दंडकबन-पावन-करन चरन-सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं, खल तरहिं, होइ रंक ते राउ ॥ १७२ ॥

बिन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जलजोर।
राम लषन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर ॥ १७३ ॥

सिला सु तिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिए जग जान।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥ १७४ ॥

सिलासाप-मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच, संकट मिटिहिं, पूजिहि मन की आस ॥ १७५ ॥

मुए जिआए भालु कपि, अवध बिप्र को पूत।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ॥ १७६ ॥

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो, जान जानकीनाथ ॥ १७७ ॥

रोगनिकर तनु, जरठपनु, तुलसी संग कुलोग।
रामकृपा लै पालिये, दीन पालिबे जोग ॥ १७८ ॥

मो सम दीन न, दीनहित तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि, रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवभीर ॥ १७९ ॥

भवभुवंग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होत सचेत ॥ १८० ॥

१६९—बिय = दूसरा।

दीहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास ॥ १८१ ॥
रामराज राजत सकल धरम-निरत नर-नारि।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि ॥ १८२ ॥
रामराज संतोष सुख, घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग विलास ॥ १८३ ॥
खेती, बनि, विद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम के राज ॥ १८४ ॥
दंड जतिन कर, भेद जहँ नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचंद्र के राज ॥ १८५ ॥
कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोरन काज।
तुलसी परमिति प्रीति की रीति राम के राज ॥ १८६ ॥
मुकुर निरखि मुख रामभ्रू, गनत गुनहिं दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकनि लखि जनि परहि सरोष ॥ १८७ ॥
सहसनाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी-वल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि, निरखि सिय धरमधुरंधर राम ॥ १८८ ॥
गौतम-तिय-गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
हिय हरषे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥ १८९ ॥
तुलसी बिलसत नखत निसि सरद-सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु रामसुजस-सिसुहाथ ॥ १९० ॥
रघुपति कीरति-कामिनी क्यों कहै तुलसी दास ?
सरद-अकास प्रकास ससि चारु चिबुक-तिल जासु ॥ १९१ ॥
प्रभु गुनगन भूषन बसन, बिसद बिसेष सुदेस।
राम-सुकीरति-कामिनी, तुलसी करतब केस ॥ १९२ ॥
रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन-कुमुद चकोर चित, हित बिसेष बड़ लाहु ॥ १९३ ॥

रघुबरकीरति सज्जननि सीतल, खलनि सुताति ।
ज्यों चकोर-चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ॥ १९४ ॥
रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-बिहारु ॥ १९५ ॥
स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद करहिं तेहि पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥ १९६ ॥
हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहिं सुकवि-समाज ।
हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज ॥ १९७ ॥
तिल पर राखेउ सकल जग, बिदित, बिलोकत लोग ।
तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग ? ॥ १९८ ॥

सोरठा

राम ! स्वरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥ १९९ ॥

दोहा

मायाजीव, सुभाव, गुन, काल करम, महदादि ।
ईस-अंक तें बढ़त सब ईस-अंक बिनु बादि ॥ २०० ॥
हित उदास रघुबर-बिरह, बिकल सकल नर-नारि ।
भरत लषन-सियगति समुझि प्रभु-चख सदा सुबारि ॥ २०१ ॥
सीय, सुमित्रासुवन-गति, भरत-सनेह सुभाउ ।
कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ ॥ २०२ ॥
जानी राम, न कहि सके भरत लषन सियप्रीति ।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति ॥ २०३ ॥
सब बिधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिन राति ।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामिधर्म सब भाँति ॥ २०४ ॥
भरतहि होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ ।
कबहुँक काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥ २०५ ॥

संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार ॥ २०६ ॥
सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिं भई भरत की भेंट ॥ २०७ ॥
राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति, तुलसी, गरत गलानि ॥ २०८ ॥
भरत स्यामतन रामसम, सब गुन रूप-निधान।
सेवक-सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २०९ ॥
ललित लषन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह।
सुख-संपति-कीरति-विजय-सगुन-सुमंगल-गेह ॥ २१० ॥
नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमासील-निकेत।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥ २११ ॥
कौसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम।
सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहिं सियराम ॥ २१२ ॥
सुमिरि सुमित्रानाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
सुवन लषन रिपुदवन से, पावहिं पति-पद-प्रेम ॥ २१३ ॥
सीता-चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।
होहिं तीय पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥ २१४ ॥
तुलसी केवल कामतरु रामचरित-आराम।
कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहिं किए विधि बाम ॥२१५॥
मातु सकल, सानुज भरत, गुरु पुरलोग सुभाउ।
देखत देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ ॥ २१६ ॥
सहज सरल रघुबर-वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जल वक्रगति जद्यपि सलिल समान ॥ २१७ ॥
दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि, धाम, धन, धरमसुत, सदगुन रूपनिधान ॥ २१८ ॥

तुलसी जान्यो दसरथ हि 'धरमु न सत्य समान' ।
रामु तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥ २१९ ॥
रामबिरह दसरथ-मरन, मुनिमन अगम सु मीचु ।
तुलसी मंगल-मरन-तरु, सुचि सनेह-जल सींचु ॥ २२० ॥

सोरठा

जीवन मरन सुनाम जैसे दसरथ राय को ।
जियत खिलाये राम, रामबिरह तनु परिहरेउ ॥ २२१ ॥

दोहा

प्रभुहि बिलोकत गोदगत, सिय-हित घायल नीच ।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच ॥ २२२ ॥
बिरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अरु नीचु ।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु ॥ २२३ ॥
मुए, मरत, मरिहैं सकल घरी पहर के बीच ।
लही न काहू आजु लौं गीधराज की मीच ॥ २२४ ॥
मुये मुकुत, जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच ।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीच ॥ २२५ ॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय-सुधि कहि, सियराम कहि देह तजी मतिधीर ॥ २२६ ॥
दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु कर काजु ।
सोचत बंधु समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराजु ॥ २२७ ॥
केवट निसिचर बिहग मृग किये साधु सनमानि ।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगलखानि ॥ २२८ ॥
मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुतपूत ।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल सुमिरत रघुबर-दूत ॥ २२९ ॥
धीर, बीर, रघुबीर-प्रिय, सुमिरि समीरकुमार ।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचार ॥ २३० ॥

सुख-मुद-मंगल-कुमुद-विधु, सुगुन-सरोरुह-भानु ।
करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिये हनुमान ॥ २३१ ॥
सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु ।
कीरति विजय विभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ २३२ ॥
सूर-सिरोमनि, साहसी, सुमति समीरकुमार ।
सुमिरत सब सुख-संपदा-मुदमंगल-दातार ॥ २३३ ॥
तुलसी-तनु सर, सुख-जलज, भुज-रुज गज बरजोर ।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरीकिसोर ॥ २३४ ॥
भुज-तरु-कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रवेस ।
बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस ॥ २३५ ॥
बाहु-विटप सुख-बिहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि ।
रामकृपा जल सींचिये, बेगि दीनहित लागि ॥ २३६ ॥

सोरठा

सुकृति जनम महि जानि, ज्ञानखानि, अघहानिकर ।
जहँ.बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ? ॥ २३७ ॥
जरत सकल सुरबृंद, विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मति मंद, को कृपालु संकर सरिस ? ॥ २३८ ॥

दोहा

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिए चितै सुलोचन-कोर ॥ २३९ ॥
अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ ।
केहि विधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥ २४० ॥
और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग ।
अति विचित्र भगवंतगति, कोउ न जानिबे जोग ॥ २४१ ॥

२३९—ढासनि = डाकू ।

प्रेमसरीर प्रपंच-रुज, उपजी अधिक उपाधि ।
तुलसी भली सुवैदई बेगि बाँधिये व्याधि ॥ २४२ ॥
हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस ।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि, कीस ॥२४३॥
केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग-जीवगति करी जीव के नाँह ॥ २४४ ॥
सुखसागर सुखनींदबस, सपने सब करतार ।
माया मायानाथ की को जग जाननहार ? ॥ २४५ ॥
जीव सोव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति ।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति ॥ २४६ ॥
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥ २४७ ॥
तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु ।
चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु ॥ २४८ ॥
करम खरी कर, मोह थल, अंक चराचर-जाल ।
हनत गुनत, गनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काल ॥ २४९ ॥
कहिबे कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ॥ २५० ॥
ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास ।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु, तुलसी दास ॥२५१॥
अंक अगुन, आखर सगुन समुझि उभय प्रकार ।
खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु बिचार ॥ २५२ ॥
परमारथ-पहिचानि-मति लसति बिषय लपटानि ।
निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि ॥ २५३ ॥
सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरही सती कहावती, जरती नाह-वियोग ॥ २५४ ॥

खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न, पिय ! तियत्याग ।
कै खरिया मोहिं मेलि, कै विमल विवेक विराग ॥ २५५ ॥
घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ ।
तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ ॥ २५६ ॥
दिए पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय ॥ २५७ ॥
तुलसी अद्‌भुत देवता आसादेवी नाम ।
सेए सोक समर्पई, विमुख भए अभिराम ॥ २५८ ॥
सोई सेँवर तेइ सुवा, सेवत सदा बसंत ।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत ॥ २५९ ॥
करत न समुझत झूठ-गुन, सुनत होत मतिरंक ।
पारद प्रगट प्रपंचमय, सिद्धिउँ नाउँ कलंक ॥ २६० ॥
ज्ञानी, तापस, सूर, कवि, कोविद गुनआगार ।
केहि कै लोभ विडंबना कीन्हि न यहि संसार ? ॥ २६१ ॥
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगनयनी के नयनसर, को अस लाग न जाहि ? ॥ २६२ ॥
ब्यापि रहेउ संसार महँ माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट, दंभ, कपट पापंड ॥ २६३ ॥
तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान-धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ ॥ २६४ ॥
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल मुनिवर कहहिं विचारि ॥ २६५ ॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि ।
तिन्हमहँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ २६६ ॥
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ ।

२६०—कलंक = कजली जो पारा सिद्ध होने पर बैठ जाती है।

का न करै अवला प्रवल, केहि जग काल न खाइ ? ॥ २६७ ॥
जनम-पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं विचारि ।
दारुन वैरी मीचु के बीच विराजति नारि ॥ २६८ ॥
दीपसिखा सम जुवति-तन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काममद, करहि सदा सतसंग ॥ २६९ ॥
काम-क्रोध-मद-लोभरत, गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहि रघुपतिहिं, मूढ़ परे भवकूप ॥ २७० ॥
ग्रहगृहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ? ॥ २७१ ॥
ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन बिस्राम ।
भूतद्रोहरत, मोहबस, रामविमुख, रतकाम ॥ २७२ ॥
कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिवेक ।
होइ घुनाच्छरन्याय जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ २७३ ॥
खल प्रबोध, जगसोध, मन को निरोध, कुल सोध ।
करहिं ते फोकट पचि मरहिँ, सपनेहु सुख न सुबोध ॥२७४॥

सोरठा

कोउ बिस्राम कि पाव, तात, सहज संतोष बिनु ?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ? ॥२७५॥
सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।
अस बिचारि मन माहिं भजिय महा मायापतिहि ॥ २७६ ॥

दोहा

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम-घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥ २७७ ॥

२६८—जन्मकुंडली में छठा, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है ।

जौ घन बरपै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ २७८॥
चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेमतृपा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥ २७९॥
रटत रटत रसना लटी, तृपा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक-प्रेम कों नित नूतन रुचिरंग॥ २८०॥
चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख॥ २८१॥
बरपि परुप पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥ २८२॥
उपल बरपि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर? ॥ २८३॥
पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोर खरि खीझि।
रोप न प्रीतम-दोप लखि, तुलसी, रागहि रीझि॥ २८४॥
मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु॥ २८५॥
तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम॥ २८६॥
तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि॥ २८७।
तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ॥ २८८॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥ २८९॥

२७८—समय सिर = ठीक समय पर।

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि को वारिद बिन देइ ? ॥ २९० ॥
को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि ।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ २९१ ॥
साधन साँसति सब सहत, सबहिं सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलद की रीझि-बूझि बुध काहु ॥ २९२ ॥
चातक जीवन-दायकहि, जीवन समय सुरीति ।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥ २९३ ॥
जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह ।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥ २९४ ॥
डोलत विपुल विहंग बन, पियत पोपरिन बारि ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! तुही भुवन दसचारि ॥ २९५ ॥
मुख-मीठे, मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! रह्यो भुवन भरि तोर ॥ २९६ ॥
बास, बेष, बोलनि, चलनि मानस मंजु मराल ।
तुलसी चातक-प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥ २९७ ॥
प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह ।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह ॥ २९८ ॥
होइ न चातक पातकी, जीवनदानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ ॥ २९९ ॥
गरज आपनी सबन को, गरज करत उर आनि ।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥ ३०० ॥
चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमीनीर ॥ ३०१ ॥
बध्यो बधिक पर्‍यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच ॥ ३०२ ॥

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्‌यो बाहिर बारि ॥ ३०३ ॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर-धार ॥ ३०४ ॥

सोरठा

जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरि हू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल ॥ ३०५ ॥
सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को ॥ ३०६ ॥
जाचै बारहमास, पियै पपीहा स्वातिजल।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन ॥ ३०७ ॥

दोहा

तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेमपियास।
पियत स्वातिजल जान जग, जाचक बारह मास ॥ ३०८ ॥
आलवाल मुकुताहलनि हिय, सनेह-तरु-मूल।
होइ हेतु चित चातकहि, स्वाति-सलिल अनुकूल ॥ ३०९ ॥
विवि रसना, तनु स्याम है, बंक चलनि, विषखानि।
तुलसी जस स्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥ ३१० ॥
उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचे रूख ॥ ३११ ॥
अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥ ३१२ ॥
एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातकनेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार, वहि देह ॥ ३१३ ॥

३०५—नारि = नार, गरदन।
३११—ऊख = तपा हुआ। उष्ण। अन = अन्य, दूसरा।

आपु व्याध को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृगमन मुरै परै प्रेमपट दाग ॥ ३१४ ॥
तुलसी मनि निज दुति फनिहि व्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥ ३१५ ॥
जरत तुहिन लखि बनजबन रवि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ ॥ ३१६ ॥
देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि।
तुलसी जियै जो बारि बिनु तौ तु देहि कवि खोरि ॥ ३१७ ॥
मकर, उरग, दादुर, कमठ जलजीवन जलगेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥ ३१८ ॥
तुलसी मिटै न मरि मिटेहु साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरि हू पलुहत गरजत मेह ॥ ३१९ ॥
सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत, करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥ ३२० ॥
तुलसी जप तप नेम व्रत सब सब ही तें होइ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥ ३२१ ॥
कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ।
ससिछवि हर रविसदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥ ३२२ ॥
कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाविष होइ ॥ ३२३ ॥
मान्य मीत सौं सुख चहै सो न छुवै छलछाँह।
ससि, त्रिसंकु, कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँह ॥ ३२४ ॥
कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ ॥ ३२५ ॥

३१४—कुहो = (चाहे) मारे।
३१९—मोरसिखा = मयूरशिखा नाम की घास या बूटी जो बरसात आते ही पनप जाती है। इसमें जड़ नहीं होती। पलुहना = पनपना।

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि-बारि॥ ३२६॥

रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु।
आलस, अनख न आचरज, प्रेमपिहानी जानु॥ ३२७॥

अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार॥ ३२८॥

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
तेपै तिन्हके जाहिं घर जिनके हिये न नैन॥ ३२९॥

हित पुनीत सब स्वारथहिं, अरि असुद्ध बिनु चाँड़।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परेते हाड़॥ ३३०॥

माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग।
भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेमपथ जोग॥ ३३१॥

हृदय कपट, वर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि॥ ३३२॥

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।
छीर-नीर-बिवरन समय बक उघरत तेहि काल॥ ३३३॥

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु, ज्यों बक्रगति ब्याल न बिलै समाइ॥ ३३४॥

कृसधन सखहि न देब दुख, मुयहु न माँगब नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच॥ ३३५॥

संग सरल कुटिलहि भए हरि हर करहिं निबाहु।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर-बिनु राहु॥ ३३६॥

नीच निचाई नहिं तजै सज्जन हू के संग।
तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअंग॥ ३३७॥

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥ ३३८ ॥
मिथ्या माहुर सज्जनहि, खलहि गरल सम साँच ।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच ॥ ३३९ ॥
संत-संग अपवर्गकर, कामी भवकर पंथ ।
कहहिं साधु, कवि, कोविद, स्रुति, पुरान, सद्ग्रंथ ॥ ३४० ॥
सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच ।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच ॥ ३४१ ॥
सुजन, सुतरु, बन, ऊप सम; खल, टंकिका, रुखान ।
परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान ॥ ३४२ ॥
पियहिँ सुमनरस अलि विटप, काटि कोल फल खात ।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात ॥ ३४३ ॥
अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख ?
दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख ॥ ३४४ ॥
ज्ञान अनभले को सबहि, भले भलेहू काउ ।
सींग, सूँड़, रद, लूम, नख करत जीव जड़ घाउ ॥ ३४५ ॥
तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि ।
सोपक भानु कृसानु महि पवन, एक घनदानि ॥ ३४६ ॥
सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥ ३४७ ॥
जलचर, थलचर, गगनचर, देव, दनुज, नर, नाग ।
उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त विभाग ॥ ३४८ ॥
बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानवदेव ।
मुए मार सुविचार-हत स्वारथ-साधन एव ॥ ३४९ ॥

३४२—ऊप = कपास ।
३४९—मानवदेव = राजा ।

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखै भेद ।
करमनास सुरसरित मिस विधि निषेध बद वेद ॥ ३५० ॥
मनि भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु विवेक विचारि ॥ ३५१ ॥
उत्तम मध्यम नीच गति पाहन, सिकता, पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की; बैर बितिक्रम जानि ॥ ३५२ ॥
पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ पाँच ।
लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥३५३॥
नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल ।
कदली बदली विटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥ ३५४ ॥
तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु ॥ ३५५ ॥
बुध सो विवेकी बिमलमति जिनके रोष न राग ।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥ ३५६ ॥
आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ ।
तुलसी सबकहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३५७ ॥
तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति होइ ।
नाउ, किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ ॥ ३५८ ॥
गुरु-संगति गुरु होइ सो, लघु-संगति लघु नाम ।
चार पदारथ में गनैं नरकद्वार हू काम ॥ ३५९ ॥
तुलसी गुरु लघुता लहत लघु-संगति परिनाम ।
देवी देव पुकारियत नीच नारिनर-नाम ॥ ३६० ॥

३५१—मधु = मद्य। पारई = मिट्टी का कटोरा। परई।

३५२—पत्थर पर की, बालू पर की और पानी पर की लकीर की सी प्रीति क्रम से उत्तम, मध्यम और नीच हैं। बैर का क्रम इसका उल्टा है।

३५४—बिसाल = बड़ा।

तुलसी किये कुसंग-थिति होहिँ दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिय सूम खल गत हरि-शंकर-नाम ॥ ३६१ ॥
बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो 'गया' मगह के पास ॥ ३६२ ॥
राम-कृपा तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान ॥ ३६३ ॥
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ३६४ ॥
जनम जोग में जानियत, जग विचित्र गति देखि।
तुलसी आखर, अंक, रस, रंग विभेद विसेखि ॥ ३६५ ॥
आखर जोरि बिचार करु, सुमति अंक लिखि लेखु।
जोग-कुजोग-सुजोग-मय जगगति समुझि बिसेखु ॥ ३६६ ॥
करु बिचार, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिनाम।
उलटे जपे 'जरा मरा,' सूधे 'राजा राम' ॥ ३६७ ॥
होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ॥ ३६८ ॥
जड़ चेतन गुन-दोष-मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार ॥ ३६९ ॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ, ताते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ ३७० ॥

दोहा

जो जो जेहि जेहि रसमगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रसगुन-दोष बिचारिबो रसिकरीति पहिचानि ॥ ३७१ ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नामभेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥ ३७२ ॥

लोक वेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम, गाज पवि कहत सकोच न सोच ॥ ३७३ ॥
बिरुचि परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद।
बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चंद ॥ ३७४ ॥
प्रभु सनमुख भए नीच नर निपट होत बिकराल।
रबि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल ॥ ३७५ ॥
प्रभु-समीप-गत सुजन जन होत सुखद सुबिचारि।
लवन-जलधि-जीवन जलद, बरषत सुधा सुबारि ॥ ३७६ ॥
नीच निराबहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख ॥ ३७७ ॥
बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास ॥ ३७८ ॥
अमरदानि, जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं ॥ ३७९ ॥
लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।
गज-गुन, मोल, अहार, बल, महिमा जान कि राड़ ? ॥३८०॥
कै निदरहु कै आदरहु सिंहहिं स्वान सियार।
हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार ॥ ३८१ ॥
ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच।
निंदहिं बलि हरिचंद को 'का कियो करन दधीच ?' ॥३८२॥
ईस-सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग ॥ ३८३ ॥
तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भरयो महिमा भई कि थोरि ? ॥ ३८४ ॥

३७३—दगो = अंकित है, प्रसिद्ध है।
३७४—बिरुचि = अपनी रुचि या प्रसन्नता से जो देखते ही हो।
३८०—राड़ = मद, दुष्ट।

निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल ।
तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल ॥ ३८५ ॥
राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन दव लाइए बिनु रवि राति न जाइ ॥ ३८६ ॥
भलो कहै बिन जानेहू, बिनु जाने अपवाद ।
ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष विषाद ॥ ३८७ ॥
पर-सुख-संपति देखि सुनि जरहि जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि ॥ ३८८ ॥
तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ ॥ ३८९ ॥
तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान ।
तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान ॥ ३९० ॥
सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु, प्रभु भयो चहै सब कोइ ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३९१ ॥
सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पुजिए, गंडकि-सिला सुभाय ॥ ३९२ ॥
बड़े बिबुध-दरबार तें भूमि-भूप-दरबार ।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार ॥ ३९३ ॥
बिनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस ।
बावन-बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस ॥ ३९४ ॥
भलो भले सों छल किए जनम कनौड़ो होइ ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि-बावनगति सोइ ॥ ३९५ ॥
बिबुध-काज बावन बलिहि छलो, भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बस भे, तदपि मन की गइ न गलानि ॥ ३९६ ॥
सरल-बक्रगति पंचग्रह, चपरि न चितवत काहु ।

तुलसी सुधे सूर ससि, समय विडंबित राहु ॥ ३९७ ॥
खल-उपकार विकार-फल तुलसी जान जहान।
मेंढुक मर्कट बनिक बक कथा सत्य-उपखान ॥ ३९८ ॥
तुलसी खल-बानी मधुर सुनि समुझिय हिय हेरि।
रामराज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि ॥ ३९९ ॥
जोक सूधिमन कुटिलगति, खल विपरीत विचारु।
अनहित सोनित सोप सो, सो हित सोपनहारु ॥ ४०० ॥
नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥ ४०१ ॥
भरदर बरषत कोससत बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर हये, गएँ न पराइ ॥ ४०२ ॥
पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसानि ॥ ४०३ ॥
सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन? ॥ ४०४ ॥
जासु भरोसे सोइए राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस ॥ ४०५ ॥
मार खोज लै सौंह करि, करि मत, लाज न त्रास।
मुए नीच ते मीच बिनु जे इनके बिस्वास ॥ ४०६ ॥
परद्रोही, परदार-रत, परधन, पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥ ४०७ ॥
बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख विचारि ॥ ४०८ ॥

३९७—चपरि = तेजी से, सहसा।
३९८—सत्य-उपखान = सत्योपाख्यान नाम का ग्रंथ।
४०६—मार = मारते हैं।

हँसनि, मिलनि, बोलनि मधुर, कटु करतब मन माँह ।
छुवत जो सकुचै सुमति सो तुलसी तिन्हकी छाँह ॥ ४०९ ॥
कपटसार सूची सहस, बाँधि बचन-परवास ।
कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास ॥ ४१० ॥
बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छल छूति ।
तुलसी क्यों सुख पाइए अंतर्जामिहि धूति ? ॥ ४११ ॥
सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति ॥ ४१२ ॥
बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किए लजात ।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात ॥ ४१३ ॥
देस-काल-करता-करम-बचन-बिचार-बिहीन ।
ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि-तीर मलीन ॥ ४१४ ॥
साहसही, कै कोपबस किए कठिन परिपाक ।
सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक ॥ ४१५ ॥
राज करत बिनु काजही करैं कुचालि कुसाज ।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज ॥ ४१६ ॥
राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट ।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइहैं बारहबाट ॥ ४१७ ॥
सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग ।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहँ प्रपंची लोग ॥ ४१८ ॥
पांडुसुवन की सदसि ते, नीको रिपु हित जानि ।
हरि हर सम सब मानियत, मोह ज्ञान की बानि ॥ ४१९ ॥
हित पर बढ़ै बिरोध जब, अनहित पर अनुराग ।
राम-बिमुख बिधि बामगति, सगुन अघाय अभाग ॥ ४२० ॥
सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै सिर मानि ।

४१०—परवास = प्रवास, आच्छादन अर्थात् प्रबंध ।

सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥ ४२१ ॥
भरुहाए नट भाँट के चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम ॥ ४२२ ॥
लोकरीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै सो आँधरो न होइ ॥ ४२३ ॥
भागे भल, ओड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ।
तुलसी सबके सीस पर रखवारो रघुराउ ॥ ४२४ ॥
सुमति बिचारहिं, परिहरहिं दल-सुमनहु संग्राम।
सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम ॥ ४२५ ॥
कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीचगृह जरत धनिक-धन धाम ॥ ४२६ ॥
छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु! मानहिं सीख।
अविचल श्रीपति हरि भए, भूसुर लहै न भीख ॥ ४२७ ॥
कौरव पांडव जानिए क्रोध छमा के सीम ॥
पाँचहि मारि न सौ सके, सयो सँहारे भीम ॥ ४२८ ॥
बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥ ४२९ ॥
जो परि पायँ मनाइए तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि ॥ ४३० ॥
जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।
डहके ते डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि ॥ ४३१ ॥
जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु ॥ ४३२ ॥
जो मधु मरै न मारिये माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥ ४३३ ॥

४२२—भरुहाए = बढ़ावा देने से।

वैर-मूल-हर हित-वचन, प्रेममूल उपकार।
दो'हा' सुभ-संदोह सो, तुलसी किये विचार॥ ४३४॥
रोष न रसना खोलिए, वरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन विचारि॥ ४३५॥
मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव, काका कररत काग॥ ४३६॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर॥ ४३७॥
छियो न तरुनि-कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु॥ ४३८॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु कायर करहिं प्रलापु॥ ४३९॥
बचन कहे अभिमान के पारथ पेंपत सेतु।
प्रभुतिय लुटत नीच भर जय न, मीचु तेहि हेतु॥ ४४०॥
राम लषन बिजयी भए बनहु गरीबनिवाज।
मुखर बालि रावन गए घर ही सहित समाज॥ ४४१॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल॥ ४४२॥
लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति मैं हारि।
तुलसी सुमति सराहिए, मग पग धरै विचारि॥ ४४३॥
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा विचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक॥ ४४४॥

४३४—दो'हा' = 'हा हा' अर्थात हा [redacted] खाना; विनती करना।
४४०—एक बार समुद्र में बँधे सेतु को देख अर्जुन ने हनुमान से गर्व से कहा, "मैं तो बाणों का पुल बाँध सकता था।" अर्जुन ने पुल बाँधा, पर वह हनुमान जी के पैर रखते ही बैठ गया।
४४४—दूक=दोनों।

सिंधुतरन कपि गिरिहरन काज साइँ हिव दोउ।
तुलसी समयहि सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ ॥ ४४५ ॥
तुलसी मीठो अमी ते॓ माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच ॥ ४४६ ॥
तुलसी असमय के सखा धीरज, धरम, बिवेक।
साहित, साहस, सत्यब्रत, राम-भरोसो एक ॥ ४४७ ॥
समरथ कोउ न राम सों, तीय-हरन अपराधु।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिँ साधु ॥ ४४८ ॥
तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह ॥ ४४९ ॥
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥ ४५० ॥
कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस।
चारि चारु परलोक-पथ, जथाजोग उपदेस ॥ ४५१ ॥
पात पात को सींचिबो न करु सरग-तरु हेत।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत ॥ ४५२ ॥
गठिबँध तें परतीति बड़ि, जेहि सब को सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज ॥ ४५३ ॥
अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिँ निज भीति।
फलै सकल मनकामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥ ४५४ ॥
बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु ॥ ४५५ ॥
स्रुति-गुन कर-गुन, पु-जुग-मृग हय, रेवती, सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु, गएहु न जाइहि काउ ॥ ४५६ ॥

४५६—स्रुति-गुन = श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात श्रवण, धनिष्ठा और

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ ॥ ४५७ ॥
रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक वार ।
तिथि सब-काज-नसावनी, होइ, कुजोग विचार ॥ ४५८ ॥
ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनिफल वसु हर भानु ।
मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जिय जानु ॥ ४५९ ॥
नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप ।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाप ॥ ४६० ॥
सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात ।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात ॥ ४६१ ॥

शतभिष् ।
कर-गुन = हस्त से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाती ।
पु-गुन = दोनों पु अर्थात् 'पु' से आरंभ होनेवाले पुष्य और पुनर्वसु ।
सखा = अनुराधा । स्वात्यादित्य मृदुद्विदैव गुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे ।
४५७—ऊ-गुन = उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद ।
पूगुन = पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद ।
वि = विशाखा । अज = रोहिणी । कृ = कृत्तिका । म = मघा । आ = आर्द्रा । भ = भरणी । अ = अश्लेषा । मू = मूल ।

तीक्ष्ण मिश्र ध्रुवोग्रैर्यद् द्रव्यंदत्तं निवेशितं ।
प्रयुक्तंच, विनष्टंच, विष्टयापाते च नाप्यते ॥

४५८—रवि = द्वादशी । हर = एकादशी । दिसि = दसमी । गुन = तीज । रस = षष्ठी । नयन = दूज । मुनि = सप्तमी—ये यदि क्रम से रवि सोम, मंगळ, बुध, गुरु, शुक्र और शनि को पड़ें तो ।
४५९—चंद्रमा को इन इन स्थानों पर घातक समझो—
मेष का १, वृष का ५, मिथुन का ९, कर्क का २, सिंह का ६, कन्या का १०, तुला का ३, वृश्चिक का ७, धन का ४, मकर का ८, कुंभ का ११, मीन का १२ ।
४६०—सुदरसन = मछली । दरसनी = दर्पण । चक = चक्रवाक ।

भरत सत्रुसूदन लषन सहित सुमिरि रघुनाथ ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलिहि सुमंगल साथ ॥ ४६२ ॥

राम लषन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान ।
लच्छिलाभ लै जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान ॥ ४६३ ॥

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किए विचार ।
जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार ॥ ४६४ ॥

बुध किसान सर-वेद निज मते खेत सब सींच ।
तुलसी कृषि लखि जानिवो उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ४६५ ॥

सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान ।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान ॥ ४६६ ॥

अनहित-भय परहित किये, पर-अनहित हितहानि ।
तुलसी चारु विचार भल, करिय काज सुनि जानि ॥ ४६७ ॥

पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान ।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान ॥ ४६८ ॥

चलब नीतिमग, रामपग नेह निबाहब नीक ।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक ॥ ४६९ ॥

दोहा चारु विचारु चलु परिहरि बाद विबाद ।
सुकृत-सीवँ, स्वारथ-अवधि, परमारथ-मरजाद ॥ ४७० ॥

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती, साधु, सयान ।
जो विचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥ ४७१ ॥

जाय जोग जग छेम विनु, तुलसी के हित राखि ।
विनु ऽपराध भृगुपति, नहुष, वेनु, बृकासुर साखि ॥ ४७२ ॥

बढ़ि प्रतीति गठिबंध तेँ, बड़ो जोग तेँ छेम ।
बड़ो सुसेवक साँइँ तें, बड़ो नेम तें प्रेम ॥ ४७३ ॥

४७२—जाय = व्यर्थ ।

सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच ।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय परमनरंजन पाँच ॥ ४७४ ॥
नगर, नारि, भोजन, सचिव, सेवक, सखा, अगार ।
सरस, परिहरे रंगरस निरस विषाद विकार ॥ ४७५ ॥
तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहि काज बिगारि ।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि ॥ ४७६ ॥
दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर-जोग ॥ ४७७ ॥
पाही खेती, लगनबट, ऋन कुब्याज, मग-खेत ।
बैर बड़े सों आपने, किये पाँच दुख-हेत ॥ ४७८ ॥
धाय लगे लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु ।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीचु ॥ ४७९ ॥
सोचिय गृही जो मोहबस, करै करमपथ-त्याग ।
सोचिय जती प्रपंच-रत, बिगत बिबेक बिराग ॥ ४८० ॥
तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि ।
अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि ? ॥ ४८१ ॥
बिनु आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय ।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय ॥ ४८२ ॥
जौपै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान ।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्यामसुजान ? ॥ ४८३ ॥

सोरठा

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरखहृदय न चेत, जो गुरु मिलैं बिरंचि सिव ॥ ४८४ ॥

४७८–पाही खेती = जिस गाँव में बसे हों उससे दूर दूसरे गाँव में खेती । लगनबट = प्रेम ।

४८१–मधुजी और कटिया का दृष्टांत।

दोहा

रीझि आपनी बूझिपर, खीझि विचार-विहीन ।
ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन ॥ ४८५ ॥

अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु ।
तुलसी आपु न समुझिए पलपल पर परितापु ॥ ४८६ ॥

कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर ।
बवहिं, नवहिं निज काज सिर, कुमति-सिरोमनि कूर ॥ ४८७ ॥

निडर ईस तें बीसकै बीसबाहु सो होइ ।
गयो गयो कहँ सुमति सब, भयो कुमति कह कोइ ॥ ४८८ ॥

जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहै जु सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥ ४८९ ॥

बहु सुत, बहु रुचि, बहु बचन, बहु अचार ब्यवहार ।
नको भलो मनाइबो यह अज्ञान अपार ॥ ४९० ॥

लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस ।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ॥ ४९१ ॥

अपजस-जोग कि जानकी, मनिचोरी की कान्ह ? ।
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह ॥ ४९२ ॥

तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ ।
तौ कि जानिकिहि आनि जिय परिहरते रघुराउ ? ॥ ४९३ ॥

४८७—आए धारि बबूर बवहिं = कहावत अर्थात् जब सेना ने गढ़ घेर लिया तब चारों ओर रोक के लिए चले बबूल बोने ।

४८८—बीसकै = बीस बिस्वे, निश्चय ।

४९१—गेंडुआ = तकिया ।

४९२—नान्ह = महीन ।

४९३—गुमान = बुरी धारणा, बदगुमानी, लोकापवाद ।

माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि ।
पाय-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि ॥ ४९४ ॥
तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता-सनमान ।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥ ४९५ ॥
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय ।
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाइ ॥ ४९६ ॥
तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ ।
सो गति देखियत अछत तनु, सुख संपति गति पाइ ॥४९७॥
तुलसी तोरत तीरतरु, बकहित हंस बिडारि ।
विगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियारि ॥ ४९८ ॥
अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद ।
सुधासदन बसु, बारहें, चउथे चउथिउ चंद ॥ ४९९ ॥
त्रिबिध एक बिधि प्रभु-अनुग अवसर करहिं कुठाट ।
सूधे टेढ़े, सम विषम, सब महँ बारहबाट ॥ ५०० ॥
प्रभु तेँ प्रभु-गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
कर तेँ होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥ ५०१ ॥
ब्यालहु तेँ बिकराल बड़ ब्यालफेन जिय जानु ।
वहि के खाए मरत है, वह खाये बिनु प्रानु ॥ ५०२ ॥

४९४—खात ते = खाते थे ।

४९६—बहराइच में सालार मसऊद गाजी (गाजी मियाँ) की दरगाह है जहाँ कई हज़ार यात्री आया करते हैं। यह महमूद ग़ज़नवी का भानजा था जो महमूद के कन्नौज से आगे न बढ़ने पर भी ग़ाज़ी होने के हौसले से अवध की ओर कुछ सेना ले कर आया। यहाँ श्रावस्ती (आधु० सहेतमहेत जो बलरामपुर के पास है) के जैन राजा सुहृद्देव के हाथ से मारा गया ।

४९९—चउथिउ = भादों सुदी चौथ का चंद्रमा ।

५०२—वहि के खाए = उसके काटने से ।

कारन ते कारज कठिन, होइ दोप नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें, उपल तें लोह कराल कठोर ॥ ५०३ ॥
काल विलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि ।
रविहि राउ, राजहि प्रजा, बुध व्यवहरहिं विचारि ॥ ५०४ ॥
जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिय कुवास सुवास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥ ५०५ ॥
भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप-नियोग नय नेम ।
सुतिय सुभूपति भूपियत लोह-सँवारित छेम ॥ ५०६ ॥
माली भानु किसान सम नीतिनिपुल नरपाल ।
प्रजा-भागवस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥ ५०७ ॥
बरपत हरपत लोग सब, करपत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ ५०८ ॥
सुधा सुनाज, कुनाज फल, आम असन सम जानि ।
सुप्रभु प्रजाहित लेहि कर सामादिक अनुमानि ॥ ५०९ ॥
पाके, पकये विटप-दल उत्तम मध्यम नीच ।
फल नर लहैं, नरेस त्यों करि विचार मन बीच ॥ ५१० ॥
रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु ।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु ॥ ५११ ॥
धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा सुवच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाइ ॥ ५१२ ॥
चढ़े बघूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज ।
करम, धरम, सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज ॥ ५१३ ॥

५०९—सुधा = दूध रस आदि पीने के उत्तम पदार्थ ।

५१२—चारितु = चारा । गोड़ की करना = दूध दूहते समय गाय के पैर बाँधना ।

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि ॥ ५१४ ॥
काल तोपची, तुपक महि, दारू-अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥ ५१५ ॥
भूमि रुचिर रावन-सभा, अंगद-पद महिपाल।
धरम राम, नय सीय बल अचल होत सुभ काल ॥ ५१६ ॥
प्रीति-रामपद, नीतिरति, धरम प्रतीति सुभाइ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ वचन मन काइ ॥ ५१७ ॥
कर के कर, मन के मनहिं, वचन बचन गुन जानि।
भूपहि भूलि न परिहरै विजय विभूति सयानि ॥ ५१८ ॥
गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन विचारि विसेखु ॥ ५१९ ॥
सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ।
बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥ ५२० ॥
रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
शांत सुसचिवन सौंपि सुख विलसहिं नित नरनाहु ॥ ५२१ ॥
मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥ ५२२ ॥
सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ॥ ५२३ ॥
मंत्री, गुरु अरु वैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिही नास ॥ ५२४ ॥
रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज।
प्रभु-कर सेन पदादिका, बालक राज-समाज ॥ ५२५ ॥

५१९—बान = बाना, फेंक कर मारा जानने वाला शस्त्र।
५२१—सुबाहु = सेना।

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि ।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा विचारि ॥ ५२६ ॥

प्रभु समीप छोटे, बड़े, निवल, होत बलवान ।
तुलसी प्रगट बिलोकिये कर अँगुली अनुमान ॥ ५२७ ॥

साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान ।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥ ५२८ ॥

तुलसी भल बरतरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल ।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि-फलनि-बिनु फूल ॥ ५२९ ॥

सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाइँ महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते त्रिभुवन के दीप ॥ ५३० ॥

तुलसी निज करतूति बिनु मुकत जात जब कोइ ।
गयो अजामिल लोकहरि, नाम सक्यो नहिं धोइ ॥ ५३१ ॥

बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन-कर-दंड ।
श्रीप्रभु के संग सों बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड ॥ ५३२ ॥

तुलसी दान जो देत हैं जल में हाथ उठाय ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय ॥ ५३३ ॥

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ ।
तुलसी अंबुज अंबु-बिन तरनि तासु रिपु होइ ॥ ५३४ ॥

उरबी परि कुलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान ।
तुलसी देखु कलापगति, साधन-धन पहिचान ॥ ५३५ ॥

५३३—जल में हाथ उठाय = गंगा में खड़े होकर जो गंगापुत्र आदि को दान दिया जाता है वह ऐसा ही है जैसा जल में मछली पकड़ने के लिए फेंका हुआ चारा जिसे खानेवाला भी मर जाता है और देनेवाला भी नरक में जाता है ।

तुलसी संगति पोच की सुजनहिं होति मदानि ।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन जुहारी श्रानि ॥ ५३६ ॥
कलि-कुचालि सुभमति-हरनि, सरलै दंडै चक्र ।
तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र ॥ ५३७ ॥
गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं बिसेक ।
तुलसी पीवैं, फिरि चलैं, रहैं फिरैं सँग एक ॥ ५३८ ॥
साधन-समय, सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल ।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल-मूल ॥ ५३९ ॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिरधरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, न तरु जनम जग जाय ॥ ५४०
अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितुबैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥ ५४१ ॥

सोरठा

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभगति लहै ।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥५४२॥

दोहा

सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥ ५४३ ॥

५३६—मदानि=कल्याणदायिनी ।ज्यों...श्रानि = भक्तमाल में कथा है कि एक बढ़ई ने काठ के दो हाथ जोड़ कर विष्णु का रूप बनाया और एक राजकन्या पर मोहित होकर उससे विवाह कर लिया । एक बार कन्या के पिता पर कोई आपत्ति आई । उसने अपनी कन्या से अपने पति विष्णु से सहायता माँगने के लिए कहा । अपने रूप की मर्य्यादा का ध्यान करके विष्णु ने सचमुच रक्षा की ।

५३७—चक्र=राजचक्र, अर्थात् राजा अपने राजपुरुषों के सहित । बाढ़ि लेति नव = नित नई नई बढ़ती है । बक्र = बक्रता ।

तुलसी तृन जल-कूल को निरधन, निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज ॥ ५४४ ॥
रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै? कलि-कुचालि पर प्रीति ॥ ५४५ ॥
पात पात कै सींचिबो, बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ?॥ ५४६ ॥
प्रीति, सगाई, सकल गुन, बनिज, उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल-मलिन डहकत एकहि एक ॥ ५४७ ॥
दंभ सहित कलिधरम सब, छल-समेत ब्यवहार।
स्वारथ-सहित सनेह सब, रुचि-अनुहरत अचार ॥ ५४८ ॥
चोर, चतुर, बटपार, नट, प्रभुप्रिय भँडुआ, भंड।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपंथ पाषंड ॥ ५४९ ॥
असुभ बेष भूषन धरैं, भच्छ अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिं ॥ ५५० ॥

सोरठा

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ।
मन बच करम लबार ते बकता कलिकाल महँ ॥ ५५१ ॥

दोहा

ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि ते मोहबस करहिं बिप्र-गुरु-घात ॥ ५५२ ॥
बादहिं सूद्र द्विजन सन "हम तुम तें कछु घाटि ?।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर", आँखि दिखावहिं डाँटि ॥ ५५३ ॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥ ५५४ ॥
स्रुति-संमत हरि-भक्तिपथ, संजुत-बिरति-बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥ ५५५ ॥

सकल धरम विपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ॥ ५५६॥
धातुवाद, निरुपाधि वर, सदगुरु-लाभ, सुमीत।
देव-दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत॥ ५५७॥
सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज॥ ५५८॥
गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥ ५५९॥
फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार।
कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार॥ ५६०॥
प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान।
येन केन विधि दीन्हे ही दान करै कल्यान॥ ५६१॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुन-गन विमल भव तर विनहिं प्रयास॥ ५६२॥
स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह।
इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह? ॥ ५६३॥
तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन? ॥ ५६४॥
कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पापंड।
दहन रामगुन-ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड॥ ५६५॥

सोरठा

कलि पापंड-प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतित।
तुलसी उभय अधार, रामनाम, सुरसरि-सलिल॥ ५६६॥

५५७—धातुवाद = रसायन।
५५८—मवासे मारि = क़िला बाँध कर।
५६०—डहार = डाहनेवाले। तंग करनेवाले।

दोहा

रामचंद्र-मुख-चंद्रमा चित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥ ५६७ ॥
बीज राम-गुनगन, नयन जल, अंकुर पुलकालि।
सुकृती-सुतन सुखेत वर, बिलसत तुलसी सालि ॥ ५६८ ॥
तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥ ५६९ ॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम ॥ ५७० ॥
मनिमय दोहा दीप जहँ, उरघर प्रगट प्रकास।
तहँ न मोह भय-तम तमी, कलि कजली बिलास ॥ ५७१ ॥
का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥ ५७२ ॥
मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥ ५७३ ॥

५७२—कुमाच = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

कवितावली

कवितावली

—:❀:—

बालकांड

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच बिमोचन कों ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥१॥

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरबिंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यौ अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिये?॥२॥

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन मंदिर में बिहरैं॥३॥
कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन मंदिर मैं बिहरैं॥४॥

बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की॥

१—समसील = समानता वाला, समान।

घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥५॥

पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजूतट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि कियें?।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जियें ॥६॥

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै ॥७॥

कवित्त

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया
छोनी छोनी छाये छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरबे को बोले बयदेही बरकाज के॥
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
तुलसी मुदित मन पुरनर-नारि जेते
बारबार हेरैं मुख औध-मृगराज के ॥८॥

७—दस, चारि......सबै = दस गुण माधुर्य्य के (रूप, लावण्य, सौंदर्य, माधुर्य्य, सौकुमार्य्य, यौवन, सुगंध, सुवेश, भाग्य, स्वच्छता, उज्वलता)। चार गुण प्रताप के (ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, तेज, बल)। ऐश्वर्य्य के नौ गुण (अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता)। सहज या प्रकृति के तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता)। यश के २१ गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गंभीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रव, उदारता, आर्जव, शरण्यत्व, सौहार्द, चातुर्य्य, प्रीतिपालन, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निर्व्हेषता)।

सीय के स्वयंवर समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को ?
पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,
गुण के निधान रूपधाम सोम काम को ? ॥
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के समर्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को ॥९॥

मयनमहन पुरदहन गहन जानि
आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल
किए बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है ॥
कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यौ मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है ॥१०॥

छप्पय

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरबिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर ॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ॥११॥

९—सालिम = दृढ़, अविचलित। चंद्रमा-ललाम = चंद्रभूषण, शिव।
११—हिमभानु = चंद्रमा।

घनाचरी

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,
सखी कहै सखी सों तू प्रेमपय पालि, री!
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तारयो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री ॥
जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, तुलसी को,
सब को भावतो ह्वैहै मैं जो कह्यो कालि री ।
कौसिला की कोखि पर तोपि तन वारियें री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥१२॥

दूब दधि रोचना कनकथार भरि भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं ।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के,
"पहिराओ राघोजू को" सखियाँ सिखावतीं ॥
तुलसी मुदितमन जनक नगरजन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज निज नीड़
चंद की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं ॥१३॥

नगर निसान बर बाजैं, ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं ।
जय जय तिहूँ पुर, जयमाल रामउर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं ॥
जनक को पन जयो, सब को भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं ।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरि
"जोरी जियौ जुग जुग" सखीजन जाँचहीं ॥१४॥

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों
"लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारखी"।
जगदंबा जानकी, जगतपितु रामभद्र,
जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी॥
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद,
बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना बिराजमान,
राम से न बर, दुलही न सीय सारखी॥१५॥
बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहुबारिखो।
चारिदस भुवन निहारि नर नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन कही जग में जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चषचारिखो।
रमा रमारमन, सुजान हनुमान कही,
"सीय सी न तीय न पुरुष राम सारिखो"॥१६॥

सवैया

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।१७।

कवित्त

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ
चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हैं।
कठिन कुठार धार धारिबे की धीरताहि,
बीरता बिदित ताकी देखिए चहतु हैं॥

तुलसी समाज राज तजि सो विराजै आजु,
गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं ।
छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको विरुद बहतु हौं ॥१८॥
निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानौ मौनता गही ।
रोपे माखे लषन अकनि अनखौहीँ बातैं,
तुलसी विनीत बानी बिहँसि ऐसी कही ॥
"सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ!
प्रगट प्रताप आपु कहो सो सबै सही ।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही"? ॥१९॥

सवैया

गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको ।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ'? हौं दलिहौं बल ताको ॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको ।
गोरो गरूर गुमान भरो कहो कौसिक छोटो सो ढोटो है काको" ॥२०॥

घनाचरी

मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये,
जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के ।
गैातम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी,
लोचन अतिथि भए जनक जनेस के ॥
चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के ।

१९—अकनि = सुनकर । सरीकता = शिरकत, साझा, बराबरी ।
२०—साका करना = अद्भुत कर्म करके स्थायी कीर्त्ति प्राप्त करना ।

साँवरे गोरे सरीर, धीर महा बीर दोऊ,
　　नाम राम लषन, कुमार कोसलेस के ॥२१॥

सवैया

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुनै फरसा लिए धाए।
लक्खन राम बिलोकि सप्रेम, महा रिसि ते फिरि आँखि दिखाए॥
धीर-सिरोमनि बीर बड़े, बिनयी, बिजयी रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए॥२२॥

अयोध्या कांड

सवैया

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग-लुगाई॥
सँग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥१॥
कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥२॥

घनाक्षरी

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी! भगिनी ज्यों सेई है।
कहैं मोहिं मैया, कहौं "मैं न मैया भरत की;
बलैया लैहौं, भैया! तेरी मैया कैकेयी है" ॥
तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ॥३॥
"कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पायँ कहै
"तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है।

१—कागर = पंख।
२—धर्म, क्रिया = धर्म और कर्म।
३—मतेई = बिमाता, सौतेली माँ।

रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है? ॥
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है" ॥४॥

सवैया

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे है ठाढ़े ॥५॥
एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू? ॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू?।
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥६॥
रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥७॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।

४—सुधागेह = (१) चंद्रमा, (२) कहते हैं कि कैकेयी के मुख में अमृत था।

५—स्वै = सोई, वही।

७—बन-बाहन = नाव।

सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू!
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ? ॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैके बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सौं साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥८॥

जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिवृंद देव देह भरि
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै ॥
तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु
ख्वैहौं न पठावनी[१] कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ? ॥९॥

प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को
धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि ॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि ॥१०॥

सवैया

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥

१—पठावनी = मजदूरी।

फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?"।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥११॥*

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े" ॥
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥१२॥

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे; धनु काँधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है ॥
तुलसी अस मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारक-मै ॥१३॥

घनाक्षरी

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥ १४ ॥

* लाला छक्कनलाल की छपाई प्रति में इसके आगे यह सवैया और है—
नटसूखि गए रसनाधर मंजुल कंज से लोचन चारु चुवैं।
करुनानिधि कंत तुरंत कह्यौ कि 'दुरंत महावन है इतवै'।
सरसीरुह-लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय पै ह्वै।
"अब ही बन, भामिनि! पूछति हौ तजि कोसलराज पुरी दिन द्वै।
इस सवैया में कहीं 'तुलसी' शब्द नहीं आया है, इससे संदेह है।

१२—भूभुरि = गरम धूल।
१४—चितेरा = चित्र।

आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे,
　　आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिपासन, बसन बन ही के कटि
　　कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नंदिनी सी,
　　तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, जोवन उमंग तन,
　　रूप की उमंगं उमगत अंग अंग हैं॥ १५॥

कवित्त

सुंदर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
　　मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
　　तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै
　　विधि विरचै वरूथ विद्युतछटनि के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
　　साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के॥ १६॥
बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
　　रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
　　नवल कवँल हू ते कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
　　मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं।

१५—बनाइ = अच्छी तरह, खूब।

१६—लूटक पटनि के = पटों की शोभा को लूटने या हरनेवाले। पटनि = पटों।

तापस बेपै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं ॥ १७ ॥

सवैया

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी! मोहिं सी है।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बियकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१८॥
साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिवेष कियो है ॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलि हैं? सकुचात हियो है॥१९॥
रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राज हु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ? ।
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै बनबास दियो है ?॥२०॥
सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहैं ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहौ साँवरे से, सखि रावरे को हैं ?" ॥२१॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥ २२ ॥
धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं ।

१९—बिधुबैनी = चंद्रवदनी ।
२१—त्यों = तरफ, ओर ।

कहिहैं जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं"।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं॥२३॥
पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाए॥
जिन देखे, सखी! सत भायहु तें तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभाय सिधाए॥२४॥
मुखपंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तोहि सौं मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं॥२५
प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलैं भ्रुकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥२६॥
सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै?॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है॥२७॥
बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥२८॥

२३—महि = मह, में।
२४—सोन = शोण, लाल।
२७—सिलीमुख पंच = चार तुणीर में और एक हाथ में।

अरण्य कांड

पंचवटी वर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबिछाए ॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए ॥ १ ॥

किष्किंधा कांड

जब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥ १॥

१—सकेलि = क्रीड़ा सहित, खेल ही खेल में।

सुंदर कांड

बासव बरुन विधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो ।
समय पुराने पात परत डरत बात,
पालत, ललात रति मार को बिहारु सो ॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव
रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो ।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो ॥१॥
माली मेघमाल बनपाल विकराल भट
नीके सब काल सींचै सुधासार नीर को ।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को ॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को ।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर को ॥ २ ॥
बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं ।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं' ॥
बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं ।

२—बजाइ = घोषित कर के ।

बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध की दवारि, कैधौं कोटिसत सूर हैं ॥ ३ ॥

लाइ लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरिमेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनककँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी बिराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ॥ ४ ॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं
"कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है" ॥ ५ ॥

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे"।

३—बालधी = पूँछ।

तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे !" ॥ ६ ॥

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि
कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं।
लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं॥
तुलसी समिध सौंज लंक-जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव, तिल, धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं॥ ७ ॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जतुधानधारि,
बारिधारा उलदैं जलद ज्यौं न सावनो।
लपट झपट झहराने, हहराने बात
भहराने भट परयो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो" ॥ ८ ॥

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो।
बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो।
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो !!"

७—सौंज = सामग्री। प्रतिकूल हवि = अद्‌भुत हवि।

काहे की कुसल रोपे राम वामदेवहू के,
विषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो ॥ ९ ॥

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है ।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्योंहूँ कोऊ पालिहै ?"
तुलसी मँदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है" ॥
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ो बलाइ घने घर घालिहै" ॥ १० ॥

कानन उजारयो तौ उजारयो न बिगारेउ कछू,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों ।
निपट निडर देखि काहू ना लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ।
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों" ॥
तुलसी मँदोवै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु,
"बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों" ॥ ११ ॥

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को ।
मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ।
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को ? ।

१०—मंदोवै = मंदोदरी ।

११—हार = बन । अनेरे = व्यर्थ, निकम्मे । बिगोवै = बिहीन दशा करती है।

खीभति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ॥ १२ ॥
रावन की रानी जातुधानी विलखानी कहैं
"हा हा ! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे, रे महोदर! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों ? ॥
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन !
अभागे तिय त्यागे भौंड़े भागे जात साथ सों ? ।
तुलसी बढ़ाय बादि साल तें बिसाल बाहैं,
याही बल, बालिसो ! विरोध रघुनाथ सों !" ॥ १३ ॥
हाट, बाट, कोट ओट, अटनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है ।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि हैं ॥
बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै ।
तुलसी विलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहै" ॥१४॥
'लागि लागि आगि,' भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं ।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंधअंध ;
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार बार हीं ॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं ।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति

१३—बालिस = बालिश, मूर्ख, छोकड़ा ।

"तात तात ! तौंसियत, झौंसियत झारहीं" ॥१५॥

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे ?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
"परे पाइमाल जात, "भ्रात ! तू निबाहि रे ॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ ! तू पराहि, बाप,
बाप ! तू पराहि, पूत पूत ! तू पराहि रे" ।
तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल बिहाल कहैं
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥१६॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए ।
अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए ॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए ? ।
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥१७॥

एक करैं धौज, एक कहैं काढ़ौ सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहैं 'बनत न आवनो' ।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो' ॥
तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो ।

१४—तौंसियत = तपे जाते हैं ।
१५—पाइमाल जात = पामाल होते हैं, नष्ट हुए जाते हैं ।
१७—सतराइ जाइ = चिढ़ जाता था ।

"धाश्रो रे, बुझाश्रो रे कि बावरे हौ रावरे, या
      श्रौरै श्रागि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ॥१८॥
कोपि दसकंध तब प्रलयपयोद बोले,
      रावनरजाइ धाइ श्राए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति "लंक बरत बुताश्रो बेगि,
      बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरि कै" ॥
"भले नाथ!" नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
      बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै॥
जीवन तें जागी श्रागी, चपरि चौगुनी लागी,
      तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै ॥१९॥
इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
      सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
"जुग-षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे,
      सेषमुखश्रनल बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
      श्रति श्रचरज कियो केसरीकुमार है"।
बारिद बचन सुनि धुनै सीस सचिवन्ह,
      कहैं "दससीसईसबामताबिकार है" ॥२०॥
"पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
      काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं,
      महातपसाहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं॥
तुलसी तिलोक श्राजु दूजो न बिराजै राजा,

१८–धौज = दौड़ धूप। सौंज = सामान। धौंजि = ऊमस से घबराकर।
१९–घोरि कै = गरज कर। जीवन = जल।
२०–सर्पी = घृत, घी।

बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं।
को है ईस नाम ? को जो बाम होत मोहू सो को ?
मालवान! रावरे के बावरे से बोल हैं" ॥२१॥
"भूमि भूमिपाल, व्यालपालक पताल, नाकपाल,
लोकपाल जेते सुभट समाज हैं।
कहै मालवान "जातुधानपति रावरे को .
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ? ॥
रामकोह-पावक, समीरसीयस्वास, कीस-
ईस-बामता बिलोकु, बानर को ब्याज है।
जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीर तोसो सूर सिरताज है" ॥२२॥
पान, पकवान विधि नाना को, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनककिरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं ॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं ॥२३॥
हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।

२१—हिमवान=चंद्रमा। ओल=किसी का अपने किसी प्रिय प्राणी को दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा न पूरी करे तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे सो करे।

२३—सँधाना=अचार, चटनी। २४—पीठ=पाठा, पीढ़ा, काष्ठासन। पगार=प्राकार, चारदीवारी।

नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भाय सों ॥
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों" ॥२४॥
रावन सो राजरोग बाढ़त बिराटउर,
दिन दिन बिकल सकलसुखरांक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो ॥
राम की रजाय तें रसायनी समीरसूनु
उतरि पयोधिपार सोधि सरवाक सो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥२५॥
जारि बारि कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो, पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
"मातु ! कृपा कीजै, सहदानि दीजै" सुनि सीय
दीन्हीं है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै ॥
"कहा कहौं, तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै"।
तुलसी सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै ॥ २६ ॥
"दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरिकै।

२५—ओत = बीमारी में कुछ आराम, चैन। मनाक = थोड़ा। बुट = बूटी।
२६—सहदानी = पहचान का चिह्न, निशान। अवलंब [illegible] = अवलंब थी।

बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु,
सानुज कुसल कपिकटक बटोरि कै" ॥
बचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै ।
"जै जै जानकीस दससीसकरिकेसरी"
कपीस कूद्यो बातघात बारिधि हलोरि कै ॥ २७ ॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि
लंक सिद्धिपीठ निसि जागो है मसान सो ।
तुलसी बिलोकि महा साहस प्रसन्न भई
देवी सिय सारिषी, दियो है बरदान सो ॥
बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुलभानु को प्रतापभानु भानु सो ।
करत बिसोक लोककोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो आयो हनुमान सो ॥ २८ ॥

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं ।
बूड़त जहाज बच्यो पथिकसमाज, मानो
आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं ॥
'जै जै जानकीस, जै जै लषन कपीस' कहि
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत रेत हैं ।
अंगद मयंद नल नील बलसील महा,
बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं ॥ २९ ॥

२७—डफोरि कै = हाँक देकर, ललकार कर ।
२८—धारि = समूह, सेना ।
२९—बालधी = पूँछ, दुम ।

आयो हनुमान प्रानहेतु, अंकमाल देत,
लेत पगधूरि एक चूमत लँगूल हैं ।
एक बूझैं बार बार सीय समाचार कहे,
पवनकुमार भो बिगतस्रमसूल हैं ॥
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं ।
एक कहैं तुलसी 'सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं' ॥ ३० ॥

सीय को सनेहसील, कथा तथा लंक की
चले कहत चायसों, सिरानो पथ छन में ।
कह्यो जुवराज बोलि बानर समाज "आजु,
खाहु फल" सुनि पेलि पैठे मधुबन में ॥
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
'उजारे बाग अंगद'; दिखाए घाय तन में ।
कहैं कपिराज "करि काज आये कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में ॥ ३१ ॥

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो ।
ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो ॥
तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो ।

लंका कांड

बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,
तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंड,
मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं।
लंकदाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं॥
"बाचिहै न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारिहू के,
को है रन रारि को जौं कोसलेस कोपिहैं?" ॥ १ ॥

त्रिजटा कहत बार बार तुलसीस्वरी सौं,
"राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोपिहैं।
सकुल सँघारि जातुधानधारि, जंबुकादि
जोगिनीजमाति कालिकाकलाप तोपिहैं॥
राज दै निवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोपिहैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोपिहैं" ॥ २ ॥

बिनय सनेह सौं कहति सीय त्रिजटा सों
"पाये कछु समाचार आरजसुवन के?"।
"पाये जू! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि,
आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के॥
बदनमलीन बलहीन दीन देखि मानो
मिटै घटै तमीचरतिमिर भुवन के।

लोकपतिसोककोक, मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु आदित उवन के" ॥ ३ ॥

झूलना

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन वालि
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो ।
आनि परवाम बिधिवाम तेहि राम सों
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो ।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥ ४ ॥

सवैया

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी ।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी? ॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी ।
कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥५॥
जब पाहन भे बनबाहन से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े ।
तुलसी लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलवारि बढ़े ॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े ।
चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े ॥ ६ ॥

घनाक्षरी

बिपुल बिसाल बिकराल कपि भालु मानो
काल बहु बेष धरे धाये किये करषा ।

१—लोक पति-सोक-कोक = मनोक-लोकपति-कोक ।
२—कीर्त्ति बड़ो = कीर्त्ति में बड़ा ।
६—रढ़े = रटा, बोले ।

लिये सिला सैल, साल ताल औ तमाल तोरि
　　तोपैं तोयनिधि, सुर को समाज हरषा ॥
डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,
　　डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा ।
तुलसी तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
　　को करै अटक कपि-कटक अमरषा ? ॥ ७ ॥
आए सुक सारन बोलाए, ते कहन लागे,
　　पुलक सरीर सेना करत फहम ही ।
महाबली बानर बिसाल भालु काल से
　　कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही' ।
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ को प्रताप सुनि,
　　तुलसी दुरावै मुख सूखत सहमही ॥
राम के बिरोधे बुरो विधि हरि हरहू को,
　　सबको भलो है राजा राम के रहम ही ॥ ८ ॥
'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि,' भयो
　　सोर चहुँ ओर लंका आए जुबराज के ।
एक काढ़ै सौंज, एक धौंज करै कहा ह्वैहै,
　　'पोच भई महा' सोच सुभट समाज के ॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
　　मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के ।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
　　लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के ॥ ९ ॥
तुलसीस-बल रघुबीर जू के बालिसुत
　　वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी ।

७—धरांधर = (१) पर्वत (२) शेष । धरषा = धर्षित हुआ ।
९—बातजात = हनुमान् ।

"बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
    रिस काहें लागति कहत हौं तो तेरी सी ।
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि,
    नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी ॥
सुनु दसमाथ ! नाथ-साथ के हमारे कपि
    हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी ॥ १० ॥

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
    तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को ।
एक ही बिसिप बस भयो बीर बाँकुरो जो,
    तोहू है बिदित बल महाबली बालि को ॥
तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,
    मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को ।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
    तेरी कहा चली, बिड ! तो सो गनै घालि को ॥ ११ ॥

सवैया

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे ।
बालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे ॥
ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे ।
राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे ॥ १२ ॥

तू रजनीचरनाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं ।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहिं लाज न गाल बजावत सौहौं ।

१०—खीस होत = नष्ट होती । मढ़ = मंडप । हाथ की हथेरी सी = समथल, सपाट ।

११—कुठारपानि = परशुराम । बिड = विट, नीच, खल । घालि गनै = घलुए या परसंगे बराबर समझता है । तुच्छ समझता है ।

१२—धौं = ज़ोर देने के लिये प्रयुक्त शब्द, तो ।

बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसुभंग ते जौ हौं ।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं ॥१३॥
कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं ।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की, चोट चटाक दै फोरौं ॥
आयसुभंग तें जौ न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं ।
बालि को बालक जौं तुलसी दसहूमुख के रन में रद तोरौं ॥ १४॥
अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा ॥
न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनों महि संग बिरंचि रचा ।
तुलसी सब सूर सराहत हैं "जगमें बलसालि है बालि-बचा" ॥१५॥

घनाक्षरी

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीरबल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है ।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है ॥
महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि,
तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है ।
कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है ॥ १६ ॥

झूलना

कनकगिरिसृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक,
बदति मंदोदरी परम भीता ।

१४—खोरौं = स्नान करूँ, नहाऊँ ।

१६—घठा = लागातार बहुत दिनों तक दाब पड़ते रहने से कड़ा पड़ा हुआ चमड़ा जिसमें वेदना कम होती है । घट्ठा ।

"सहसभुज-मत्त-गजराज-रनकेसरी
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता ॥
दास तुलसी समरसूर कोसलधनी
ख्याल ही बालि बलसालि जीता ।
रे कंत ! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि,
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता ॥१७॥

रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का
भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो ।
सहस-दसचारि खल सहित खर दूषनहि,
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो ॥
मैं जु कहौं कंत सुनु संत भगवंत सौं,
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो ? ।
बीस भुज सीस दस खीस गए
तबहिं जब ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो ॥ १८ ॥

बालि दलि काल्हि जलजान पाषान किय,
कंत ! भगवंत तैं तउ न चीन्हे ।
बिपुल बिकराल भट भालु कपि काल से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हे ॥
आइगो कोसलाधीस तुलसीस जेहि
छत्रमिस मौलि दस दूरि कीन्हे ।
ईस-बकसीस जनि खीस करु ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल बैदेहि दीन्हे ॥ १९ ॥

सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै,
महाबलबीर हनुमान जानी ।
भूलि है दसदिसा सेस पुनि डोलिहैं

१८—पठै = पठए, भेजे ।

कोपि रघुनाथ जब बान तानी ॥
बालिहू गर्व जिय माहिं ऐसो कियो,
मारि दहपट कियो जम की घानी।
कहति मंदोदरी सुनहि, रावन ! मतो,
बेगि लै देहि बैदेहि रानी। २० ॥
गहन उज्जारि पुरजारि सुत मारि तव,
कुसल गो कीस बरबेर जाको।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको ॥
दास तुलसी सभय बदति मयनंदिनी,
मंदमति कंत! सुनु मंत म्हाको।
तौलौं मिलु बेगि नहिं जौलौं रन रोप भयो,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको ॥ २१ ॥

घनाक्षरी

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधान मंडली मे कपि
कोपि रोप्यो पाँव, सो प्रभाव तुलसीस को ॥
कंत ! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौलौं मिलु बेगि जौलौं चाप न चढ़ायो राम,
रोपि बान काढ़यो न दलैया दससीस को ॥ २२ ॥

२०—दहपट कियो = ध्वस्त किया।
२१—बरबेर = बड़े शरीरवाला। थाको = (१) तुम्हारा वा (२) ढीलापड़ा। म्हाको = मेरा।
२२—हातो कीजै = दूर दीजिए।

पवन को पूत देखो दूत बीर बाँकुरो जो
 बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो ॥
बालि बलसालि को, सो कालिह दाप दलि, कोपि
 रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो ।
सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि,
 आए नाथ ! भागे तेँ खिरिरि खेह खाहिगो ॥
तुलसी गरब तजि, मिलिबे को साज सजि,
 देहि सीय नतो, पिय ! पाइमाल जाहिगो ॥ २३ ॥

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
 केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो ।
बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
 भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो ॥
तुलसी तिहारे विद्यमान जुवराज आजु,
 कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो ।
कहे की न लाज, पिय ! अजहूँ न आए बाज,
 सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो ॥ २४ ॥

जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हे,
 पैयत न छत्रीखोज खोजत खलक में ।
महिषमती को नाथ साहसी सहसबाहु
 समर समर्थ, नाथ ! हेरिए हलक में ॥
सहित समाज महाराज सो जहाजराज
 बूड़ि गयो जाके बलबारिधिछलक मेँ ।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
 नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में ॥ २५ ॥

२३—खिरिरि = खरोंच कर ।

२५—खलक = [अ० खल्क़] संसार । हलक = [अ० हल्क़] कंठ अर्थात् हृदय । नाक = प्रतिष्ठा ।

कीन्हीं छोनी छत्री बिनु, छोनिपछपनहार
कठिन कुठारपानि वीर बानि जानि कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनु हाई ह्वैहै मन अनुमानि कै॥
नाक मैं पिनाक मिस बामता बिलोकि राम
रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम भानि कै।
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय!
मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै॥ २६॥

कह्यो मत मातुल बिभीषनहु बार बार,
आँचर पसारि पिय पाँइ लै लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर, नाथ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी॥
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी।
कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी॥२७॥

सवैया

राम सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे॥
नाथ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बात के साँठे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे॥२८॥
पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है॥

२६—पै = अवश्य, निश्चय। हाई ह्वैहै = टूटेगा।
२७—लाई = जलाई।
२८—साँठे = पकड़े रहने से। सायर = सागर। काँठे = किनारे, तट पर।

तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है ॥
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है ॥ २९ ॥

घनाक्षरी

रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाज की।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की ॥
तुलसी बिलोकि कपि भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।
राम रुख निरखि हरषे हिय हनुमान,
मानों खेलवार खोली सीसताज बाज की ॥ ३० ॥

साजिकै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाये बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर बिसाल मेरु मंदर से,
लिये सैल साल तोरि नीरनिधि-तीर के ॥
तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।
रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं,
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के ॥ ३१ ॥

सवैया

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले ॥

२९—कहरी = [अ० क़हर] क्रोधी, आफ़त ढानेवाला। बहरी = एक प्रकार का शिकारी पक्षी।

३१—सनाह = कवच। गजगाह = भूल, पाखर। झुकरे से = झुँमझार से। सुमार सूर = चुने हुए वीर।

तुलसी गज से लखि केहरि लौं झपटे पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले ॥३२॥
सूर सजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ॥३३॥
गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के ॥३४॥
सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के॥
तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुवा खरके।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सों मुंड परे झर के ॥३५॥
रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै?।
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै ॥३६॥
जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रन रोर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँक हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बातन भूतल आए ॥३७॥

३२—सलीले = लीला से, खेल में।

३५—खपुवा = भगोड़े भरती के, निकम्मे। खगे = धँसे।

३६—साज = समान, तरह।

३७—फँग = फंदा, पंजा। भ्रम-बातन = चक्कर में।

जो दससीस महीधर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलनहारो ।
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो ॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो ।
सो हनुमान हनो मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो ॥३८॥

दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं ॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं ।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं ॥३९॥

घनाचरी

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे;
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की ।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ॥
बारबार सेवक-सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की ।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमान की ॥४०॥

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं ।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं ।

३८—पँवारा = लंबी कथा, वीर गाथा ।

३९—पक्खर = लड़ाई की झूल, कवच ।

बड़े बड़े बानइत वीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं ॥४१॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड वीर,
धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं 'तुलसीस राखि राम की सौं' टेरि कै।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै॥ ४२॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह-सी।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी॥
कँपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो
बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी॥ ४३॥

झूलना

मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्रटाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष सँकुचित, संकित पिनाकी॥
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।

४१—तुलसीस=हनुमान्।

रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥ ४४ ॥
कौन की हाँक पर चौंक चंडीस विधि,
चंडकर थकित फिरि तुरँग हाँके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके ॥
दास तुलसीस के विरुद बरनत विदुष,
धीर विरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
कहाँ हनुमान से बीर बाँके ॥ ४५ ॥
जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो।
विकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि,
निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो ॥
दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो ॥ ४६ ॥

छप्पय

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत ॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक विद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत ॥
लँगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥ ४७ ॥

४५—धाँके = धाक जमा दी।

घनाक्षरी

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लषन जातुधान के ।
मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के ॥
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के ।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के ॥ ४८ ॥

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं ।
सोनित सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं ॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, क्रूर कादर डरत हैं ।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं ॥ ४६ ॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै ।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समरसरि खोरि कै ॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै ।

४९—फेरु=गीदड़ ।

तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै ॥५०॥

सवैया

राम-सरासन तेँ चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानौ मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी ॥५१॥

घनाचरी

मानी मेघनाद सौँ प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की॥
भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं "मैं बिभीषन की कछु न सबील की"।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की ॥५२॥

सवैया

कानन बास, दसानन सो रिपु, आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
सीय हरी, रन बंधु परयो, पै भरयो सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है? ॥५३॥

५०—खोरिकै = खुरच कर गड्ढा कर के। खोरिकै = नहा करके। झुटुंग = एक प्रकार की योगिनी।

५२—दील = दिल, मन। सबील = प्रबंध। बाहँ बोले की = शरण में लेने की।

५३—बियो = दूसरा।

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥५४॥

घनाचरी

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फल छलि कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै ॥
बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै ॥५५॥
बापु दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,
बैरी भो दसानन सो, तीय को हरन भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
बिभीषन नेवाजि, सेतुसागर तरन भो ॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये,
घायल लखन बीर बानर बरन भो।
ऐसे सोक में तिलोक कै बिसोक पलही में,
सबही को तुलसी को साहिब सरन भो ॥५६॥

सवैया

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे ॥

५४—धुकि = झपटकर, झोंके से चलकर।
५५—हरिनाथ = कपिपति, हनुमान

देव निसान बजावत गावत, सावँत गो, मनभावत भो रे!।
नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि "हा रे! हहा भइया, हो रे!॥५७॥

घनाक्षरी

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं।
नाग नर किन्नर विरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिये हेतु, हरषतु हैं॥
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजैं,
देखत विषाद मिटे मोद करषतु हैं।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
तुलसी निहाल कै कै दियो सरषतु हैं॥५८॥

५७—ओरे = ओले। सावँत = सामंतपना, अधीनता।
५८—सरखत = परवाना।

उत्तर कांड।

सवैया

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे॥
राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हम से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥ १॥
बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत, पुजावन रावन सों नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोविद गावैं।
राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं॥ २॥
बेद-बिरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लात न मारो॥ ३॥
सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो॥
नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सों कहौ जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनेवाज न दूसर ऐसो॥ ४॥
मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो॥
कोसलपाल बिना तुलसी सरनागतपाल कृपालु न दूजो।
कूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो॥ ५॥

२—बाम लावैं=बायाँ दे जाते हैं, दूर हटते हैं।

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावक की कलुषाई दही है।
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है ॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है ॥ ६ ॥
अपराध अगाध भए जन तें अपने उर आनत नाहिंन जू ।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू ॥
लिए बारक नाम सुधाम दियो जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
तुलसी भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ॥ ७ ॥
प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, विलंब कियो न तहाँ ॥
सुर साखी दै राखी है पांडुबधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ ।
तुलसी भजु सोच-विमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ ॥८॥
नरनारि उघारि सभा महँ होत दियो पट, सोच हर्यो मन को ।
प्रहलाद-विषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को ॥
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भार सदा अपने पन को ।
तुलसी तजि आन भरोस भजे भगवान भलो करिहैं जन को ॥ ९ ॥
ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही ।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सब ही ।
दससीस-विरोध सभीत विभीषन भूप कियो जग लीक रही ।
करुनानिधि को भजु रे तुलसी, रघुनाथ अनाथ के नाथ सही ॥१०॥
कौसिक विप्रबधू मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माहैं ।
बालि-दसानन-बंधु कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सीलसराहैं ॥
ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं ।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं ॥ ११ ॥

९—नरनारि = अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ।
११—गुन-गाहैं = गुण गाथाएँ ।

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
व्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सें तिहुँ खारे॥
तुलसी तेहि सेवत कौन मरै? रज तें लघु को करे मेरु तें भारे?।
स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तोसों तुहीं दसरत्थ दुलारे॥१२॥

घनाचरी

जातुधान भालु कपि केवट विहंग जो जो
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए
राखे अपनाइ, सो सुभाव महाराज को॥
नाम तुलसी पै भोंडे भाग, सो कहायो दास,
किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समर्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तोसों तुही आपने की लाज को॥ १३॥

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि
सखा किये, महाराज हौं न काहू काम को।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आए,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े धाम को॥
राय दसरत्थ के समर्थ तेरे नाम लिए
तुलसी से क्रूर को कहत जग राम को।
आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को,
सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को॥ १४॥

रूप-सीलसिंधु गुनसिंधु, बंधु दीन को, दयानिधान
जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।
स्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के,
सिलासाप-समन, निबाह्यो नेह कोल को॥
तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि,

को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल को ? ॥
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुराग न सो
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को ॥१५॥
सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो ॥
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ? ॥ १६ ॥
कीबे को बिसोक लोक लोकपालहू तें सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को ॥
नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को ? ।
तुलसी की बार बड़ी ढील होति, सीलसिंधु !
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को ? ॥ १७ ॥
नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की ॥

१५—उराउ = हौसला, उत्साह।
१६—पगार = प्रकार, कोट।
१७—चोट बिनु मोट पाइ = बिना कष्ट या श्रम के गठरी पाकर।

तुलसीऐं तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं,
नीकै है प्रतीति रावरे सुभाव सील की ।
देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन कों,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥१८ ॥
आगे परे पाहन कृपा; किरात, कोलनी,
कपीस निसिचर अपनाए नाए माथ जू ।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय
रिनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू ॥
तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ? ॥ १९॥
कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की ।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की ॥
कोटि-कला-कुसल कृपालु नतपाल, बलि,
बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की ।
राइ दसरत्थ के समरत्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की ॥ २० ॥

घनाचरी

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गये हौ सो सुनी मैं ।

१८—ढील = देरी ।
१९—तेजी = महँगी ।
२०—मनक = मन का । तिन = तृण ।

सेवक सराहे कपिनायक विभीषन,
भरत सभा सादर सनेह सुरधुनी मैं ॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं ।
दोष दुख दारिद दलैया दीनबंधु राम,
तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ॥ २१ ॥

मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को ।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ? ॥
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को ? ।
साँकरे के सेइबे, सराहिबे सुमिरबे को
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइको ॥ २२ ॥

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल
कारन कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली ।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली ॥
तुलसी सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात,
कौनै ईस किये कीस भालु खास माहली ।
राम हीं के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥ २३ ॥

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूनेगुन पथिक पियासे जात पथ के ।

२१—सुरधुनीमैं = गंगामय, पवित्र ।
२२—कटाइको = कटायक, काटनेवाला भी ।
२३—टाहली = टहलुवा, सेवक । माहली = रनिवास का सेवक ।

लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथहित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के॥
गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
श्रीर भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के॥ २४॥

रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छाड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये॥
जाँचै को नरेस, देसदेस को कलेस करै?
देहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िये।
कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ श्रौर काहि श्रोड़िये?॥ २५॥

सवैया

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर-कौरहि।
जानकीजीवन को जन ह्वै जरिजाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥
जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।
जन की कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की।
जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की॥ [illegible]

२४—सुलाखि = सुराख करके। [illegible]
२५—बड़ी बड़ाई = बहुत बड़प्पन। [illegible]
२७—सार करना = सँभाल करना।

जग जाँचिये कोऊ न; जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति ज़ोर जहानहि रे॥
गति देखु विचारि विभीपन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥२८॥
सुनु कान दिए नित नेम लिए रघुनाथहिं के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनुभाथहि रे॥
रसना निसि बासर सादर सो तुलसी जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥२९॥
सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजिकै, समता सजि संतसभा न बिराजहि रे॥
नरदेह कहा, करि देखु विचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥३०॥
विपया परनारि निसा-तरुनाई, सु पाइ परयौ अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग वियोग विलोकतहू न विरागहि रे॥
ममतावस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥३१॥
जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी॥
तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी।
करि हंस को वेष बड़ो सब सों, तजि दे बक बायस की करनी॥३२॥
भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।

२८—जानकी-जान = जानकी-जानि (स्त्री); अर्थात् जिनकी स्त्री जानकी हैं, रामचंद्र।

३२—धरनी = धरन। टेक।

नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै ॥३३॥
सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छ्वै ॥
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सति भाय सदा छल छाँड़ि सबै तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै॥३४॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब, चेरो ॥
सो तुलसी प्रिय प्रानसमान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को होइ सबेरो ॥३५॥
राम हैं मातु पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, रामरँग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीवत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जगमें तुलसी, नतु डोलत और मुये धरि देही ॥३६॥
सियराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है ॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सब की न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है ॥३७॥
दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कै ॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं ॥३८॥
'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है ॥
जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकीजीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है ॥३९॥

३३—कामदुहा = कामधेनु। नहि कै = नाधकर, जोत कर।

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछु वै ।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विखान न द्वै ।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै ।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै ॥४०॥
गज-वाजि-घटा, भले भूरि भटा, वनिता सुत भौंह तकैं सब वै ।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै ॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै ।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥४१॥
सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि विरंचि, धनाधिप सो धन भो ।
पवमान सो, पावक सो, जस सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो ॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो ।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी जो न जानकीजीवन को जन भो ॥४२॥
काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने ।
हरिचंद्र से साँचे, बड़े विधि से, मघवा से महीप बिषै-सुखसाने ॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने ।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने ॥४३॥
झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते ।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते ॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जुपै जानकीनाथ के रंग न राते ॥ ४४ ॥
राज सुरेस पचासक को, विधि के कर को जो पटो लिखि पाए ।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाए ॥
संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाए ।
जानकीजीवन जाने विना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए ॥ ४५ ॥
कृसगात ललात जो रोटिन को, घरवात घरे खुरपा खरिया ।

४१—चाहि = अपेक्षाकृत । बढ़कर ।

तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे मन तौ न भरो घर पैं भरिया ॥
तुलसी दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया ।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दशरत्थ को दानि दया-दरिया ॥४६॥
को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै ।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै?
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै ।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया करिहै ॥४७॥
ब्याल कराल, महाविष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे ॥
साँसति सँकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे ॥
नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केवल हो रे ।
कौन की त्रास करै तुलसी, जोपै राखिहै राम तौ मारिहै को रे? ॥४८॥
कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे ।
करैं तिनकी परवाहि ते जो बिनु पूँछ विषान फिरैं दिन दौरे ॥
तुलसी जेहिके रघुनाथ से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे ।
कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे ॥४९॥
कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाविष, व्याधि, दवा, अरि घेरे ।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे ॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे ।
नाक, रसातल, भूतल मैं रघुनायक एक सहायक मेरे ॥ ५० ॥
जबै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया ।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल विपत्ति बँटैया ॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया ।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया ॥ ५१ ॥

४६—घरबात = घर का सामान ।
४८—कारन हो = कारण था ।
४९—तिन तोरे = नाता तोड़े हुए ।

जहाँ जमजातना, घोर-नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोऊ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु विसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ॥५२॥
जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता सुव बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया ॥ ५३॥
तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े॥
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहिसों रद काढ़े?।
आरत के हित नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े ॥ ५४॥
जप, जोग, बिराग, महा मख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम, ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै? ॥ ५५॥
पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन, बानर के चरवाहै ॥ ५६॥
मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥ ५७॥

२६—रवा=[फा०] उचित।
२७—जाय=उत्पन्न करके।

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई।
हंस किये। बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना-अधिकाई॥
काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई॥ ५८॥
लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को॥
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करौं निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यान धरौं धनुसायक ही को॥५९॥
आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसो सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो॥
सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तौ सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥६०॥

घनाच्छरी

छार ते सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु व्याल-बाल को न मारिये
औ काटिये न, नाथ! विषहू को रूख लाइकै॥ ६१॥
बेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग भाग तुलसी के,
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोपकोप मोसो कौन?

फलि हू जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता॥ ६२॥
रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
आनत अजान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिँ आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहौं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाईं बातैं
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥ ६३॥
बचन बिकार, करतबउ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलि मल को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि बेचि खाइ, सेवा
संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है॥
तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहैं, ताको
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है॥ ६४॥
स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है॥
रावरी सपथ, राम! नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।

६३—कुंद की भाईं=खराद पर चढ़ाई हुई।

तुलसी को भलो पै तुम्हारे ही किये, कृपालु!
कीजै न बिलंब, बलि, पानीभरी खाल है ॥ ६५ ॥

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देव ठाटिबो कुठाट को ।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को ॥
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को ।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥ ६६ ॥

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है ।
स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है ॥
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है ।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम, नतु
भेंट पितरन कों न मूड़ हू में बारु है ॥ ६७ ॥

अपत, उतार, अपकार को अगार जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको ।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को, पयोधि अपराध को ॥

६६—बराट = कौड़ी ।

६७—लंगर = नटखट । जवारु [फा० जवाल] = जंजाल, झंझट । आकरी = खान खोदने का काम । किसब [अ०] = कारीगरी । कबारु = कबाड़, व्यवसाय, रोजगार ।

तुलसी से बाम को भो दाहिनो, दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको।
रामनाम ललित ललाम कियो लाखनि को
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को॥ ६८॥

सब-अंग-हीन, सब-साधन-विहीन, मन-
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-विहीन, हीन
गुन, ज्ञानहीन, हीन भाग हू विभूति हौं॥
तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं॥ ६९॥

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम को'॥
नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तौ भलोई, न तौ
तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को॥ ७०॥

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेदबिधि किमि है।
तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्वैहै कहूँ,

६८—अपत = अपात्र, खोटा। उतार = सबसे उतरा हुआ, अधम।
ललाम = भूषण।
७०—लोह = लोभ या लोहा।

सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै ॥
मेरे तौ न डरु रघुबीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं, तुम्हैं सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिं तुला तौलिये तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै ॥ ७१ ॥

जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागिबस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।
मानस वचन काय किए पाप सति भाय,
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो ॥
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।
अतिही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो ॥ ७२ ॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को ॥ ७३ ॥

वेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
रामनाम ही सों रीझे सकल भलाई है।

७१—गमिहै = ग़म न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान न देंगे।
७२—पुनी = पुनः, फिर।
७३—जानत हो = जानता था।

कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाछी को ललात जे ते राम-नाम के प्रसाद
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम राम! रावरो तौ चाम की चलाई है॥ ७४॥
सोच संकटनि सोच संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम को॥
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग
जागत, आलसि तुलसी हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥ ७५॥
आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।
गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परीगो कालफँग मैं॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग मैं।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन
ताकी महिमा क्यों कहीहै जाति अगमैं॥ ७६॥
जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको।

७५—धारि=झुंड (लुटेरों का)।
७६—जाजरो=जर्जर।

भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरीहू सौं,
बल अपनो न, हितू जननी न जनको ॥
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देवसेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को ।
रामही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु तुलसी के मन को ॥ ७७ ॥

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने ।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तरिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोए सपने ॥
तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने ।
जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे,
ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने ॥ ७८ ॥

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुधधेनु रासभी बेसाहिए ।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ॥
तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए ।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥ ७९ ॥

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है ।

७७—खप = खप कर, पच कर । तमाइ = तमअ, लालच ।
७८—निरपने = अपने नहीं । बेगाने ।

नाम के प्रताप, बाप! आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव!
पाहरू रूई चोर हेरि हिय हहरानु है।
तुलसी की, बलि, बार बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥ ८०॥

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है॥
आपने तौ एक अवलंब अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
तुलसी की साहसी सराहिये कृपालु, राम!
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है॥ ८१॥

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि सों,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत कछु,
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है॥
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है॥ ८२॥

जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय,
दुख रोग रोइए कलेस कोह काम को।

८१—पैंत=दावँ। घात।
८२—आँकरो=आँकरा। गहरा। सरकस=सरकश, प्रकट।

राजा, रंक, रागी औ विरागी, भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि घाम को ॥
तुलसी कबंध कैसो धाइबो विचारु, अंध!
धंध देखियत जग सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥८३॥

बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है ॥
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है ॥ ८४ ॥

सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है ॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है ॥ ८५ ॥

न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो ॥
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसि बासर राम रटो ॥८६॥

दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को।

८६-जटो = जटित, जड़ा हुआ।
कुपेटक = बुरे पिटारे से (जैसा बाज़ीगर रखते हैं)।

तप तीरथ साधन जोग विराग सों होइ नहीं दृढ़ता तनको ॥
कलिकाल कराल में, राम कृपालु! यहै अवलंब बड़ो मन को।
तुलसी सब संजमहीन सबै, इक नाम अधार सदा जन को ॥८७॥
पाइ सुदेह विमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ो उर आखर दू की ॥८८॥
राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ॥८९॥
नाम अजामिल से खल तारन, तारन बारन बारबधू को।
नाम हरे प्रहलाद विषाद, पिता भय साँसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति-प्रतीति विहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को ॥९०॥
जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है॥
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोऊ हिये, रसना ही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोइ रहो है ॥९१॥
जी जै न ठाँउ, न आपन गाँउ, सुरालयहू को न संबल मेरे।
नाम रटो, जमबास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे?॥
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोकों ठाहरु हेरे।
बैरख बाँह बसाइए पै, तुलसी-घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥ ९२ ॥

८८—मूकी = छोड़ी।
८९—बजाइ रही पति = इज़्ज़त बनी रही।
९२—बैरख = [तु० बैरक्] पताका।

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई ?।
व्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई ॥
करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय ? रीझिय पै, तुलसीहु सो है बलि सोइ सगाई ॥९३॥
जे मद-मार-विकार भरे ते अचार विचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में 'जन भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं' ? ॥
जौ कछु बात बनाइ कहौं तुलसी तुममें तुमहूँ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाहीं ॥ ९४ ॥
दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुमही सब की सबे राखत बाजी ॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज ! भये हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी ॥ ९५ ॥

घनाक्षरी

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेट की ॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥ ९६ ॥
खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी ?" ॥
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,

सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥ ९७॥
कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप गुन,
जोबन जरत जुर, परै न कल कहीं।
राजकाज कुपथ कुसाज, भोग रोगही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं॥
गति तुलसीस की लखै न कोउ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक हीं।
कासों कीजै रोप? दोष दीजै काहि? पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक हीं॥ ९८॥
बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है!
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है॥
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है॥ ९९॥
सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!
जाहि घालो चाहिए कहौ धौं राखै ताहि को?।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हू तें हूं ताहि को सकल जग जाहि को॥
काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को?॥
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,

रामबोला नाम, हौं गुलाम-राम-साहि को ॥ १०० ॥

सवैया

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है ? ।
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है ॥
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है ।
जानकीनाथ बिना, तुलसी, जग दूसरे सों करिहौं न हहा है ॥१०१॥
भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं ।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं ॥
जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं ।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥ १०२ ॥
राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को ।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को ॥
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ो, कलपद्रुम काटत मूसर को ।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को ॥ १०३ ॥
कीबे कहा, पढ़िबे को कहा ? फल बूझि न वेद को भेद बिचारै ।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै ॥
बाद बिबाद बिषाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै ।
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै ॥ १०४ ॥
आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने ।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने ।
को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ॥१०५॥
धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥

१०४—नव = नौ व्याकरण—इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशलि, पाणिनि, अमर, जैनेंद्र, सरस्वती । दसआठ = अष्टादश पुराण ।

तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥ १०६॥

घनाचरी

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को'।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को॥ १०७॥

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महा साधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब है॥
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है॥ १०८॥

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥

१०६—मसीद = मसजिद।
१०७—उपखनो = उपाख्यान, कहावत।
१०८—हबूब = बुलबुले।

जागैं बुध विद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के ।
जागैं भोगी भोगही, वियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥ १०९ ॥

छप्पय

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति* ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तेँ सकल फल ।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक राम तेँ मोर भल ॥ ११० ॥
महाराज बलि जाउँ रामसेवक सुखदायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सुंदर सब लायक ॥
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन ।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-विलोचन ॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन ।
बलि जाउँ राम कलि-भय-विकल तुलसिदास राखिय सरन ॥ १११ ॥
जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर ।
मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन करुनाकर ॥
नृपगन-बलमदसहित संभु कोदंड-विहंडन ।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन ॥
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमाभवन ॥
कह तुलसिदास सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकिरवन ॥ ११२ ॥
जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजनरंजन ।

---

* छक्कन लाल की प्रति में इस चरण के स्थान पर यह पाठ है—"निसि दिन रघुपति चरन-सरन, सपनेहु न आन गति ।

जय विराध-वध-विदुष, विबुध-मुनिगन-भयभंजन ॥
जय निसिचरी-विरूप-करन रघुबंसविभूषन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन ॥
जय दंडकबन-पावन-करन तुलसिदास संसय-समन।
जगविदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन ॥११३॥
जय मायामृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंधसूदन बिसाल-तरुताल-बिदारन ॥
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव संतहित।
कपि-कराल-भट-भालुकटक-पालन, कृपालु-चित ॥
जय सियबियोग-दुखहेतु-कृत-सेतुबंध बारिधि-दमन।
दससीस बिभीषन-अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन ॥ ११४ ॥
कनककुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ॥
कैवल्य सकल फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस? ॥११५॥
जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै ॥
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं ॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाइ जेहि पति न हित।
सब जाय दास तुलसी कहै जौ न रामपद नेह नित ॥ ११६ ॥
को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों?।
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों? ॥

११५—केदार=थाला, थालवाल।

कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयनसर? ।
लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर? ॥
सुर-नाग-लोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हों जय न? ।
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥ ११७ ॥

सवैया

भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-विलोकनि-बान तें बाँचे ।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे ॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे ॥
नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥ ११८ ॥

कवित्त

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की ।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की ॥
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहिं,
मानस निवास-भूमि लोभ मोह काम की ।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की ! ॥ ११९ ॥

'कालिहही तरुन तन, कालिह ही धरनि धन,
कालिह ही जितौंगो रन कहत कुचालि है ।
कालिहहो साधौंगो काज, कालिह हीं राजा समाज,'
मसक ह्वै कहै "भार मेरे मेरु हालिहै" ॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै ।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालिह है' ॥१२०॥

भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी सो मंद,
निंदै सब साधु, सुनि मानी न सकोचु हौं ।
जानत न जोग हिय हानि मानीं, जानकीस !
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं ॥
पेट भरिबे के काज महाराज को कहायों,
महाराज हू कह्यो है प्रनत-बिमोचु हौं ।
निज अघ जाल, कलिकाल की करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥ १२१ ॥

धरम के सेतु जगमंगल के हेतु,
भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को ।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को ॥
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को ।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ॥ १२२ ॥

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं ।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं ॥
तुलसी बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं ।
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं ॥१२३॥

तौलौं लोभ, लोलुप ललात लालची लबार

१२२—घरजायउ = घरजाया, गुलाम ।

बार बार, लालच धरनि धन धाम को ।
तब लौं वियोग रोग सोग भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को ॥
तौलों दुख दारिद दहत अति नित तनु,
तुलसी है किंकर विमोह कोह काम को ।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौलों जन भयो न बजाइ राजा राम को ॥ १२४ ॥

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को ।
तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को ॥
तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को ।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सो तौ साहब महेस को ॥१२५॥

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रानहूँ के प्रान हौ ॥
कालहू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हू के कर्म, निदान हू के निदान हौ ॥
निगम को अगम, सुगम तुलसीहू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥ १२६ ॥

१२४—बजाइ = डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला ।

१२५—उबैनै = नंगे (पावँ) । झूने = झीने, झाँझरे । खेस = पुरानी रुई के पहले का बुना हुआ खुरदुरा कपड़ा ।

१२६—बोल = वाक्य, वर्णन । निदान = कारण । एते मान = इतने ।

सवैया

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नामप्रताप महा महिमा, अकरे कियं खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े॥ १२७॥
काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ' 'सब ठाँउ है' 'खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे॥१२८॥
अंतर्जामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिए तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें।
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात बिये तें॥
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें॥ १२९॥
बालक बोलि दिये बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई॥
भूरि दई बिषमूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई।
रामकृपा तुलसी जन को जग होत भले को भलाई भलाई॥१३०॥
कंस करी ब्रजबासिन सों करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपालु बड़े नतपालु, गए खल खेचर खीस खलाई॥
ठीक प्रतीति कहै तुलसी जग होइ भले को भलाई भलाई॥१३१॥

१२७—अकरा = महँगा, चोखा (अक्रय)।

१२९—अंतर्जामी = अंतस् ही में जानने योग्य निर्गुण। बाहरजामी = बाह्य जगत् में जानने योग्य सगुण रूप। बावरी = बुरी। बिये = दूसरे।

१३१—कलि-छोटो = कलि का छोटा भाई। छलाई = छल में। खेचर = राक्षस।

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं॥
ते मिलये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहुछत्र की छाहीं।
बेद पुरान कहै, जग जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं॥ १३२॥
जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी॥
नहि जान्यों वियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहि सों तरजी॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी॥१३३॥
जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी॥
जाहि लगै पर जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की॥१३४॥

कवित्त

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को॥
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार,
खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को॥
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति-
निपुन, बिबेक है निदेस देसकाल को।
तुलसी कहे न बनै, सहेही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को॥ १३५॥

१३२—घाटि रच्यो=बुराई का आयोजन किया।

१३४—हलाकी=मारडालने वाला, घातक। मोटि=गठरी। बांधियैगी=बांधेंहीगी अथवा "बांधिहैगी" भविष्य का दोहरा रूप जैसा देव, मुबारक आदि आए हैं; जैसे, हौं कहौं रंग न फाबिहैगो—मुबारक।

१३५ जोग=अवसर, संयोग, नौबत।

हनूमान है कृपालु, लाड़िले लषन लाल,
भावते भरत कीजै सेवक सहाय जू।
विनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे ते आपही सुधारि लीजै भाय जू॥
मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति,
देवि! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझे ह्वैहैं राम की दुहाई रघुराय जू॥ १३६॥

सवैया

वेष बिराग को, राग भरो मनु, माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों॥
एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु अंब को मेरो तु मोसों।
स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न होसो॥१३७॥

घनाक्षरी

जहाँ बालमीकि भए व्याध ते मुनींद्र साधु,
'मरा मरा' जपे सुनि सिष ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुश को जनमथल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
बिटप महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की॥१३८॥
मरकत बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख वेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कैधौं, सुकृत सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है॥

देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि तुलसी विचारि काको थरु है ।
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
रामरमनी को वट कलि कामतरु है ॥१३९॥
देवधुनी पास मुनिवास-श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ वट बूट बसत पुरारि हैं ।
जोग जप जाग को विराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि, डीठि बाहरी निहारि हैं ॥
'आयसु', 'आदेश' 'बाबा' 'भलो भलो' 'भाव सिद्ध',
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं ।
रामभगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सियबट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥
जहाँ बन पावनो सुहावनो विहंग मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो ।
सीताराम-लखन-निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै विवेक बूट सो ॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो ।
तुलसी जौ राम सों सनेह साँचो चाहिए
तौ सेइए सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो ॥ १४१ ॥
मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय विप्रन के भय को नेवारिहैं ।
दीन्हीं है रजाइ राम पाइ सो सहाइ लाल,

१४०—'आयसु'...'भाव सिद्ध' = साधु संतों की बोलचाल के वाक्य। अर्थात् वहाँ के रहनेवाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दों का व्यवहार करते हैं।

लपन समर्थ वीर हेरि हेरि मारिहैं ॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, वान जहाँ,
वारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहैं।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों,
पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहैं ॥ १४२ ॥

सवैया

लागि दवारि पहार ठही लहकी कपिलंक जथा खर-खौकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।
क्यों कहि जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौ की ॥
मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जगजीति जराय की चौकी ॥१४३॥

देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे ॥
सोहै सितासित को मिलिवो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥ १४४ ॥

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे ॥
पूजा को साज विरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥ १४५ ॥

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम-नाहि गिरा गुनज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को ॥
सोई भयो द्रव रूप सही जु है नाथ विरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को ? ॥१४६॥

१४३—ठही = ठह कर, जम कर, अच्छी तरह। लहकी = लहकाई। खर-खौकी = तृण खानेवाली अर्थात् आग। चुवा = चौवा, चतुष्पद मृग। तौंकी = तौंक कर, आँच से तप कर। कौं की = कब का, बड़ी देर से।

१४४—कलोरे = बछड़े।

बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोप दुहौंगो ॥
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो ॥१४७॥

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै बिवाह कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना ॥
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार दारि कूरना।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलौं जन
जौलौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥ १४८ ॥

छप्पय

भसम अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूपन भुजंगवर ॥
मुंड माल, विधु बाल भाल, डमरू कपाल कर।
बिबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद, सूलधर ॥
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन विप-भोजन भव-भय-हरन।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥१४९॥
गरल-असन, दिग्वसन, व्यसन-भंजन, जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंदघन ॥
विकट बेप, उर शेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि ॥
कंदर्पदर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर।

१४८—दारि कूरना = दाल के कूर भरे हुए अच्छे पकवानों का ढेर।

तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुरमथन जय त्रिदसवर ॥१५०॥
अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति ।
विषम असन, दिगवसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति ॥
कर कपाल, सिर माल व्याल, विष भूति विभूषन ।
नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन ॥
विकराल भूत-वैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन ।
सब विधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसयसमन ॥१५१॥
भूतनाथ भयहरन, भीम, भय, भवन, भूमिधर ।
भानुमंत भगवंत, भूति भूषन भुजंगवर ॥
भव्य-भाव-वल्लभ, भवेस भवभार-विभंजन ।
भूरि भोग, भैरव कुजोग-गंजन जन-रंजन ॥
भारती बदन, विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावकनयन ।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥ १५२॥

सवैया

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो" ।
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
"नाक सवाँरत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो" ।
ब्रह्म कहै "गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥१५३॥
विष-पावक, व्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े ।
भूत बैताल सखा, भव नाम, दलै पल में भव के भय गाढ़े ॥
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुखदारिद होंहि न ठाढ़े ।
भौन में भांग; धतूरोई आंगन, नांगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥ १५४॥
सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, धरन्यौ बरदा है ।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास तहाँ शव लै मरे दाहै ॥
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है ।
राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है ॥१५५॥

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर-टीको ।
भारो भलो भले भाय को भूलो, भलोई कियो सुमिरे तुलसी को ॥
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को ।
साधो कहा करि साधन तें जोपै राधो नहीं पति पारबती को ? ॥१५६॥
जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सों बिष लोकि लियो है ।
पान कियो बिष भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइँ-हियो है ॥
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है ।
काहे न कान करौ बिनती, तुलसी कलिकाल बिहाल कियो है ॥१५७॥

कवित्त

खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की ।
डमरू कपाल कर, भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की ॥
तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानों हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की ।
अर्थ धर्म काम मोच्छ बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागत मरद की ॥१५८॥
पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नयना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं ।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत हैं ॥
सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं ।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ॥१५९॥

१५६—राधो = आराधना की ।

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन विभूति भाँग वृषभ वहनु है ।
नाम वामदेव, दाहिनो सदा असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है ॥
तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है ।
वेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है ॥१६०॥

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को,
देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो ।
बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ॥
तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ
कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो ।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ॥१६१॥

काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे ! ।
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे ! ॥
तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरुखेत रे ।
पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सो
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत, रे ॥१६२॥

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,

१६०—भयंक = भयंकर ।

धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै कै। ।
बनिता विनीत, पूत पावन सोहावन, औ
विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै ॥
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल तुलसी सौं सुनौ सावधान है।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढाये ह्वैहैं बेल के पतौवा द्वै ॥ १६३ ॥
रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब विधि विधि दीन्हें हैं सँवारि कै ॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
ताको फल तुलसी सो कहैगो विचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥१६४॥
देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ॥
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देवे दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं,
काल-कला कासीनाथ कहे निवरत हौं ॥१६५॥
चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो, हर !
पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।

१६३—क्वै = कोई। ज्वै = जो कुछ।

बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं ॥
अविभूत, बेदन बिषम होत, भूतनाथ !
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥
जीबे की न लालसा, दयालु महादेव! मोहिं,
मालुम है तोहिं मरिबेइ को रहतु हौं।
कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥१६७॥
भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज, सिव ! आपु नीके जानिए।
नाना बेष बाहन बिभूषन बासन, बास,
खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिए॥
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सब सों सनेह सबही को सनमानिए।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए॥ १६८॥
गौरीनाथ भोलानाथ भवत भवानीनाथ,
बिस्वनाथ पुर फिरी आन कलिकाल की।

१६७-कुसूत = कुपास, सुभीता न रहना।
१६८-भूतभव = पंचभूतों के कारणस्वरूप। भवत = आप।

संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीबासी,
बेद कही, सही ससिसेषर कृपाल की ॥
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की ।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि,
निठुर निहारिए उघारि डीठि भाल की ॥ १६९ ॥
ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की ।
भट रुद्रगन, भूतगनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी ॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की ।
कैसे कहै तुलसी, बृषासुर के बरदानि!
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ॥ १७० ॥
लोक बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नरनारि ईस अंबिका-सरूप हैं ।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं ॥
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं ।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं ॥ १७१ ॥
पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास बास दियो है ।

१७०—हरकी = मना की । बीसी बिस्वनाथ की-रुद्रबीसी जो संवत् १६६५ से १६८५ तक रही ।

नीच नर नारि न सँभारि सकैं आदर,
　　लहब फल कादर बिचारि जो न कियो है ॥
बारी बारानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि,
　　मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोष में भरोसो एक आसुतोष कहि जात,
　　बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥ १७२ ॥

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
　　तेरेही प्रसाद जग अगजगपालिके।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
　　तोहि में समात मातु भूमिधरबालिके ॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
　　करुना-तरंगिनी कृपातरंग-मालिके।
रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी;
　　देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥ १७३ ॥

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर
　　नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु
　　लोभ मोह काम कोह कलिमल-घेरे हैं ॥
लोकरीति राखी, राम साखी बामदेव जान,
　　जन की बिनति मानि मातु कही 'मेरे हैं'।
महामारी महेशानि महिमा की खानि,
　　मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं ॥१७४॥

लोगन के पाप, कैधों सिद्ध-सुर-साप,

१७२—बारी......चक्र = मिथ्या वासुदेव को दंड देने के लिए कृष्ण के चक्र ने उसकी सेना का तो संहार किया ही पर बिना आज्ञा के उसकी पुरी काशी को भी भस्म कर डाला। भियो है = डरा है।

काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप-तई है।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय,
हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है॥
देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान वीर बलवान,
जसरासि जहाँ तहाँ तैहीं लूटि लई है॥ १७५॥

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत, जल/थल मीचुमई है॥
देव न दयालु महिपाल न कृपालुचित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥ १७६॥

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें,
कोढ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गए, भूमिचोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की॥
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम, !
रावरी ई गति बल-बिभव-विहीन की।
लागैगी पै लाज वा विराजमान विरुदहि,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की॥ १७७॥

१७५—करि डीठि=देख सुन कर। पीठि दई=विमुख हुए।

१७७—मीन की सनीचरी=मीनराशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा जिसका फल राजा प्रजा का नाश होता है। यह योग संवत् १६६६ के प्रारंभ

रामनाम मातुपितु, स्वामि समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम रामनाम ही सों, नेम रामनाम ही को,
जानों न मरम पद दाहिनो न बाम को॥
स्वारथ सकल परमारथ को रामनाम,
रामनामहीन तुलसी न काहू काम को।
राम की सपथ सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को॥ १७८॥

सवैया

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परों कि नरों जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥१७९॥

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥ १८०॥

से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। अतः यह कवित्त उसी समय के भीतर कहा गया होगा।

१७९—परीच्छित = निश्चित, निश्चयरूप से। चाटि दिवारी को दीयो = ऐसा कहते हैं कि सर्प आदि दीवाली का दीया चाट कर चले जाते हैं अर्थात् दीवाली के बाद नहीं रह जाते।

१८०—कुंकुम रंग······परी है = छेमकरी नाम की चील जो कत्थई या ललाई लिए पीले रंग की होती है। इसकी चोंच सफ़ेद रंग की होती है। इसका दर्शन शुभ माना जाता है। यह दक्षिण में कारमंडल के किनारे अधिक होती है। तंत्रसार में इसके नमस्कार का श्लोक इस प्रकार है—कुंकुमारुण सर्वांगि! कुंदेंदुधवलानने। मत्स्यमांसप्रिये देवि, क्षेमंकरि नमोऽस्तु ते।

घनाक्षरी

मंगल की रासि, परमारथ की खानि,
जानि, विरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है॥
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥ १८१॥

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहू तेँ प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित-लिंगमई,
मोच्छ-बितरनि, बिदरनि जगजाल की॥
देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिवर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हाहा करै तुलसी दयानिधान राम! ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥ १८२॥

आस्रम बरन कलि-बिबस बिकल भय,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तेँ जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी॥
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोउ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।

१८१—कुहत = मारता है।
१८२—कदर्थना = दुर्दशा।

तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥ १८३ ॥

१८३—सनकार दी = इशारा कर दिया ।

हनुमानबाहुक

छप्पय

सिंधु-तरन सिय-सोच-हरन रवि-बाल-बरन-तनु ।
भुज बिसाल, मूरति कराल; कालहु को काल जनु ॥
गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंकभुव ।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवनसुव ॥
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत समन सकल-संकट-विकट ॥ १ ॥

स्वर्न-सैल-संकास कोटि-रवि-तरुन-तेज घन ।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नखवज्र बज्रतन ॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन ।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन ॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति विकट ।
संताप पाप तेहि पुरुष कहँ सपनेहुँ नहिं आवत निकट ॥ २ ॥

झूलना

पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट,
असुर-सुर-सर्व सरि समर समरत्थ सूरो ।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,
बेद बंदी बदत पैजपूरो ॥

१—भुव = भ्रू, भृकुटी ।
२—संकास = प्रकाश, चमक । भानन = तोड़ना ।

जासु गुनगाथ रघुनाथ कह्, जासु बल
　　विपुलजल-भरित जगजलधि झूरो।
दीन-दुख-दमन को कौन तुलसीस है ?
　　पवन को पूत रजपूत रूरो ॥ ३ ॥

घनाक्षरी

भानु सों पढ़न हनुमान गए भानु, मन
　　अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगनमन,
　　क्रम को न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो ॥
कौतुक बिलोकि सुरपाल हरि हर बिधि,
　　लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस, कै
　　तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो ॥ ४ ॥
भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज,
　　गाज्यो सुनि कुरुराजदल हलबल भो।
कह्यो द्रोण भीषम समीरसुत महाबीर,
　　बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो ॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु
　　लगि फलँग फलाँग हू ते ँ घाटि नभतल भो।
नाइ नाइ माथ जोरि जोरि हाथ जोधा जोहैं,
　　हनुमान देखे जगजीवन को फल भो ॥ ५ ॥

३—भृगुमुख्य = परशुराम।

४—पाछिले पगनि गम = पीछे की ओर पैरों से चलते हुए। कथा है कि जब हनुमानजी सूर्य के पास पढ़ने गए तब उन्होंने कहा कि मैं एक जगह स्थिर नहीं रहता, इससे यदि पढ़ना हो तो मेरे रथ के सामने पीछे की ओर पैर रखते साथ साथ भागते चलो। हनुमान् ने ऐसा ही किया।

गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक,
निपट निसंक परपुर गलबल भो ।
द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,
कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो ॥
संकटसमाज असमंजस में रामराज,
काज जुग पूगनि को करतल पल भो ।
साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह
लोकपाल पालन को फिरि थिर थल भो ॥ ६ ॥
कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानौ,
नाप के भाजन भरि जलनिधिजल भो ।
जातुधानदावन, परावन को दुर्ग भयो,
महामीनबास तिमि-तोमनि को थल भो ॥
कुंभकर्न-रावन-पयोदनाद ईंधन को
तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो ।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ॥ ७ ॥
दूत रामराय को, सपूत पूत पौन को,
तू अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो ।
सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन, सरन
आए अवन, लखनप्रिय प्रान सो ॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो
प्रगट त्रिलोक ओक तुलसी निधान सो ।

६—लाय = जला कर । कपिखेल बेल = कपिकच्छु, केवाँच नाम की लता । काज जुग...पल भो = जुग भर में पूरा होने का काम (हनुमान के) करतल में हो गया । पूगना = पूजना, पूरा होना ।

८—अवन = रक्षा ।

ज्ञानगुनधाम बलवान सेवासावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो ॥ ८ ॥
दवन-दुवन-दल भुवनविदित बल,
वेद जस गावत विबुध-बंदी-छोर को ।
पाप-ताप-तिमिर-तुहिन-विघटन-पटु,
सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर को ॥
लोक परलोक तें विसोक, सपने न सोक,
तुलसी के हिए है भरोसो एक ओर को ।
राम को दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलिकामतरु केसरि किसोर को ॥ ९ ॥
महाबलसींव, महा भीम, महा बानइत,
महावीर विदित बरायो रघुबीर को ।
कुलिस कठोरतनु, जोर परै रोर रन,
करुना-कलित मन धारमिक धीर को ॥
दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को,
सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को ।
सीय सुखदायक, दुलारो रघुनायक को,
सेवक सहायक है साहसी समीर को ॥ १० ॥
रचिबे को विधि जैसे पालिबे को हरि हर
मीच मारिबे को, ज्याइबे को सुधापान भो ।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे कृसानु, पोषिबे को हिमभानु भो ॥
खलदुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को,
माँगिबो मलीनता को मोदक सुदान भो ।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर

१०—बरायो = चुना हुआ ।

तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो ॥ ११ ॥

सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि,
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को ।
देवीदेव दानव दयावने है जोरैं हाथ,
बापुरे बराक और राजा राना राँक को ॥
जागत सोवत बैठे बागत बिनोद मोद,
ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आक को ॥ १२ ॥

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
लोकपाल सकल लषन राम जानकी ।
लोक परलोक को बिसोक सो बिलोक ताहि,
तुलसी तमाहि ताहि काहु वीर आन की ?॥
केसरी-किसोर, बंदीछोर को निवाजे सब,
कीरति बिमल कपि करुनानिधान की ।
बालक ज्यौं पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की ॥ १३ ॥

करुनानिधान, बलबुद्धि के निधान, मेद
महिमानिधान, गुनज्ञान के निधान हौ ।
बामदेवरूप, भूपराम के सनेही, नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ ॥
आपने प्रभाव, सीतानाथ के सुभाव सील,
लोक-बेद-बिधि के बिदुष हनुमान हौ ।
मन की, बचन की, करम की तिहूँ प्रकार
तुलसी तिहारो तुम साहिब सुजान हौ ॥ १४ ॥

मन को अगम, तन सुगम किए कपीस,

१२—बराक = बेचारा । बागत = घूमते फिरते ।

१३—तमाहि = तमः ही, लालच ही ।

काज महाराज के समाज साज साजे हैं।
देव बंदीछोर रनरोर केसरीकिसोर,
जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं॥
बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी की ओर,
सुनि सकुचाने साधु, खलगन गाजे हैं।
बिगरी-सँवार अंजनीकुमार कीजै मोहिँ,
जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं॥ १५॥

मत्तगयंद

सुजान सिरोमनि हौ, हनुमान! सदा जन के मन बास तिहारो।
ढारो बिगारो मैं काको कहा? केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो॥
साहिब सेवक नाते तें हातो कियौ तो तहाँ तुलसी को न चारो।
दोष सुनाए ते आगेहुँ को हुसियार ह्वैहीं, मन तौ हिय हारो॥१६॥
तेरे थपे उथपै न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले?
तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिन्ह के उर साले॥
संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटै मकरी के से जाले।
बूढ़ भये, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले॥ १७॥
सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे।
तैं रनकेहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से॥
तोसों समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख-दोष दवा से।
बानर-बाज! बढ़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से?॥१८॥
अच्छ-बिमर्दन कानन-भान दसानन आनन भा न निहारो।
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरि-बारो॥
राम-प्रताप हुतासन, कच्छ बिपच्छ, समीर समीर दुलारो।
पाप तें, साप तें, ताप तिहूँ तें सदा तुलसी कहँ सो रखवारो॥१९॥

१९—कच्छ = तृन का पेड़ जो जल्दी जलता है। बिपच्छ = शत्रु।

घनाक्षरी

जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि, बलि, बोल न बिसारिए।
सेवा-जोग तुलसी कबहुँ ? कहाँ चूक परी,
साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए ॥
अपराधी जानि कीजै सौसति सहस भाँति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के,
बाँहपीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥ २० ॥

बालक बिलोकि, बलि, बारे तें आपनो कियो,
दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसी के, रावरोई बल,
आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए ॥
बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो ?
माथे पगु बली को, निहारि सो निवारिए।
केसरीकिसोर, रन-रोर, बरजोर बीर,
बाहुपीर राहुमातु ज्यौं पछारि मारिए ॥ २१ ॥

उथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार,
केसरीकुमार बल आपनो सँभारिए।
राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत,
मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिए ॥
साहिब समर्थ तोसो तुलसी के माथे पर,
सोऊ अपराध बिनु, बीर ! बाँधि मारिए।
पोखरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर,
मकरी ज्यौं पकरि कै बदन बिदारिए ॥२२॥

२१—राहुमातु = छायाग्राहिणी सिंहिका। २२—तकिया = भरोसा।

राम को सनेह, राम साहस, लखन सिय
राम की भगति, सोच संकट निवारिए।
मुदमरकट रोग-वारिनिधि हेरि हारे,
जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये॥
कूदिए कृपाल तुलसी सु प्रेमपव्वइ तें,
सुथल सुबेल भाल बैठि कै बिचारिए।
महाबीर बाँकुरे बराकी बाहुपीर क्यों न
लंकिनी ज्यों लातघात ही मरोरि मारिए॥२३॥

लोक परलोक हूँ, तिलोक न विलोकियत
तो सो समरथ चष चारिहूँ निहारिए।
कर्म काल, लोकपाल, अग जग जीवजाल,
नाथहाथ सब निज महिमा विचारिए॥
खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर,
तुलसी सो, देव! दुखी देखियत भारिए।
बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि
उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए॥ २४॥

करम-कराल-कंस भूमिपाल के भरोसे
बकी बक भगिनी काहू तें कहा डरैगी?।
बड़ी बिकराल बालघातिनी न जात कहि,
बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी॥
आई है बनाइ बेष, आप तू बिचारि देख,
पाप जाय सब को गुनी के पाले परैगी।
पूतना पिसाचिनी ज्यों कपिकान्ह तुलसी की
बाहु-पीर, महाबीर, तेरे मारे मरैगी॥ २५॥

२३—बराकी = बापुरी, तुच्छ।
२४—कपिकच्छु बेल = केवाँच नाम की लता जो बंदरों को बहुत प्रिय होती है।

भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है
बेदन विषम पापताप छलछाँह की ।
करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की,
पराहि जाहि, पापिनी ! मलीन मन माँह की ॥
पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की ।
ग्रान हनुमान की, दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की ॥ २६ ॥
सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल,
लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है ।
लंका परजारि, मकरी बिदारि, बार बार
जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है ॥
तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि ग्रानी,
रावन की रानी मेघनाद-महतारी है ।
भीर बाँहपीर की निपट राखी महाबीर
कौन के सँकोच, तुलसी के सोच भारी है ॥ २७ ॥
तेरी बालकेलि, बीर ! सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीर-सुधि सक्र रवि राहु की ।
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,
तेरो नाम लेत रहै ग्रारति न काहु की ॥
साम दान भेद विधि, बेदहु लबेद सिद्धि,
हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की ।
ग्रालस, ग्रनख, परिहास की सिखावन है ?
एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की ! ॥ २८ ॥
टूकनि को घरघर डोलत कंगाल बोलि,
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है ।

कीन्ही है सँभार सार अंजनीकुमार वीर,
आपनो बिसारि हैं न मेरे हूँ भरोसो है ॥
इतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु,
कपिनाथ साँची कहौ को त्रिलोक तोसो है ?।
साँसति सहत दास कीजै पेखि परिहास,
चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है ॥ २९ ॥

आपने ही पाप तें त्रिताप तें, कि साप तें
बढ़ी है बाहुबेदन, कही न सहि जाति है ।
औषध अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किए,
बादि भए देवता, मनाए अधिकाति है ॥
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है ।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी, बीर, मोहिं पीर तें पिराति है ॥३०॥

दूत रामराय को, सपूत पूत बाय को,
समरथ हाथ पाय को, सहाय असहाय को ।
बाँकी बिरुदावलि बिदित बेद गाइयत,
रावन सो भट भयो मूठिका के घाय को ॥
एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु
सीदत सुसेवक बचन मन काय को ।
थोरि बाहुपीर की बड़ी गलानि तुलसी को,
कौन पाप कोप, लोप प्रगट प्रभाव को ? ॥ ३१ ॥

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं ।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम

३०—इताति = इतायत, आज्ञा-पालन ।

रामदूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं ॥
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग रोग,
हनूमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं ॥
क्रोध कीजै कर्म को, प्रबोध कीजे तुलसी को,
सोध कीजै तिनको जो दोष दुख देत हैं ॥ ३२ ॥
तेरे बल बानर जिताए रन रावन से,
तेरे घाले जातुधान भए घर घर के।
तेरे बल रामराज किए सब सुर काज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के ॥
तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकित,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के ॥
तुलसी के माथे पर हाथ फेरौ कीसनाथ,
देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के ॥ ३३ ॥
पाले तेरे टूक को, परे हूँ चूक मूकिए न,
कूर कौड़ो दू को हौं आपनी ओर हेरिए।
भोरानाथ भोरे ही, सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए ॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हो डिंभ, सो न,
बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए।
बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि
तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए ॥ ३४ ॥
घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं

३३—घर घर के भए = इधर उधर बेठिकाने हो गये। गीरवान = गीर्वाण, देवता। कनिगर = कानिवाला, जिसे अपनी मर्यादा की लज्जा हो।

३४—मूकना = छोड़ना, त्याग करना। अवडेरिए = उद्धार करना, बसने या रहने न देना। डिंभ = छोटा बच्चा।

बासर जलद घनघटा धुकि धाई है ।
बरषत बारि पीर जारिए जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूल, मलिनाई है ॥
करुनानिधान हनुमान महा बलवान !
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजैं तैं उड़ाई है ।
खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरियाई है ॥ ३५ ॥

मत्तगयंद

रामगुलाम तुही हनुमान गुसाईं सुसाईं सदा अनुकूलो ।
पाल्यौ हौं बाल ज्यौं आखर दू पितुमातु ज्यौं मंगलमोद समूलो ॥
बाहुँ की बेदन, बाँहपगार ! पुकारत आरत आनँदभूलो ॥
श्रीरघुबीर निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो ॥ ३६ ॥

घनाक्षरी

काल की करालता, करमकठिनाई कीधौं,
पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे ।
बेदन कुभाँति सो सही न जाति रातिदिन,
सोई बाँह गही जो गही समीरडावरे ॥
लायो तरु तुलसी तिहारो, सो निहारि बारि
सींचिए मलीन भो, तयो है तिहुँ ताव रे !
भूतनि की, आपनी, पराई, हे कृपानिधान !
जानियत सबही की रीति राम रावरे ॥ ३७ ॥
पाँय-पीर, पेट-पीर बाहु-पीर, मुँह-पीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है ।
देव, भूत, पितर, करम, खल, काल, ग्रह,

३६—बाँह-पगार = हे दृढ़ कोट के समान बाहुवाले ।
३७—डावरे = बच्चे, पुत्र ।

मोहिँ पर दवरि दमानक सी दई है ॥
हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि, बारे ही तेँ,
ओट रामनाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय रामराय ! ऐसी हाल कहूँ भई है ? ॥ ३८ ॥

बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि,
मुँहपीर-केतुजा, कुरोग-जातुधान हैं।
रामनाम जपजाग कियो चाहौं सानुराग,
काल कैसे दूतभूत कहा मेरे मान हैं ॥
सुमिरे सहाइ रामलपन आखर दोउ,
जिनके सोकेसमूह जागत जहान हैं।
तुलसी सँभारि, ताड़का सँहारि, भारी भट
बेधे बरगद से बनाइ बानवान हैं ॥ ३९ ॥

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
रामनाम लेत, माँगि खात टूकटाक हौं।
पर्यो लोकरीति में, पुनीत प्रीति रामराय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार, सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥ ४० ॥

असन-बसन-हीन, विपम-विपाद-लीन देखि

३८—दमानक = तोपों की बाढ़।

३९—लीचर = लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता। कहा मेरे मान हैं = क्या मेरे मान के हैं ? क्या मेरे इख्तियार में हैं ? अर्थात् मेरी सामर्थ्य के बाहर हैं।

४०—पाक = पवित्र।

दीन दूबरो करै न हाय हाय को? ।
तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को ॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइ गो
बिहाय प्रभुभजन बचन मन काय को ।
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥ ४१ ॥
जीवौं जग जानकीजीवन को कहाय जन,
मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को ।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ,
जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको ॥
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को, न हरि को ।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को? ॥ ४२ ॥
सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै ।
मानस बचन काय सरन तिहारे पायँ,
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै ॥
ब्याधि भूत-जनित उपाधि काहू खल की,
समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै ।
कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ, भूतनाथ!
रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर कै? ॥ ४३ ॥

४१—पति = प्रतिष्ठा । भरुआइ गो = फूल उठा, इतरा गया, अपने को भारी समझने लगा ।

४३—समाधि कीजै = समाधान कीजिए ।

कहौं हनुमान सों, सुजान रामराय सों,
　　कृपानिधान संकर सों, सावधान सुनिए।
हरप-विपाद-राग रोप-गुन-दोष-मई,
　　बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए ॥
माया जीव काल के, करम के, सुभाय के,
　　करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए।
तुमतें कहा न होय, हाहा! सो बुझैये मोहिं,
　　हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए ॥ ४४ ॥

गीतावली

गीतावली

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
रूपसील-गुनधाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥ १ ॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह वार जोग समुदाई ।
हरपवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥ २ ॥
बरपहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥ ३ ॥
सुनि दसरथ सुत जन्म लिए सब गुरु जन विप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥ ४ ॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥ ५ ॥
मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ ६ ॥
सहज सिँगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिँ देहिं असीस मुदित चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥ ८ ॥
अमित धेनु गज तुरग बसन मनि जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भए सुर, संत, भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।
सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥ १० ॥

जो सुख-सिंधु-सकृत-सीकर तें सिव विरंचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई॥११॥
जे रघुवीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसीदास तब पाई॥१२॥१॥

राग जैतश्री

सहेली सुनु सोहिलो रे!
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज॥
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुलराज॥ १॥
चैत चारु नौमी तिथि सितपख मध्य-गगन-गत भानु॥
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल मोद निधानु॥ २॥
व्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगल-मूल।
सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं फूल॥ ३॥
भूपति सदन सोहिलो सुनि बाजें गहगहे निसान।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान॥ ४॥
सींचि सुगंध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार॥ ५॥
सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत।
लिए बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत॥ ६॥
जातकर्म करि, पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान।
तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान॥ ७॥
आनँद महँ आनंद अवध, आनंद बधावन होइ।
उपमा कहौं चारि फल की, मोहिँ भलो न कहै कवि कोइ॥ ८॥
सजि आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि॥ ९॥

असही दुसही मरहु मनहिं मन, बैरिन बढ़हु बिषाद।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर गौरि प्रसाद॥ १०॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राय की, नाचहिं राजदुवार॥ ११॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन सबनि सँवारे साज।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज॥ १२॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार॥
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन-झनकार॥ १३॥
नृत्य करहिं नट नटी, नारि नर अपने अपने रंग।
मनहुँ मदनरति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग॥ १४॥
उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान।
सुनि किन्नर गंधर्व सराहत, बिथके हैं बिबुध-बिमान॥ १५॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर॥ १६॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुरु आसिरबाद।
दसरथ सुकृत-सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद॥ १७॥
ब्राह्मण बेद, बंदि बिरदावलि, जय धुनि मंगल गान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥ १८॥
बारहिं मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान॥ १९॥
कीन्हि बेदबिधि लोकरीति नृप, मंदिर परम हुलास।

२—१०—असही दुसही = द्वेषी, बैरी (जिन्हें भलाई सह्य या दुःसह हो)।

२—११—ढोव = भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार में भर कर भेजते हैं। आन करि = गीतों में नाम लेले कर।

२—१३—आउज = ताशा। तार = ताल, मजीरा।

२—१५—उघटहिं = बार बार पद को कहते हैं।

कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास ॥ २० ॥
रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन-भँडार।
मागध सूत भाँट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥ २१ ॥
बिप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस रमेस मनाइ ॥ २२ ॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिँ।
समउ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहिँ ॥ २३ ॥
को कहि सकै अवधबासिन को प्रेम प्रमोद उछाह।
सारद सेस गनेस गिरीसहिं अगम निगम अवगाह ॥ २४ ॥
सिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूप के भाग।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ॥२५॥२॥

राग बिलावल

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए।
सदन सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए ॥ १ ॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सम गान ठए।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए ॥ २ ॥
अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गए।
जातकरम करि कनक बसन, मनिभूषित सुरभि समूह दए ॥ ३ ॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लए।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए ॥ ४ ॥
कनक-कलस चामर पताक धुज जहँ तहँ बंदनवार नए।
भरहिँ अबीर, अरगजा छिरकहिँ, सकल लोक एक रंग रए ॥५॥
उमँगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ, देत सबनि मंदिर रितए।
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ॥ ६ ॥

२—२१—सहन-भँडार = बाहरी खजाना ?। कबार = लेन देन।
४—४—बए = कहे।

राग जयतश्री

गावैं विबुध विमल बरबानी।
भुवन कोटि कल्यान-कंद जो जायो पूत कौसिला रानी ॥ १ ॥
मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी।
जल थल गगन प्रसन्न साधु मन, दसदिसि हिय हुलसानी ॥ २ ॥
बरषत सुमन, बधाव नगर नभ, हरष न जात बखानी।
ज्यौं हुलास रनिवास नरेसहिं त्यौं जनपद रजधानी ॥ ३ ॥
अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन बिगतबिषाद-गलानी।
मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंकसंक अकुलानी ॥४॥
देव पितर गुरु बिप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी।
मुनि-बनिता, पुरनारि सुआसिनि सहस भाँति सनमानी ॥ ५ ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी।
'यौं प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होहु महेस भवानी' ॥ ६ ॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भई सुमंगल-खानी।
भयो सोहिलो सोहिले मो जनु सृष्टि सोहिले-सानी ॥ ७ ॥
गावत नाचत, मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥ ८ ॥
गान निसान कुलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि-बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी ॥ ९ ॥
आनंद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी।
आसिप दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी ॥ १० ॥
बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी।
कीरति, कुसल, भूति, जय, ऋधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी ॥११॥
छठी बारहैं-लोक-बेद बिधि करि सुबिधान बिधानी।
राम लषन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुरु ज्ञानी ॥ १२ ॥

४-४—मिलेहि माँझ = साथ ही।

सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि विधि जतन-जंत्र भरि घानी ।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी ॥ १३ ॥
अनुदिन उदय उछाह उमग जग, घर घर अवध कहानी ।
तुलसी राम-जनम-जस गावत सो समाज उर आनी ॥ १४ ॥ ४ ॥

राग केदारा

घर घर अवध बधावने मंगल साज समाज ।
सगुन सोहावने मुदित मन कर सब निज निज काज ॥
निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी ।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह, चारु चौकैं विधि घनी ॥
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी ।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी विधि सुमति-जननी जनु जनी ॥ १ ॥
चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज ।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनँद आज ॥
आनँद उमंगत आजु, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै ।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइ कै ॥
नर निरखि नभ, सुरपेखि पुरछबि परसपर सचु पाइकै ।
रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै ॥ २ ॥
जागिय राम छठी सजनि रजनी रुचिर निहारि ।
मंगल मोदमढ़ी मुरति नृप के बालक चारि ॥
मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथ मई ।
अनुरूप भूपति जानि पूजन-जोग विधि संकर दई ॥
तिन्हकी छठी, मंजुलमठी, जग सरस जिन्हकी सरसई ।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥ ३ ॥

४–१३—खलेल = तेल की मैल या गाद । थिरथानी = लोकपाल आदि स्थिर स्थानवाले ।

सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान ।
मुनिवर सिखये लौकिकौ बैदिक बिबिध विधान ॥
बैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै ।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै ॥
जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै ।
ते जंत्र मंत्र सिखाइ राखत सबनि सों पहिचानिकै ॥ ४ ॥
सकल सुआसिनि गुरुजन पुरजन पाहुनलोग ।
बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग ॥
जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये ।
जय कहत देत असीस तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये ॥
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये ।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिये ॥ ५ ॥
भूपति भागबली सुर वर नाग सराहि सिहाहिं ।
तिय-परबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं ॥
अनिमादि, सारद, सैलनंदिनि बाल लालहि पालहीं ।
भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लहीं ॥
निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं ।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभुछठी छाया लही ॥ ६ ॥ ५ ॥

राग जयतश्री

बाजत अवध गहागहे आनँद-बधाए ।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए ॥
पाय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए ।
सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए ॥
साधु सुमति समरथ सबै सानंद सिखाए ।
जल दल फल मनि-मूलिका कुलि काज लिखाए ॥ १ ॥

५–६—कमाहिं = सेवा या काम करती हैं ।

गनप गौरि हर पूजिकै गोबृंद दुहाए।
घर घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाए॥
तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भए भाए।
सुरपति-सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए॥ २॥
गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए।
कलस चँवर तोरन धुजा सुवितान तनाए॥
चित्र चारु चौकैं रचीं लिखि नाम जनाए।
भरिभरि सरवर बापिका अरगजा सनाए॥ ३॥
नर-नारिन्ह पल चारि में सब साज सजाए।
दसरथ-पुर छवि आपनी सुरनगर लजाए॥
बिबुध बिमान बनाइ कै आनंदित आए।
हरषि सुमन बरषन लगे गए धन जनु पाए॥ ४॥
बरे बिप्र चहुँ बेद के रबिकुल-गुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्वणी, महिमा जग जानी॥
लोक-रीति बिधि बेद की करि कह्यो सुबानी--
'सिसु समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी'॥ ५॥
सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत बड़भागीं।
उमा रमा सारद सची लखि सुनि अनुरागीं॥
निज निज रुचि बेष बिरचि कै हिलिमिलि सँग लागीं।
तेहि अवसर तिहुँ लोक की सुदसा जनु जागीं॥ ६॥
चारु चौक बैठत भई भूप भामिनी सोईं।
गोद मोद-मूरति लिए, सुकृती जन जोईं॥
सुख सुखमा कौतुक कला देखि सुनि मुनि मोहैं।
सो समाज कहँ बरनिकै ऐसे कवि को हैं?॥ ७॥
लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे।

६-१--बरे = वरण किया।

गगन सुमन-झरि, जयजय, बहु बाजन बाजे ॥
भए अमंगल लंक में, संक संकट गाजे ।
भुवन-चारिदस के बड़े दुख दारिद भाजे ॥ ८ ॥
बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो ।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो ॥
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो ।
कंद सकल आनंद को जनु अंकुर आयो ॥ ९ ॥
जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे ।
'जय जय जय करुनानिधे !' सादर सुर भाषे ॥
सत्यसंध साँचे सदा जे आखर आषे ॥
प्रनतपाल पाए सही जे फल अभिलाषे ॥ १० ॥
भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी ।
बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी ॥
देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी ।
लगे देन हिय हरषि कै हेरि हेरि हँकारी ॥ ११ ॥
राम-निछावरि लेन को हठि होत भिखारी ।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन-धारी ॥
भरत लषन रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी ।
फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी ॥ १२ ॥
भए भूप बालकनि के नाम निरूपम नीके ।
सबै सोच संकट मिटे तब तें पुर-ती के ॥
सुफल मनोरथ बिधि किए सब बिधि सबही के ।
अब होइहै गाए सुने सब के तुलसी के ॥ १३ ॥ ६ ॥

६—१०—आषे = कहे ।
६—११—नरदेव = राजा ।
६—१२—धनधारी = कुबेर ।

राग बिलावल

सुभगसेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार बार बिधुवदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥ १ ॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहुँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये ॥ २ ॥
बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये ॥ ३ ॥ ७ ॥

राग सोरठ

ह्वैहौ लाल कबहिँ बड़े बलि मैया।
राम लषन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयो भैया ॥ १ ॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं ॥ २ ॥
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि "माँ" मोहिं बुलैहौ ॥ ३ ॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सुहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली ॥ ४ ॥
जा सुख की लालसा लट्ठू सिव, सुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी ॥ ५ ॥ ८ ॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया।
भूपति पुन्य-पयोधि उमँग, घर घर आनँद बधैया ॥ ४ ॥

ह्वैहैं सकल सुकृत-सुख-भाजन-लोचन, लाहु लुटैया।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया॥ ५॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया।
तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया॥ ६॥ ६॥

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
 रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है।
भ्रूपर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार
 बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है।
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि
 देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।
मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
 पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है।
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
 चाल चाहि सो छबि सुकवि जिय जियो है।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
 सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि
 सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर
 ऐसे सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है॥ १०॥
राम-सिसु गोद-महामोद भरे दसरथ,
 कौसिलाहू ललकि लषन लाल लए हैं।
भरत सुमित्रा लए, कैकयी सत्रुसमन,
 तन प्रेम-पुलक, मगन मन भए हैं।

१०—उपवियो है = उदय हुआ है। दी = दीप्त, चमकता हुआ।

मेढ़ी लटकन मनि-कनक-रचित, बाल-
भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं।
चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर,
तैसे फल पावत जैसे सुबीज वए हैं।
घनओट विबुध बिलोकि बरषत फूल,
अनुकूल बचन कहत नेह नए हैं।
ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन बिधि
जानियत आयु भरि येई निरमए हैं।
'अजर अमर होहु' 'करौ हरि हर छोहु'
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं।
तुलसी सराहैं भाग तिन्हके जिन्हके हिये
हिंम-रामरूप-अनुराग-रंग रए हैं॥ ११॥

राग आसावरी

आजु अनरसे हैं भोर कें, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो सो सोच सबही के॥
देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिए घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के॥
बेगि बोलि कुलगुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े जो सुमिरत भय भी के॥
जासु नाम सर्वस सदासिव पार्वती के।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के॥
माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमासमुझि, लीलाबिलोकिगुरुसजलनयन, तनुपुलक, रोमरोम जागे॥

११—मेढ़ी = आगे के बाल को दोनों ओर गूंथकर बीच की चोटी के साथ बाँध देते हैं जिसे मेढ़ी कहते हैं।

१२—भी = डर।

लिए गोद, धाए गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे।
निरखि मातु हरषीं हिये आली ओट कहति मृदु बचन प्रेम के से पागे॥
तुम्ह सुरतरु रघुबंस के, देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे॥
अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिवर जब जोए।
तबतें राम अरु भरत लषनरिपुदवन, सुमुखसखि! सकलसुवनसुखसोए॥
सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए।
तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये॥
मातु सकल, कुलगुरु-बधू, प्रिय सखी सुहाई।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई॥
बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई।
पूजि पायँ सनमानि दान दिये लहि असीस सुनि बरषैं सुमन सुरसाईं॥
घर घर पुर बाजन लगीं आनंद बधाई।
सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोरयोहै चितचहुँ भाई॥१२॥

राग धनाश्री

या सिसु के गुन नाम बड़ाई।
को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति समान प्रभुताई॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन समय चारु चारयो भाई।
तदपि लोक-लोचन-चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई॥
सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति हरिहि धरनि गरुआई।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई॥
याके चरन-सरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई॥
सुनि गुरुबचन पुलक तन दंपति, हरष न हृदय समाई।
तुलसिदास अवलोकि मातु-मुख प्रभु मन में मुसुकाई॥ १३॥

राग बिलावल

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन परिचौ पायो॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥
पाँय पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चारयो सुत, माथे हाथ दिवायो॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिसि सीय स्वयंवर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन लखन को जय सुख सुजस सुनायो॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यौ महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ १४॥

राग केदारा

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं॥ १५॥

सोइये लाल लाडिले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई।
तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई॥
मूल मूल सुरबीथि-बेलि, तम-तोम-सुदल अधिकाई।

१४—आगमी = दैवज्ञ, ज्योतिषी।

नखत-सुमन, नभ-बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छबि छाई ॥
हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई ।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥
बछरु छबीलो छगनमगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाइ ।
सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ॥ १६ ॥

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया ।
सुख सोइए नींद-बेरिया भई चारु-चरित चार्यौ भैया ॥
कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया ।
मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया ॥
रघुबर बालकेलि संतन की सुभग सुभद सुरगैया ।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ॥१७॥

सुखनींद कहति आलि आइहौं ।
राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं ॥
रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं ।
हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं ॥
गोद बिनोद मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं ।
तनु तिल तिल करि वारि राम पर लेहौं रोग बलाइ हौं ॥
रानी राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं ।
चारु चरित रघुबंस-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥ १८ ॥

राग आसावरी

कनक-रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार ।
बिबिध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार ॥
रघुकुल-मंडन राम लला ॥ १ ॥
जननि उबटि अन्हवाइकै मनिभूषन सजि लिये गोद ।

१७—लेरुआ = बछवा । घैया = थन से निकलती हुई दूध की धार ।
१८—डिठि मुठि = डीठ मूठ नजर और टोना ।
१६-१—सुतहार = खाट बीननेवाला, बढ़ई ।

पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथनंदन राम लला ॥ २ ॥
मदन, मोर कै चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति ।
नील कमल, मनि, जलद की उपमा कहे लघु मति होति ॥
मातु-सुकृत-फल राम लला ॥ ३ ॥
लघु लघु लोहित ललित हैं पद, पानि, अधर एक रंग ।
को कवि जो छवि कहि सकै नखसिख सुंदर सब अंग ॥
परिजन-रंजन राम लला ॥ ४ ॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर-कंजनि पहुँची मंजु ।
हिय हरिनख अदभुत बन्यों मानो मनसिज मनि-गन-गंजु ॥
पुरजन-सिरमनि राम लला ॥ ५ ॥
लोयन नील सरोज से, भ्रूपर मसि-विंद बिराज ।
जनु बिधु-मुख-छवि-अमिय को रच्छक राखे रसराज ॥
सोभासागर राम लला ॥ ६ ॥
गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट ।
जनु उडुगन बिधु मिलन को चले तम बिदारि करि बाट ॥
सहज सोहावनो राम लला ॥ ७ ॥
देखि खेलौना किलकहीं पद पानि बिलोचन लोल ।
विचित्र बिहँग अलि जलज ज्यों सुखमा-सर करत कलोल ॥
भगत-कल्पतरु राम लला ॥ ८ ॥
बाल-बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि ।
जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥
नाम-कामधुक राम लला ॥ ९ ॥

१३–६—मसिबिंद = डिठौना ।
१३–९—कामधुक = कामधेनु ।
१३–७—गभुआरी = [सं० गर्भ, प्रा० गब्भ + प्र० आर] गर्भ अर्थात् पेट की ।

सखी सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावैं उमँगि उमँगि अनुराग॥
हैं जग-मंगल राम लला॥ १०॥
मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्यो जग-भानु।
रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु॥
भुवन-बिभूषन राम लला॥ ११॥
राम प्रगट जब तें भए गए सकल अमंगल मूल।
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन के चित सूल॥
भव-भय-भंजन राम लला॥ १२॥
अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान॥
रिपुगन-गंजन राम लला॥ १३॥
राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि।
दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि॥
अरि-करि-केहरि राम लला॥ १४॥
गीत सुमित्रा सखिन्ह के सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल।
दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल॥
सुर-सुखदायक राम लला॥ १५॥
बालचरित-मय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान।
चित चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रस पान॥
तुलसी को जीवन राम लला॥ १६॥ १९॥

राग कान्हरा

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥
कोकिकंठ दुति, स्यामबरन बपु, बाल-बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए॥

सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए॥
ऊपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत॥
तुलसिदास बहु-बास-बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी॥२०॥

राग बिलावल

झूलत राम पालने सोहैं।
भूरि-भाग जननी जन जोहैं॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई।
झलकति बाल बिभूषन झाँई॥
अधर पानि पद लोहित लोने।
सर-सिंगार-भव सारस सोने॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना॥
रंजित अंजन कंज-बिलोचन।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको।
चितवत चितचकोर तुलसी को॥ २१॥

राग कल्याण

राजन सिसुरूप राम सकल गुन निकाय धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी।
नीलकंज जलदपुंज मरकतमनि सरिस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अँग उपर वारी॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मंदिराभ,

२२—जानु पानि-चारी = घुटनों के बल चलनेवाले। षड ंघ्रि = षटपद, भौंरा।

इंदिरानिवास सदन विधि रच्यो सँवारी ।
विहरत नृप-अजिर अनुज सहित बालकेलि-कुसल,
नील-जलज-लोचन हरि मोचन-भयभारी ॥
अरुन चरन अंकुस धुज कंज कुलिस चिन्ह रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर वर मधुर मुखरकारी ।
किंकिनी विचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि नख, कंकन करधारी ॥
चारु चिबुक नासिका कपोल, भाल तिलक, भ्रुकुटि,
स्रवन अधर सुंदर, द्विज-छबि अनूप न्यारी ।
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुगपाँति प्रसव,
कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्रवारी ॥
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली,
बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी ।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि,
लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी ॥
जा कहँ सनकादि संभु नारदादि सुक मुनींद्र
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।
दसरथ गृह सोइ उदार, भंजन संसार-भार,
लीला अवतार तुलसिदास त्रासहारी ॥ २२ ॥

राग कान्हरा

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।
नील-जलद-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए ॥१॥
बंधुक-सुमन-अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।
नूपुर जनु मुनिवर-कलहंसनि रचे नीड़, दै बाँह बसाए ॥ २ ॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए ।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए ॥ ३ ॥

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका स्रवन कपोल मोहिं अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए ॥ ४ ॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए॥५॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनों तड़ित छपाए ॥६॥
अंग अंग पर मार-निकर मिलि छबिसमूह लैलै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो बिधि होंहि बनाए ॥७॥२३॥

राग केदारा

रघुबर-बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि-मनोज-सोभाहरनि ॥ १ ॥
बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि ॥ २ ॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार-सिसु-तरु फरो है अदभुत फरनि ॥ ३ ॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि ॥ ४ ॥
लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जनु जलज-संपुट सुछबि भरि भरि धरति उर धरनि ॥ ५ ॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ-घरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ ६ ॥ २४ ॥

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप-घरनि ॥ १ ॥
बाल-भूषन-बसन, तन सुंदर रुचिर रजभरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥ २ ॥

झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि ।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि ॥ ३ ॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि ।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि ॥ ४ ॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भए चहै तरनि ॥ ५ ॥ २५ ॥

राग जयतश्री

भूमितल भूप के बड़े भाग ।
राम लषन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥ १ ॥
बाल-बिभूषन लसत पायँ मृदु मंजुल अंग-बिभाग ।
दसरथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह जनु लाग ॥ २ ॥
राजमराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय-तड़ाग ।
ते नृप-अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग ॥ ३ ॥
सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन कहैं सुर किन्नर नाग ।
"ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग" ॥ ४ ॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम-प्रयाग ।
तुलसी फल ताके चारयो मनि मरकत पंकजराग ॥ ५ ॥ २६ ॥

राग आसावरी

आँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई ।
सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने,
लरिका लखि मुदित मातुसमुदाई ॥ १ ॥
बाल-बसन-भूपन धरे नखसिख छबि छाई ।
नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल,

२५–४—सैंतना = संचय और रक्षा करना। पैंत = दाँव में रखा हुआ द्रव्य।
२६–२—करह = नया कल्ला।
२६–५—पंकजराग = पद्मराग, मानिक।

मालनि मानो हैं देहनि तें द्युति पाई ॥ २ ॥
ठुमुकु ठुमुकु पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई।
भजनि मिलनि रूठनि ठूठनि किलकनि,
अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
जननि सकल चहुँ ओर आलवाल मनि-अँगनाई।
दसरथ सुकृत-बिबुध-बिरवा बिलसत,
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥ ४ ॥
हरि बिरंचि हर हेरि राम प्रेम-परबसताई।
सुख-समाज रघुराज के बरनत,
बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई ॥ ५ ॥
सुमिरत श्रीरघुबरन की लीला लरिकाई।
तुलसिदास अनुराग अवध आनँद,
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥ ६ ॥ २७ ॥

राग बिलावल

आँगन खेलत आनँदकंद।
रघुकुल कुमुद सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लषन सँग सोहैं।
सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ॥
तन दुति मोरचंद जिमि झलकैं।
मनहु उमँगि अँग अँग छबि छलकैं ॥ १ ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं।
पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके।
नयन-सरोज मयन-सरसी के ॥ २ ॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं।

२७—४—बिबुध-बिरवा = कल्पवृक्ष।

दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा ।
ललित बदन, बलि, बालमुकुंदा ॥ ३ ॥
कुलही चित्र-विचित्र झँगूलीं ।
निरखत मातु मुदित मन फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत ।
कलबल बचन तोतरे बोलत ॥ ४ ॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि ।
देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है ।
गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥ ५ ॥ २८ ॥

राग कान्हरा

ललित सुतहि लालति सचु पाए ।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाए ॥१॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुनु मधुर रेंगाए ।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरिनख-मनि-जरित जराए ॥२॥
पीत पुनीत विचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए ।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुखछबि, अरुन अधर चित लेत चोराए ॥३॥
चिबुक कपोल नासिका सुंदर, भाल तिलक मसिबिंदु बनाए ।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाए ॥ ४ ॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाए ।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाए ॥५॥
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए ।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए ॥ ६ ॥
देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए ।
तुलसिदास जे रसिक न एहि रस ते नर जड़ जीवत जग जाए ॥ ७ ॥ २९ ॥

राग ललित

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकु ठुमुकु चलैं,
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि हाटक-जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर॥ १॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मन-हर।
अंजन-रंजित नैन, चित चोरैं चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर॥
चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता,
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम-भर।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसी के मन बसैं तोतरे बचन बर॥ २॥ ३०॥

सादर सुमुखि विलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम-सरोज-बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ॥१॥
अरुन चरन नखजोति जगमगति, रुनझुनु करति पाँय पैंजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित रटति कटि किंकिनि, कलित पीतपट-तनियाँ॥२॥
पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ॥३॥
बिकट भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नगफनियाँ।
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ॥४॥
मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमनहरनि हँसनि किलकनियाँ।

बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ ॥५॥
सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छवि चंदवदनियाँ ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेमविवस कछु सुधि न अपनियाँ॥६॥३१॥

राग बिलावल

सोहत सहज सुहाए नैन ।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन ॥ १ ॥
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आए लैन ।
बड़ो लाभ, लालची लोभ बस रहि गए लखि सुखमा बहु मैन ॥२॥
भोर भूप लिए गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन ।
बालक-रूप अनूप राम-छवि निवसति तुलसिदास-उर-ऐन ॥३॥ ३२॥

राग विभास

भोर भयो जागहु, रघुनंदन !
गत-व्यलीक, भगतनि-उर-चंदन ॥
ससि करहीन, छीनदुति तारे ।
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ! ॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने ।
लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुजसखा सब बोलनि आए ।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
मनभावतो कलेऊ कीजै ।
तुलसिदास कहँ जूंठनि दीजै ॥ ३३ ॥
प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे ! ।
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु-अनुज प्रियतम तिहारे ।

३३—व्यलीक = कपट ।

कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछवि,
अरुनमय गगन राजत रुचि-वारे ।
मनहुँ रबिबाल-मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ।
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहँग बारे ॥ ३४ ॥
मनहुँ मुनिवृंद, रघुबंसमनि ! रावरे
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ।
सरनि बिकसित कंजपुंज मकरंद वर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे ।
मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,
इंदिरानंद मंदिर सँवारे ।
प्रेम-संमिलित वर बचन-रचना अकनि
राम राजीव-लोचन उघारे ।
दास तुलसी मुदित, जननि करै आरती,
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥ ३५ ॥
जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र !
जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे ।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित, बिगत सर्वरी, ससांक किरनिहीन,
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे ।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास
आसत्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥
बोलत खगनिकर मुखर मधुर-करि प्रतीत
सुनहु स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे ।

मनहुँ वेद बंदी मुनिवृंद सूत मागधादि विरुद
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु विराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद,
छूटे भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे ॥ ३६ ॥
बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृपभवन-द्वार,
रूपसील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे ॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे ॥
उपवन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे।
तुलसिदास संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ॥ ३७ ॥

राग नट

खेलन चलिये आनँदकंद।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-वृंद ॥ १ ॥

३६—कदंब = समूह।

तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास ।
बपुष-वारिद बरषि छवि-जल हरहु लोचन-प्यास ॥ २ ॥
बंधु-वचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल ।
ललित लघु सर चाप कर, उर नयन बाहु बिसाल ॥ ३ ॥
चलत पद प्रतिबिंब राजत अजिर सुखमा-पुंज ।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज ॥ ४ ॥
निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात ।
हरष-बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु, तात' ॥ ५ ॥
देखि तुलसीदास प्रभु-छवि रहे सब पल रोकि ।
थकित निकर-चकोर मानहुँ सरदइंदु बिलोकि ॥ ६ ॥ ३८ ॥

बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ॥ १ ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।
पीत पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु बान ॥ २ ॥
लोचननि को लहत फल छवि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥ ३ ॥ ३९ ॥

जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लालु ।
तैसेई भरत सील-सुखमा-सनेह-निधि, तैसेई सुभग संग सत्रुसालु ॥१॥
धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु ।
अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिरजालु ॥२॥
खेलत चौहट घाट बीथी वाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु ।
सोभा-दान दै दै सनमानत जाचकजन करत लोक-लोचन निहालु ॥३॥
रावन-दुरित-दुख दलैं सुर कहैं आजु 'अवध सकल सुख को सुकालु' ।
तुलसी सराहैं सिद्ध सुकृत कौसल्या जू के, भूरि-भाग-भाजन सुवालु॥४॥४०॥

राग ललित

ललित ललित लघु लघु धनु सर कर,

तैसी तरकसी; कटि कसे पट पियरे ।
ललित पनहीं पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे ॥
पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छवि गड़ी कवि जियरे ।
सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल,
सुंदर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे ॥
सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे ॥ ४१ ॥

छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी ।
लसत झँगूली झीनी, दामिनि की छबि छीनी,
सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी ॥
बय-अनुहरत बिभूषन बिचित्र अँग,
जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी ।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै,
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥ ४२ ॥

राग टोड़ी

राम लषन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥

४१—टिपारा=ऊँची दीवार की टोपी के आकार का मुकुट । दियरा=बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं ।

४२—सरक=शराब या शराब का सुमार ।

कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि, ठौंकि ठौंकि खये ।
कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥
व्योम विमाननि विबुध विलोकत खेलक पेखक छाँह छये ।
सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु-कुसुम चये ॥
एक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-विनोद-मयं ।
एक कहत भइ हारि राम जू की, एक कहत भइया भरत जये ॥
प्रभु बकसत गज बाजि बसन मनि, जय-धुनि गगन निसान हये ।
पाइ सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गए ॥
नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर सिद्धनि बरदान दये ।
भूरि-भाग अनुराग उमँगि जे गावत सुनत चरित्र नित ये ॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव सील सुकृती तेइ जे एहि रंग-रए ॥ ४३ ॥

खेलि खेल सुखेलनिहारे ।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥
बंधु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सँभारे ।
दिए बसन गज बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे ॥ २ ॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानंद सिधारे ।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राउ पगु धारे ॥ ३ ॥
भूप-भवन घरघर घमंड, कल्यान कोलाहल भारे ।
निरखि हरषि आरती निछावरि करत सरीर बिसारे ॥ ४ ॥
नित नए मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे ।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभु तें प्रभु-चरित पियारे ॥५॥४४॥

राग सारंग

चहत महामुनिजाग जयो ।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप-तयो ॥ १ ॥

४३—खये = बाहुमूल ।

सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो।
बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छन में सब सोच गयो।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥ ३ ॥
करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनंद नयो।
तुलसी प्रभु अनुराग उमगि मग मंगल-मूल भयो ॥ ४ ॥ ४५ ॥

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुख की सींव,, अवधि आनँद की, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥१॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं ॥ २ ॥
सादर समाचार नृप बूझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आस्रमहिं राम लपन लै आइहौं ॥ ३ ॥ ४६ ॥

राग नट

देखि मुनि! रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनती में अब तें हौं जहँ लौं साधु-समाज ॥ १ ॥
चरन बंदि कर जोरि निहोरत, "कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह गेह सब राज" ॥ २ ॥
भली कही भूपति-त्रिभुवन में को सुकृती सिरताज ?
तुलसि राम-जनमहि तें जनियत सकल सुकृत को साज ॥ ३ ॥ ४७ ॥

राजन्! राम लपन जौं दीजै।
जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै ॥ १ ॥
डरपत हौं साँचे सनेह-बस सुत-प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु, तुम पुनि परम सयाने ॥ २ ॥
रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुबंस-तिलक की कबिकुल कीरति गैहैं ॥ ३ ॥ ४८ ॥

४१—ठयो = यजन किया।

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिवर के बयन।
कहि न सकत कछु, राम-प्रेमबस पुलक गात, भरे नीर नयन॥ १॥
गुरु वसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने जाने सेष-सयन।
सौंपे सुत गहि पानि पाँय परि, भूसुर उर चले उमगि चयन॥ २॥
तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन।
मधु माधव मूरति दोउ सँग मानो
दिनमनि गवन कियो उत्तर अयन॥ ३॥ ४९॥

राग सारंग

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई।
पितु-पद बंदि सीस लियो आयसु सुनि सिष आसिष पाई॥ १॥
नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनि आई।
सर धनु पानि, पीत पट कटितट, कसे निखंग बनाई॥ २॥
कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन, मुखछबि बरनि न जाई॥ ३॥
पल्लव पंख सुमन सिर सोहत, क्यों कहौं बेष लुनाई?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुंदरताई॥ ४॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग-बन-रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई॥ ५॥
एक तीर तकि हती ताड़का-बिद्या बिप्र पढ़ाई।
राख्यो जज्ञ जीति रजनीचर, भइ जग बिदित बड़ाई॥ ६॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई।
तुलसिदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई॥ ७॥ ५०॥

राग नट

दोउ राजसुवन राजत मुनि के संग।
नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोयन दामिनि-बारिद-बरबरन अंग॥ १॥

४३—पतंगसुत = सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमार।

सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु सर कर, कसे कटि निखंग ।
मानो मख-रुज-निसिचर हरिबे को सुत पावक के साथ पठए पतंग ॥२॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छवि बरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेममगन रँगे रूप-रंग ॥३॥५१॥

राग कल्याण

मुनि के संग बिराजत बीर ।
काकपच्छ, धर, कर कोदंड सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छवि, उर न समाति प्रेम की भीर ॥२॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित-सरोवर-तीर ।
तोरत लता सुमन सरसीरुह, पियत सुधा सम सीतल नीर ॥ ३ ॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर, पुनि पुनि बरनत छाँह समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥ ४ ॥
नयननि को फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रजबधू अहीर ।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन-मृदु-कमल-कुटीर ॥५॥५२॥

राग कान्हरा

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई ।
तरुन तमाल चारु चंपक-छवि कवि सुभाय कहि जाई ॥ १ ॥
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई ।
बदन-मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥ २ ॥
अंसनि धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई ।
सकल-भुवन-सोभा-सरवसु लघु लागति निरखि निकाई ॥ ३ ॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरष, पवन सुखदाई ।
जल-थल-रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई ॥ ४ ॥

५२—नटत = नाचते हैं । ब्रज = अहीरों का टोल, या बाड़ा ।
५३—अंसनि = कंधों पर ।

सकुच सभीत विनीत साथ गुरु बोलनि चलनि सुहाई ।
खग मृग चित्र बिलोकत बिच बिच, लसति ललित लरिकाई ॥ ५ ॥
विद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई ।
ख्याल दली ताड़का, देखि ऋषि देत असीस अघाई ॥ ६ ॥
बूझत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि निज-कुल-कथा सुनाई ।
गाधिसुवन-सनेह-सुख-संपति उर-आस्रम न समाई ॥ ७ ॥
बनबासी बटु जती जोगि-जन साधु-सिद्ध-समुदाई ।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन लाभ लुटि पाई ॥ ८ ॥
मख राख्यो खलदल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई ।
नित पथ-चरित-सहित तुलसी-चित बसत लखन रघुराई ॥ ९ ॥ ५३ ॥

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा ।
मुनि, मुनितिय, मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा ॥ १ ॥
नाम-रूप-अनुरूप बेष बय, राम लखन लाल लोने ।
इन्हतें लही है मानो घन-दामिनि दुति मनसिज मरकत सोने ॥ २ ॥
चरन-सरोज, पीतपट कटितट, तून-तीर-धनुधारी ।
केहरिकंध, काम-करि-करवर बिपुल बाहु, बल भारी ॥ ३ ॥
दूपन-रहित समय सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहैं ।
नव-राजीव-नयन, पूरन-बिधुबदन मदन मन मोहैं ॥ ४ ॥
सिरनि सिखंड, सुमन-दल-मंडन बाल सुभाय बनाए ।
केलि-अंक तनु रेनु पंक जनु प्रगटत चरित चोराए ॥ ५ ॥
मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आस्रमहिं आने ।
प्रेम पूजि पाहुने प्रानप्रिय गाधिसुवन सनमाने ॥ ६ ॥

५३—५—चित्र=रंग बिरंग ।

५४—सिखंड=मोरपख । केलिअंक......चोराए=खेल के चिह्न स्वरूप जो धूल और कीचड़ शरीर में लगा है वह मानो उस चरित्र को प्रकट करता है जो विश्वामित्र से चुरा कर किया गया ।

साधन-फल साधक सिद्धनि के, लोचन-फल सबही के ।
सकल सुकृत-फल मातु पिता के, जीवनधन तुलसी के ॥ ७ ॥ ५४ ॥

राग सूहो

रामपद-पदुम-पराग परी ।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छविमय देह धरी ॥ १ ॥
प्रबल पाप पति-साप-दुसह-दव दारुन जरनि जरी ।
कृपा-सुधा सिँचि बिबुध बेलि ज्यौं फिरि सुख-फरनि फरी ॥ २ ॥
निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुवति बराय बरी ।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटक तेँ न टरी ॥ ३ ॥
बरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ?॥ ४ ॥ ५५ ॥

परत पद-पंकज ऋषि-रवनी ।
भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छवि-छवनी ॥ १ ॥
देखि बड़ो आचरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि-भवनी ।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी ॥ २ ॥
परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि-गवनी ।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनु की महिमा कहै मति कवनी ॥ ३ ॥ ५६ ॥

भूरिभाग भाजनु भई ।
रूपरासि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम-सुरंग रई ॥ १ ॥
कहा कहैं केहि भाँति सराहैं, नहिँ करतूति नई ।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई ?॥ २ ॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदमई ।
तुलसी ह्वै बिसोक पति-लोकहि प्रभुगुन गनत गई ॥ ३ ॥ ५७ ॥

राग कान्हरा

कौसिक के मख के रखवारे ।
नाम राम अरु लखन ललित अति दसरथ-राज-दुलारे ॥ १ ॥

मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छ-धर वारे।
सोभा सकल सकेलि मदन-विधि सुकर-सरोज सँवारे॥ २॥
सहस समूह सुवाहु सरिस खल समर सुर भट भारे।
केलि-तून-धनु-बान-पानि रन निदरि निसाचर मारे॥ ३॥
ऋषितिय तारि स्वयंवर पेखन जनक-नगर पगु धारे।
मग नरनारि निहारत सादर कहैं बड़ भाग हमारे॥ ४॥
तुलसी सुनत एक एकनि सों चलत विलोकनिहारे।
मूकनि बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे हैं विलोचन-तारे॥ ५॥ ५८॥

राग ठोड़ी

आए सुनि कौसिक जनक हरपाने हैं।
बोलि गुरु भूसुर समाज सों मिलन चले,
जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं॥ १॥
नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं।
असन बसन बास कै सुपास सब विधि,
पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं॥ २॥
विनय बड़ाई ऋपि-राजऊ परसपर
करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं।
देखे राम लखन निमेषै थिथकित भई,
प्रानहुँ ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं॥ ३॥
ब्रह्मानंद हृदय, दरस-सुख लोयननि
अनुभए उभय, सरस राम जाने हैं।
तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि
मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं॥ ४॥ ५६॥

५६—४—सरस = बढ़कर।

राग मलार

कोसलराय के कुअँरोटा।
राजत रुचिर जनक-पुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा ॥ १ ॥
चौतनि सिरनि, कनक-कली काननि, कटि पट पीत सोहाए।
उर मनि-माल, विसाल विलोचन, सीय-स्वयंबर आए ॥ २ ॥
बरनि न जात, मनहिं मन भावत, सुभग अबहिं बय थोरी।
भई हैं मगन बिधुबदन बिलोकत बनिता चतुर चकोरी ॥ ३ ॥
कहँ सिवचाप लरिकवनि बूझत बिहँसि चितै तिरछौंहैं।
तुलसी गलिन भीर, दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं ॥ ४ ॥ ६० ॥

ये अवधेस के सुत दोऊ।
चढ़ि मंदिरनि बिलोकत सादर जनकनगर सब कोऊ ॥१॥
स्याम गौर सुंदर किसोरतनु, तून-बान-धनुधारी।
कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज बिसाल, बलभारी ॥ २ ॥
मुखमयंक, सरसीरुह-लोचन, तिलक भाल टेढ़ी भौंहैं।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौं हैं ॥ ३ ॥
बिस्वामित्र हेतु पठए नृप, इनहिं ताड़का मारी।
मख राख्यो रिपु जीति जान जग, मग मुनिबधू उधारी ॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नयननि अयन दए।
तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भए ॥ ५ ॥ ६१ ॥

राग टोड़ी

बूझत जनक 'नाथ ढोटा दोउ काके हैं'?
तरुन तमाल-चारु-चंपक-बरन-तनु,
कौने बड़े भागी के सुकृत परिपाके हैं ॥ १ ॥
सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए,

६१—गौं = ढब, चाल। जनक समान = विदेह। विपाके = देवाक् किया, छोड़ा।

ठग के से लाड़ू खाए, प्रेम-मधु छाके हैं।
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं,
भे सनेह-विवस विदेहता विवाके हैं ॥ २ ॥
सील-सुधा के अगार, सुखमा के पारावार,
पावत न पैरि पार पैरि पैरि थाके हैं।
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे,
एक रसरूप चित सकल सभा के हैं ॥ ३ ॥
जिय जिय जोरत सगाई राम लषन सों
आपने आपने भाय जैसे भाय जाके हैं।
प्रीति को, प्रतीति को, सुमिरिवे को,
सेइवे को, सरन को समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥४॥६२॥

ए कौन, कहाँ तें आए?
नील-पीत-पाथोज-बरन, मन-हरन सुभाय सुहाए ॥ १ ॥
मुनिसुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
रूप-जलधि के रतन सुछवि तिय लोचन ललित ललाए ॥ २ ॥
किधौं रवि-सुवन, मदन, ऋतुपति, किधौं हरि हर बेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत-सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए ॥ ३ ॥
भए बिदेह बिदेह नेहबस देहदसा बिसराए।
पुलक गात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए ॥ ४ ॥
जनक-बचन मृदु मंजु मधु-भरे भगति कौसिकहि भाए।
तुलसी अति आनंद उमँगि उर राम लषन गुन गाए ॥५॥६३॥

कौसिक कृपाल हू को पुलकित तनु भो।
उमँगत अनुराग, सभा के सराहे भाग,
देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो ॥ १ ॥
प्रीति के न पातकी, दिएहूँ साप पाप बड़ो,
मख-मिस मेरो तब अवध-गवनु भो।

प्रानहूँ ते प्यारे सुत माँगे दिए दसरथ,
सत्यसिंधु-सोच सहे, सुनो सो भवनु भो ॥ २ ॥
काकसिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर
बालक-बिनोद जातुधाननि सों रनु भो।
बूझत बिदेह अनुराग-आचरज-बस,
ऋषिराज-जाग भयो महाराज अनुभो ॥ ३ ॥
भूमिदेव नरदेव सचिव परसपर
कहत हमहिं सुरतरु सिवधनु भो।
सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति,
भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो ॥ ४ ॥ ६४ ॥

चारयो भले बेटा देव दसरथ राय के।
जैसे राम-लषन भरत-रिपुहन तैसे,
सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के ॥ १ ॥
ताड़का सँहारि मख राखे, नीके पाले व्रत,
कोटि कोटि भट किए एक एक घाय के।
एक बान बेगही उड़ाने जातुधान जात,
सूखि गए गात हैं पतौआ भए बाय के ॥२॥
सिलाछोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह,
गुन पेखे पारस के पंकरुह पाय के।
राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भए,
रावरेहु सतानंद पूत भये माय के ॥ ३ ॥
प्रेम-परिहास-पोख-वचन परसपर
कहत सुनत सुख सबही सुभाय के।

६४—प्रीति के न पातकी = यज्ञ में विघ्न करनेवाले पातकी राक्षस प्रीति के पात्र नहीं थे।

तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनक जू के,
विधि के सुढर होत सुढर सुदाय के ॥४॥६५॥

ए दोऊ दसरथ के बारे।
नाम राम घनस्याम, लषन लघु नखसिख अँग उजियारे ॥ १ ॥
निज हित लागि माँगि आने मैं धर्मसेतु-रखवारे।
धीर बीर बिरुदैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥ २ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का, किए सुर साधु सुखारे।
जज्ञ राखि जग साखि, तोपि ऋषि, निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥
मुनितिय तारि स्वयंबर पेखन आए सुनि बचन तिहारे।
एउ देखि हैं पिनाकु नेकु जेहि नृपति लाज-ज्वर जारे ॥ ४ ॥
सुनि सानंद सराहि सपरिजन बारहिं बार तिहारे।
पूजि सप्रेम प्रसंसि कौसिकहि भूपति सदन सिधारे ॥ ५ ॥
सोचत सत्य-सनेह-बिबस निसि नृपहिं गनत गए तारे।
पठए बोलि भोर गुरु के सँग रंगभूमि पगु धारे ॥ ६ ॥
नगर लोग सुधि पाइ मुदित सबही सब काज बिसारे।
मनहुँ मघा-जल उमगि उदधि-रुख चले नदी नद नारे ॥ ७ ॥
ए किसोर, धनु घोर बहुत, बिलखात बिलोकनिहारे।
टरयो न चाप तिन्हते जिन्ह सुभटनि कौतुक कुधर उखारे ॥ ८ ॥
ए जाने बिनु जनक जानियत करि पन भूप हँकारे।
नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे ॥ ९ ॥
सुखमा सील सनेह सानि मनो रूप बिरंचि सँवारे।
रोम रोम पर सोम काम सत कोटि वारि फेरि डारे ॥ १० ॥
कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितए नहिं जात, भिया रे!
छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस-दिया रे ॥ ११ ॥

६६—भिया रे = भैया रे।

एक कहैं कछु होउ सुफल भए जीवन जनम हमारे ।
अवलोके भरि नयन आजु तुलसी के प्रानपियारे ॥ १२ ॥ ६६ ॥

जनक विलोकि धार बार रघुबर को ।
मुनिपद सीस नाय आयसु असीस पाई,
एई बातैं कहत गवन कियो घर को ॥ १ ॥
नींद न परति राति, प्रेम पन एक भाँति,
सोचत सकोचत विरंचि हरि हर को ।
तुम्हते सुगम सब देव देखिबे को अब,
जस हंस किए जोगवत जुग पर को ॥ २ ॥
ल्याये संग कौसिक, सुनाए कहि गुनगन,
आए देखि दिनकर-कुल-दिनकर को ।
तुलसी तेऊ सनेह को सुभाउ बाउ मानो
चलदल को सो पात करैं चित चर को ॥ ३ ॥ ६७ ॥

राग केदारा

रंग-भूमि भोरेही जाइकै ।
राम लषन लखि लोग लूटिहैं लोचन-लाभ अघाइकै ॥ १ ॥
भूप-भवन घर घर, पुर बाहर इहै चरचा रही छाइकै ।
मगन मनोरथ मोद नारि नर प्रेम-विवस उठैं गाइकै ॥ २ ॥
सोचत विधि-गति समुझि परसपर कहत बचन बिलखाइकै ।
कुँवर किसोर कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै ॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि मनाइ पितर सुर सीस ईसपद नाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइकै ॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुई सगुन, सुभ बूझत गनक बोलाइकै ।
सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीरजहि धाइकै ॥ ५ ॥
कौसिक-कथा एक एकनि सों कहत प्रभाउ जनाइकै ।

६७—चलदल = पीपल का वृक्ष ।

सीय-राम-संजोग जानियत रच्यो विरंचि बनाइकै ॥ ६ ॥
एक सराहि सुबाहु-मथन वर बाहु उछाह बढ़ाइकै।
सानुज राज-समाज विराजहिं राम पिनाक चढ़ाइकै ॥ ७ ॥
बड़ी सभा, बड़ो लाहु, बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइकै।
को सोहिहै औार को लायक रघुनायकहि विहायकै ?॥ ८ ॥
गवनिहैं गँवहिं गवाँइ गरब गृह नृपकुल बलहि लजाइकै।
भली भाँति साहब तुलसी के चलिहैं ब्याहि बजाइकै ॥ ९ ॥ ६८ ॥

राग टोड़ी

भोर फूल बीनबे को गए फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपवीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं ॥ १ ॥
रूप के अगार भूप के कुमार सुकुमार;
गुरु के प्रानअधार संग सेवकाई हैं।
नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,
कौसिक से कोही बस किये दुहुँ भाई हैं ॥ २ ॥
सखिन सहित तेहि औसर बिधि के संजोग
गिरिजा जू पूजिबे को जानकी जू आई हैं।
निरखि लषन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहनी मूड़ नाई हैं ॥ ३ ॥
राघौजू-श्रीजानकी-लोचन मिलिबे को मोद
कहिबे को जोगु न, मैं बातैं सी बनाई हैं।
स्वामी सीय सखिन्ह लखन तुलसी को तैसो
तैसो मन भयो जाकी जैसियै सगाई हैं ॥ ४ ॥ ६९ ॥

६८—कनसुई लेना — गोबर की गौर चलनी में रखकर स्त्रियाँ पृथ्वी पर फेंकती हैं। यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन और उल्टी या आड़ी गिरती है तो अपसगुन मानती हैं।

पूजि पारवती भले भाय पाँय परिकै।
सजल सुलोचन सिथिल तनु पुलकित,
आवै न बचन मनु रह्यो प्रेम भरिकै ॥ १ ॥
अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,
कही चाहौं बात, मातु, अंत तौ हौं लरिकै।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो वरु बरिकै ॥ २ ॥
राम कामतरु पाइ बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ
माँग कोपि तोपि पोपि फैलि फूलि फरिकै।
रहैागी कहैागी तब साँची कही अंबा सिय
गहे पाँय द्वै उठाय माथे हाथ धरिकै ॥ ३ ॥
मुदित असीस सुनि सीस नाइ पुनि पुनि
बिदा भई देवी सों जननि डर डरिकै।
हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत,
गवनी भवन तुलसीस हियो हरिकै ॥ ४ ॥ ७२ ॥

रंगभूमि आए दसरथ के किसोर हैं।
पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि,
बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं ॥ १ ॥
नील-पीत-नीरज-कनक-मरकत-घन-
दामिनि-बरन तनु रूप के निचोर हैं।
सहज सलोने राम लषन ललित नाम
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं ॥ २ ॥
चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीके कै निषंग कसे, कर कमलनि लसै
बान बिसिपासन मनोहर कठोर हैं ॥ ३ ॥

कानिनि कनकफूल, उपवीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं ।
राजिव-नयन बिधुवदन टिपारे सिर,
नख सिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं ॥ ४ ॥
सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं ।
अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं ॥ ५ ॥
भाई सों कहत बात कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर से बोलत थोर थोर हैं ।
सनमुख सबहि बिलोकत सबहि नीके,
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं ॥ ६ ॥ ७१ ॥

एई राम लषन जे मुनि सँग आए हैं ।
चौतनी चोलना काछे, सखि ! सोहैं आगे पाछे,
आछे हुते आछे आछे आछे भाय भाए हैं ॥ १ ॥
साँवरे गोरे सरीर, महाबाहु, महाबीर,
कटि तून तीर धरे, धनुष सुहाए हैं ।
देखत कोमल कल, अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदंड-कला कलित सिखाए हैं ॥ २ ॥
इन्हहीं ताड़का मारी, गौतम की तिय तारी,
भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं ।
ऋषि-मख रखवारे दसरथ के दुलारे,
रंगभूमि पगुधारे, जनक बुलाए हैं ॥ ३ ॥
इन्हके बिमल गुन गनत पुलकि तनु
सतानंद कौसिक नरेसहि सुनाए हैं ।

७१—पेखनो = तमाशा ।

प्रभुपद मन दिए सो समाज चित्त किए
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाए हैं ॥ ४ ॥ ७२ ॥

राग कान्हरा

सीय स्वयंवरु, माई, दोउ भाई आए देखन।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन,
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन ॥
निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सों,
'भूरि भाग हम धन्य, आलि! ए दिन, ए खन।'
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब,
सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन ॥ ७३ ॥

राग गौरी

राम लषन जब दृष्टि परे, री!
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो विधि विविध विदेह करे, री ॥१॥
धनुषजज्ञ कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे, री।
छबि सुरसभा मनहुँ मनसिज के कलित कलपतरु रूख फरे, री ॥२॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भले पैंत पासे सुढर ढरे, री ॥३॥७४॥

नेकु! सुमुखि, चित लाइ चितौ, री।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौ, री ॥१॥
नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर-रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल-कल-कलस रितौ, री ॥२॥
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ, री ॥३॥७५॥

राग सारंग

जबतें राम लषन चितए, री।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥ १ ॥

प्रेम-बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए, री।
कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥२॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग आए इत ए, री।
कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति किसोर कित ए, री ॥३॥
बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रित ए, री॥
तुलसिदास ते धन्य जनम जन मन क्रम बच जिन्हके हित ए, री ॥४॥७६॥

सुनु सखि भूपति भलोइ कियो, री।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुँवर दोउ नगर-लोग अवलोकि जियो, री ॥१॥
मानि प्रतीति कत मेरे तैं कत सँदेह-बस-करति हियो, री।
तौलौं है यह संभु सरासन श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री ॥ २ ॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी औ रामहिं ऐसो रूप दियो, री।
तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो, री ॥३॥७७॥

अनुकूल नृपहि सूलपानि हैं।
नीलकंठ कारुन्यसिंधु हर दीनबंधु दिनदानि हैं ॥ १ ॥
जो पहिलेही पिनाक जनक कहँ गए सौंपि जिय जानि हैं।
बहुरि त्रिलोचन लोचन के फल सबहि सुलभ किए आनि हैं ॥२॥
सुनियत भव-भावते राम हैं, सिय भावती-भवानि हैं।
परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानि हैं ॥ ३ ॥
भए बिलोकि बिदेह नेहबस बालक बिनु पहिचानि हैं।
होत हरे होने बिरवनि दल सुमति कहति अनुमानि हैं ॥ ४ ॥
देखियत भूप भोर के से उडुगन, गरत गरीब गलानि हैं।
तेज प्रताप बढ़त कुँवरन को जदपि सँकोची बानि हैं ॥ ५ ॥
बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं।
अवसि राम राजीव-बिलोचन संभु सरासन भानिहैं ॥ ६ ॥

७७–सियो = सज्यो, उत्पन्न किया।

देखिहैं ब्याह-उछाह नारि-नर सकल-सुमंगल-खानि हैं।
भूरि भाग तुलसी तेऊ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं॥ ७॥७८॥

राग केदारा

रामहिं नीके कै निरखि, सुनैनी!
मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी॥ १॥
बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भइ सीय सुमंगल-ऐनी।
जा कारन लोचन-गोचर भइ मूरति सब-सुखदैनी॥ २॥
कुलगुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी।
तुलसी सिथिल देह सुधि बुधि करि सहज-सनेह-बिपैनी॥३॥७९॥

मिलो बरु सुंदर सुंदरि सीतहि लायकु,
साँवरो सुभग, सोभा हूँ को परम सिँगारु।
मनहूँ को मन मोहै, उपमा को को है?
सोहै सुखमासागर-संग अनुज राजकुमारु॥ १॥
ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननि को फल कैधौं, सिय को सुकृत-सारु।
सरद-सुधा-सदन-छबिहि निंदै बदन,
अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु॥ २॥
जनक-मन की रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसीऔ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु।
तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,
'पन औ कुँवर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु'॥ ३॥ ८०॥

देखि देखि री! दोउ राजसुवन।
गौर स्याम सलोने लोने, लोने लोयननि,
जिन्हकी सोभा तेँ सोहै सकल भुवन॥ १॥
इन्हहीं ताड़का मारी, मग मुनि-तिय तारी,

८०—तारु = तौल।

ऋषिमख राख्यो, रन दले हैं दुवन।
तुलसी प्रभु को अब जनकनगर-नभ
सुजस-विमल-बिधु चहत उवन ॥ २ ॥ ८१ ॥

राग टोड़ी

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै।
आपने आपने थल, आपने आपने साज,
आपनी आपनी वर बानिक बनाइ कै ॥ १ ॥
कौसिक सहित राम, लपन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठए बुलाइकै।
दरसलालसा-बस लोग चले भाय भले
बिकसत-मुख निकसत धाइ धाइ कै ॥ २ ॥
सानुज सानंद हिये आगे ह्वै जनक लिए,
रचना रुचिर सब सादर देखाइ कै।
दिये दिव्य आसन सुपास सावकास अति,
आछे आछे बीछे बीछे बिछौना बिछाइ कै ॥ ३ ॥
भूपति-किसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ,
देखिवे को दाउँ, देखौ देखिवो बिहाइ कै।
उदय-सैल सोहैं सुंदर कुँवर, जोहैं,
मानो भानु भोर भूरि किरनि छिपाइ कै ॥ ४ ॥
कौतुक कोलाहल निसान गान पुर नभ,
बरषत सुमन बिमान रहे छाइ कै।
हित अनहित, रत बिरत विलोकि बाल,
प्रेम-मोद-मगन जनम-फल पाइ कै ॥ ५ ॥
राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ,
सतानंद ल्याए सिय सिविका चढ़ाइ कै।
रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि,

बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै ॥ ६ ॥
हानि लाहु अनख उछाहु, बाहुबल कहि
बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै ।
दीप दीप के महीप आए सुनि पैज पन,
कीजै पुरुषारथ को अवसर भो आइ कै ॥ ७ ॥
आनाकानी, कंठ, हँसी मुँहा-चाही होन लगी,
देखि दसा कहत बिदेह बिलखाइ कै ।
धरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज,
पूजि पूजि धनु कीजै बिजय बजाइ कै ॥ ८ ॥
जनक-बचन छुए बिरवा लजारू के से
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै ।
तुलसी लखन माषे, रोषे, राखे रामरुख,
भाषे मृदु परुष सुभायन रिसाइ कै ॥ ९ ॥ ८२ ॥
भूपति बिदेह कही नीकियै जो भई है ।
बड़े ही समाज आजु राजनि की लाज-पति
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है ॥ १ ॥
मेरो अनुचित न कहत लरिकाई-बस,
पन-परमिति और भाँति सुनि गई है ।
नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाय चाप
देतो पै देखाइ बल, फल पापमई है ॥ २ ॥
भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के,
बिधि बिरचे प्रभाउ जाको जग-जई है ।
बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम,
सोहत सकोच सील नेह नारि नई है ॥ ३ ॥
सहमी सभा सकल, जनक भए बिकल,
राम लखि कौसिक असीस आज्ञा दई है ।

तुलसी सुभाय गुरुपाँय लागि रघुराज
ऋपिराज की रजाइ माथे मानि लई है ॥ ४ ॥ ८३ ॥
सोचत जनक पोच पेच परि गई है।
जोरि कर-कमल निहोरि कहैं कौसिक सों,
'आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है ॥ १ ॥
बान जातुधानपति भूप दीप सातहूँ के,
लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।
जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु
आए बिधि हरि हारि सोई हाल भई है ॥ २ ॥
आपुही बिचारिए निहारिए सभा की गति,
वेद-मरजाद मानी हेतुबाद हई है।
इन्हके जितैहैं मन, सोभा अधिकानी तन,
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है ॥ ३ ॥
रावरो भरोसो बल, कै है कोऊ कियो छल,
कैधों कुल को प्रभाव, कैधों लरिकई है ?।
कन्या, कल-कीरति, बिजय बिस्व की बटोरि
कैधों करतार इन्हहीं को निरमई है ॥ ४ ॥
मन को न मोह, न बिसेप चिंता सीता हू की,
लुनिहै पै सोई सोई जोई जेहि बई है।
रहै रघुनाथ की निकाई नीकी नीके नाथ,

८३—नारि नई है = नार या गरदन नीची हुई है।
८४—जोतिलिंग = शैव पुराणों में कथा है कि जब शिव का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ तब ब्रह्मा और विष्णु उस पर घूमते ही रह गए किसी को उसका अंत न मिला। हेतुवाद = तर्क शास्त्र।

हाथ सों तिहारे करतूति जाकी नई है' ॥ ५ ॥
कहि 'साधु साधु' गाधि-सुवन सराहे राव,
'महाराज ! जानि जिय ठीक भली दई है'। ।
हरषे लषन, हरषाने बिलषाने लोग,
तुलसी मुदित जाको राजाराम जई है ॥ ६ ॥ ८४ ॥

सुजन सराहैं जो जनक बात कही है।
रामहि सोहानी जानि, मुनिमन-भानी सुनि
नीच महिपावली दहन बिनु दही है ॥ १ ॥
कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों,
नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है।
देखे सुने भूपति अनेक झूँठे झूँठे नाम,
साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है ॥ २ ॥
रागउ विराग, भोग जोग जोगवत मन,
जोगी जागबलिक-प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि तें, न सीरे सुधाकरहू तें,
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ॥ ३ ॥
ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस
बिकल बिलोकियत दुचितई सही है।
कामधेनु-कृपा हुलसानी तुलसीस उर,
पन-सिसु हेरि, मरजाद बाँधी रही है॥४॥८५॥

ऋषिराज राजा आजु जनक समान को ?।
आपु यहि भाँति प्रीति सहित सराहित,
रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को ? ॥ १ ॥
भूमि भोग करत अनुभवत जोग-सुख,
मुनि-मन-अगम अलख गति जान को ?
गुरु हर-पद-नेहु गेह बसि भो बिदेह,

अगुन-सगुन-प्रभु-भजन-सयान को ? ॥ २ ॥
कहनि रहनि एक, विरति विवेक नीति,
वेद-बुध-संमत पथी न निरवान को ? ।
गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की,
छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को ॥ ३ ॥
सुनि रघुवीर की बचन-रचना की रीति
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को ।
मिट्यो महा मोह जी को, छूट्यो पोच सोच सी को,
जान्यो अवतार भयो पुरुष-पुरान को ॥ ४ ॥
सभा नृप गुरु, नर-नारि पुर, नभ सुर,
सब चितवत मुख करुनानिधान को ।
एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस,
तुलसीस तोरिए सरासन इसान को ॥ ५ ॥८६॥

राग मारू ।

सुनो भैया भूप सकल दै कान ।
बज्ररेख गजदसन जनक-पन वेद-विदित, जग जान ॥ १ ॥
घोर कठोर पुरारि-सरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु ।
जो दसकंठ दियो बाँवौं, जेहि हर-गिरि कियो है मनाकु ॥ २ ॥
भूमि-भाल भ्राजत न चलत सो ज्यों विरंचि को आँकु ।
धनु तोरै सोई बरै जानकी राउ होइ की राँकु ॥ ३ ॥
सुनि आमरषि उठे अवनीपति, लगे बचन जनु तीर ।
टरै न चाप, करैं अपनी सी महा महा बलधीर ॥ ४ ॥
नमित-सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर ।
बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर ॥ ५ ॥
सप्त दीप नव खंड भूमि के भूपति वृंद जुरे ।
बड़ो लाभ कन्या कीरति को जहँ तहँ महिप मुरे ॥ ६ ॥

Ramayan

डग्यौ न धनु, जनु बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे ।
रोपे लषन बिकट भृकुटी करि, भुज अरु अधर फुरे ॥ ७ ॥
सुनहु भानुकुल-कमल-भानु ! जो अब अनुसासन पावौं ।
का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं ॥ ८ ॥
देखौ निज किंकर को कौतुक क्यों कोदंड चढ़ावौं ।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुग कहावौं ॥ ९ ॥
हरषे पुर-नर-नारि सचिव नृप कुँवर कहे बर बैन ।
मृदु मुसकाइ राम बरज्यौ प्रिय बंधु नयन की सैन ॥ १० ॥
कौसिक कह्यौ उठहु रघुनंदन जगबंदन बलएन ।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यौं निज भगतनि सुखदैन ॥११॥८७॥

जबहिं सब नृपति निरास भए ।
गुरुपद-कमल बंदि रघुपति तब चाप-समीप गए ॥ १ ॥
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु-उर भुज नयन बिसाल ।
पीत बसन कटि कलित कंठ सुंदर सिंधुर-मनि-माल ॥ २ ॥
कल कुंडल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल ।
कोटि-मदन-छबि-सदन बदन-बिधु, तिलक मनोहर भाल ॥ ३ ॥
रूप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राजसमाज ।
लषन कह्यो थिर होहु धरनिधरु धरनि, धरनिधर आज ॥ ४ ॥
कमठ कोल दिग-दंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज ।
चहत चपरि सिव-चाप चढ़ावन दसरथ को जुवराज ॥ ५ ॥
गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो ।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ॥ ६ ॥
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो ।
भंज्यौ भृगुपति-गर्व सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥ ७ ॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान ।
चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान ॥ ८ ॥

सावधान ह्वै चढ़े विमाननि चले बजाइ निसान ।
उमगि चल्यौ आनंद नगर, नभ जयधुनि मंगलगान ॥ ९ ॥
विप्र-बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ ।
कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाइ ॥ १० ॥
बरषहि सुमन असीसहिं सुर मुनि, प्रेम न हृदय समाइ ।
सीय राम की सुंदरता पर तुलसिदास बलि जाइ ॥ ११ ॥८८॥

राग मलार

जब दोउ दसरथ कुँवर बिलोके ।
जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके ॥ १ ॥
बय किसोर घन-तड़ित-बरन तनु नखसिख अंग लोभारे ।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित विधि निज हाथ सँवारे ॥ २ ॥
संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए ।
उठे राम रघुकुल-कल-केहरि गुरु अनुसासन पाए ॥ ३ ॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई ।
तुलसिदास कीरति रघुपति की मुनिन्ह तिहूँ पुर गाई ॥ ४ ॥८९॥

राग टोड़ी

मुनि-पदरेनु रघुनाथ माथे धरी है ।
रामरुख निरखि, लषन की रजाइ पाइ,
धरा धरा-धरनि सुसावधान करी है ॥ १ ॥
सुमिरि गनेस गुरु गौरि हर भूमिसुर
सोचत सकोचत सकोची बानि धरी है ।
दीनबंधु, कृपासिंधु, साहसिक, सीलसिंधु,
सभा को सकोच, कुलहू की लाज परी है ॥ २ ॥
पेषि पुरुषारथ परखि पन, पेम नेम,
सिय-हिय की बिसेषि बड़ी खरभरी है ।

८९—लोभारे = लुभावने ।

दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु,
महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है ॥ ३ ॥
सुर हरषत बरषत फूल बार बार,
सिद्धि मुनि कहत सगुन सुभ घरी है।
रामबाहु-विटप बिसाल बौंड़ी देखियत,
जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है ॥ ४ ॥
लख्यौ न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू,
घोर धुनि सुनि सिव की समाधि टरी है।
प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख,
एक ही सुलाभ सबही की हानि हरी है ॥ ५ ॥ ९० ॥

राग सारंग

राम कामरिपु-चाप चढ़ायो।
मुनिहिं पुलक, आनंद नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥ १ ॥
जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहि बिषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यौ जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥ २ ॥
पहिराई जयमाल जानकी जुवतिन्ह मंगल गायो।
तुलसी सुमन बरपि हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥ ३ ॥ ९१ ॥

राग टोड़ी

जनक मुदित मन टूटत पिनाक के।
बाजे हैं बधावने सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एकरस रानी राजा राँक के ॥ १ ॥
दुंदुभी बजाइ, गाइ हरषि, बरषि फूल,
सुरगन नाचैं नाच नायकहू नाक के।
तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून से मनो मिटाए आँक के ॥ २ ॥ ९२ ॥

९०—जरी = जड़ी।

लाज तोरि, साजि साज राजा राढ़ रोपे हैं ।
कहा भो चढ़ाए चाप, व्याह ह्वैहै बड़े खाए,
बोलैं खोलैं सेल असि चमकत चोखे हैं ॥ १ ॥
जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लषन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं ।
कुलहि लजावैं बाल, बालिस बजावैं गाल,
कैधौं कूर कालबस तमकि त्रिदोषे हैं ॥ २ ॥
कुँवर चढाईं भौंहैं, अब को बिलोकै सोहैं,
जहँ तहँ भे अचेत, खेत के से धोखे हैं ।
देखे नर-नारि कहैं, साग खाइ जाए माइ,
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं ॥ ३ ॥
प्रमुदित-मन लोक-कोकनद-कोकगन,
राम के प्रताप-रबि सोच-सर सोखे हैं ।
तब के देखैया तोषे, सब के लोगनि भले,
अब के सुनैया साधु तुलसिहुँ तोषे हैं ॥ ४ ॥ ९३ ॥

जयमाल जानकी जलजकर लई है ।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु,
मानहुँ मदनमाली आपु निरमई है ॥ १ ॥
राज-रुख लखि गुरु भूसुर सुआसिनिन्हि
समय समाज की ठवनि भली ठई है ।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोयन सनेह सरसई है ॥ २ ॥
हनि देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल,

९३—बड़े खाए=(मुहा०) बड़ी कठिनता से । धोखे = खेत में पशु पक्षियों को डराने के लिए खड़ा किया हुआ चीथड़ों का पुतला । पीना = तिल की खली अर्थात् निःसार भोजन ।

सफल मनोरथ भो, सुख सुचितई है।
पुरजन परिजन रानी राउ प्रमुदित,
मनसा अनूप राम-रूप-रंग रई है ॥ ३ ॥
सतानंद सिष सुनि पाँय परि पहिराई
माल सिय पिय-हिय, सोहत सो भई है।
मानस तें निकसि बिसाल सु तमाल पर
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है ॥ ४ ॥
हितनि के लाह की, उछाह की, बिनोद मोद
सोभा की अवधि नहिं, अब अधिकई है।
याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी,
गति, कहे प्रगट खुनिस खासी खई है ॥ ५ ॥
निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-मई,
मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है।
छबि तेहि काल की कृपालु सीतादूलह की
हुलसति हिए तुलसी के नित नई है ॥ ६ ॥ ८४ ॥

राग केदारा

लेहु री लोचननि को लाहु।
कुँवर सुंदर साँवरो, सखि सुमुखि ! सादर चाहु ॥ १ ॥
खंडि हर-कोदंड ठाढ़े, जानु-लंबित बाहु।
रुचिर उर जयमाल राजति, देत सुख सब काहु ॥ २ ॥
चितै चित हित-सहित नखसिख अंग-अंग-निबाहु।
सुकृत निज, सियरामरूप, बिरंचि-मतिहि सराहु ॥ ३ ॥
मुदित मन बरबदन-सोभा उदित अधिक उछाहु।
मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूचो राहु ॥ ४ ॥

१४—खई = झगड़ा लड़ाई।
१२—सूचो = सूदन किया, नाश किया।

नयन सुखमा-अयन हरत सरोज-सुंदरताहु।
बसत तुलसीदास-उरपुर जानकी को नाहु ॥ ५ ॥ ९५ ॥

राग सारंग

भूप के भाग की अधिकाई।
टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यौ, बिधि सब बात बनाई ॥ १ ॥
तब तेँ दिन दिन उदय जनक को जब तेँ जानकी जाई।
अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन, त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥ २ ॥
बारहि बार पहुनई ऐहैं राम लषन दोउ भाई।
एहि आनंद मगन पुरबासिन्ह देहदसा बिसराई ॥ ३ ॥
सादर सकल बिलोकत रामहिं काम-कोटि-छबि छाई।
यह सुखसमउ समाज एक मुख क्यों तुलसी कहै गाई ? ॥ ४ ॥ ९६ ॥

राग सोरठ

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत, स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे ? ॥ १ ॥
को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ? ॥ २ ॥
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन, मख रखवारी ॥ ३ ॥
सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छ-धर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वैहै दिन सोऊ ? ॥ ४ ॥ ९७ ॥

ऋषि नृप-सीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी ॥ १ ॥
सिरिस-सुमन-सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहिं सहाय पयादेहि केलि-बान-धनुधारी ॥ २ ॥
अति सनेह कातरि माता कहै, सुनि सखि ! बचन दुखारी।
बादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि-जाति-गति भारी ॥ ३ ॥

जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनिमख-रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहिं लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी ॥ ४ ॥ ९८ ॥

जब तें लै मुनि संग सिधाए।
राम लखन के समाचार, सखि! तब तें कछुअ न पाए ॥ १ ॥
बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं।
सर सरिता जलपान, सिसुन के संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परम कृपालु परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहिं, आली! ॥ ३ ॥
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह-बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल-बानी ॥ ४ ॥ ९९ ॥

सानुज भरत भवन उठि धाए।
पितु-समीप सब समाचार सुनि मुदित मातु पहँ आए ॥ १ ॥
सजल नयन, तनु पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिए लाइ हृदय 'बलि' कहौ कछु है सुधि पाई? ॥ २ ॥
सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए।
खेम कुसल रघुबीर-लषन की ललित पत्रिका ल्याए ॥ ३ ॥
दलि ताड़ुका, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी।
दै बिद्या, लै गए जनकपुर, हैं गुरु संग सुखारी ॥ ४ ॥
करि पिनाक-पन, सुता-सयंबर सजि, नृप-कटक बटोरयो।
राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोरयो ॥ ५ ॥
यों कहि सिथिल सनेह बंधु दोउ अंब अंक भरि लीन्हें।
बार बार मुख चूमि, चारु मनि बसन निछावरि कीन्हें ॥ ६ ॥
सुनत सुहावनि चाह अवध घर घर आनंद बधाई।
तुलसिदास रनिवास रहस-बस, सखी सुमंगल गाई ॥ ७ ॥ १०० ॥

९८—नेव = नायब, मंत्री। अवरेब = टेढ़ी स्थिति, कठिनाई।
१००—चाह = खबर।

राग कान्हरा

राम लषन सुधि आई बाजै अवध बधाई ।
ललित लगन लिखि पत्रिका,
उपरोहित के कर जनक-जनेस पठाई ॥ १ ॥
कन्या भूप विदेह की रूप की अधिकाई ।
तासु स्वयंबर सुनि सब आए
देस देस के नृप चतुरंग बनाई ॥ २ ॥
पन पिनाक, पवि मेरु तें गुरुता कठिनाई ।
लोकपाल महिपाल बान बानइत,
दसानन सके न चाप चढ़ाई ॥ ३ ॥
तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई ।
भंजि सरासन संभु को जग जय कल कीरति,
तिय तियमनि सिय पाई ॥ ४ ॥
पुर घर घर आनंद महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मंगल सजैं, कहैं मुनि
प्रसाद भए सकल सुमंगल, माई ॥ ५ ॥
गुरु आयसु मंडप रच्यो सब साज सजाई ।
तुलसिदास दसरथ बरात सजि,
पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥ ६ ॥ १०१ ॥

राग केदारा

मन में मंजु मनोरथ हो, री ! ।
सो हर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक-कृपा चौगुनो भो, री ! ॥१॥
पन-परिताप, चाप-चिंता-निसि, सोच-सकोच-तिमिर नहिं थोरी ।
रविकुलरवि अवलोकि सभा-सर हितचित-बारिज-बन बिकसो री ॥२॥
कुंवर कुंवरि सब मंगलमूरति, नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी ।
राजसमाज भूरि-भागी जिन लोचन-लाहु लह्यो एक ठौरी ॥ ३ ॥

ब्याह-उछाह राम-सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो, री।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥४॥१०२॥

राजति राम जानकी जोरी।
स्याम-सरोज जलद-सुंदर बर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥ १ ॥
ब्याह-समय सोहति बितान तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ छबि सिंगार सोभा इक ठौरी ॥ २ ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥ ३ ॥
इत बसिष्ठ मुनि उतहिं सतानँद, बंस-बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिंधु हिलोरी।
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान निसान बेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री? ॥४॥
नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी।
तुलसी जेहि आनंद-मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री! ॥५॥१०३॥

दूलह राम, सीय दुलही री!।
घन-दामिनि-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥१॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥२॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय राम सँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥३॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥१०४॥

१०२—हो = था।

१०४—सिला = सीला, जो दाने खेत काटते समय खेत में गिर जाते हैं। लवनि = लवनी, अनाज की फसल का वह थोड़ा सा बोझ जो मज़दूरों को दिया जाता है।

जैसे ललित लषन लाल लोने ।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने ॥ १ ॥
सुखमासार सिँगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने ।
रूपप्रेम-परमिति न परत कहि, थिथकि रही मति मौनै ॥ २ ॥
सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह-गौने ।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने ॥३॥१०५॥

राग बिलावल

जानकी-बर सुंदर, माई ।
इंद्रनील-मनि-स्याम सुभग अँग अंग मनोजनि बहु छबि छाई ॥ १ ॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई ।
कंजदलनि पर मनहुँ भौम दस बैठे अचल सु-सदसि बनाई ॥ २ ॥
पीत जानु उर चारु जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सोहाई ।
पीतपराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥ ३ ॥
किंकिनि कनककंज-अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई ।
गई न ऊपर सभीत नमित-मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥४॥
नाभि गँभीर उदर रेखा वर, उर भृगु-चरन-चिह्न सुखदाई ।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥ ५ ॥
यज्ञोपवीत बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई ।
कंद-तड़ित बिच जनु सुरपति-धनु रुचिर बलाकपाँति चलि आई ॥६॥
कंबु कंठ, चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसनन की रुचिराई ?
पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥७॥
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छबि पाई ।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥ ८ ॥
भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई ।
निरखहिं नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई ॥ ९ ॥

१०६—कंद = बादल ।

सारद सेस संभु निसि बासर चिंतत रूप न हृदय समाई।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै यह छवि, निगम नेति कह गाई॥१०॥१०६॥

राग कान्हरा

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोरयौ कोमल कर-कमलनि संभु-सरासन भारी?॥१॥
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी?
मुनि-प्रसाद मेरे राम लषन की विधि बड़ि करवर टारी॥२॥
चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारी।
कहौ धौं तात! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी॥३॥
दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी॥४॥
उमँगि उमँगि आनंद बिलोकति बधुनसहित सुत चारी।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी॥५॥१०७॥

मुदित-मन आरती करै माता।
कनक बसन मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता॥१॥
पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता।
देहिं असीस 'ते बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता'॥२॥
रामसीय-छवि देखि जुवतिजन करहिं परसपर बाता।
अब जान्यो साँचहू सुनहु, सखि! कोबिद बड़ो बिधाता॥३॥
मंगल-गान निसान नगर नभ, आनँद कह्यो न जाता।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता॥४॥१०८॥

१०७—करवर = संकट, कठिनाई।

अयोध्या कांड

राग सोरठ

नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाहीं।
तुम्हरी कृपा असीस, नाथ ! मेरी सबै महेस निबाहीं ॥ १ ॥
राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह लालच मन माहीं।
बहुरि मोहिं जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं ॥ २ ॥
महाराज, भलो काज बिचारयो बेगि बिलंब न कीजै।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै ॥ ३ ॥
सुनत नगर आनँद बधावन, कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देवमायावस कठिन कुटिलता ठानी ॥ ४ ॥ १ ॥

राग गौरी

सुनहु राम मेरे प्रानपियारे।
बारौं सत्यबचन स्रुति-सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे।
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे ॥ २ ॥
रुचिर काँचमनि देखि मूढ़ ज्यों करतल ते चिंतामनि डारे।
मुनि-लोचन-चकोर, ससि-राघव, सिव-जीवनधन सोउ न बिचारे ॥ ३ ॥
जद्यपि नाथ तात ! मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहिं बिसारे।
तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति दीनबंधु दयालु मेरे बारे ॥ ४ ॥
अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि प्रभु कोमल-चित चलत न पारे।
तुलसिदास जो रहौं मातु-हित को भये टारे ? ॥ ५ ॥ २ ॥

रहि चलिए सुंदर

जो सुत तात -रत लायक ॥ १ ॥
बेद-बिदित रघुपति ।

राखहु निज मरजाद निगम की, हौं बलि जाउँ धरहु धनुसायक ॥ २ ॥
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक ।
यह दूसन विधि तोहिं होत अब रामचरन-वियोग-उपजायक ॥ ३ ॥
मातु-बचन सुनि स्रवत नयन जल, कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक ।
तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहिं महि आयक ॥४॥३॥

राग सोरठ

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं ॥ १ ॥
इहि आँगन विहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें ।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु विनोद तुम्ह कीन्हें ॥ २ ॥
जिन्ह स्रवनि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी ।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनति हौं, मो तें कौन अभागी ? ॥ ३ ॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन-बदनकमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥ ४ ॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥ ५ ॥ ४ ॥

राग बिलावल

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि !
सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि ॥ १ ॥
राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
दुसह बात बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ? ॥२॥
हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥३॥५

३—रघुनाथ-सिधायक = रघुनाथ के सिधारने का । नरतनुपायक = नरशरीर पाने का । महिआयक = पृथ्वी पर आने का ।

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग बिपिन हैं आवोंगी ।
गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोंगी ॥ १ ॥
थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावोंगी ।
नयन-चकोरनि मुखमयंक-छवि सादर पान करावोंगी ॥ २ ॥
जो हठि नाथ राखिहौ मोकहँ तौ सँग प्रान पठावोंगी ।
तुलसिदास प्रभु-बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन देखावोंगी ? ॥३॥६॥

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ? ।
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जोपै पिय परिहरयो राजु ॥ १ ॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद मूल फल अमिय नाजु ।
प्रभुपद कमल बिलोकिहौं छिनछिन, इहि तें अधिक कहा सुख-समाजु ? ॥२॥
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु ।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥३॥७॥

पिय निठुर बचन कहे कारन कवन ?
जानत हौ सब के मन की गति, मृदुचित, परमकृपालु, रवन ! ॥ १ ॥
प्राननाथ सुंदर सुजानमनि, दीनबंधु, जग-आरति-दवन ।
तुलसिदास प्रभु-पदसरोज तजि रहिहौं कहा करौंगी भवन ? ॥२॥८॥

मैं तुम्ह सों सतिभाव कही है ।
बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥१॥
जौ चलिहौ तो चलौ चलि कै बन, सुनि सिय मन अवलंब लही है ।
बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहुँ नाह बचनमिस बाँह गही है ॥ २ ॥
प्राननाथ के साथ चलीं उठि अवध सोकसरि उमँगि बही है ।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥३॥९॥

जबहिं रघुपति-संग सीय चली ।
बिकल-बियोग लोग पुरतिय कहैं अति अन्याउ, अली ॥ १ ॥
कोउ कहैं मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली ।
कोउ कहैं कुल-कुबेलि कैकेयी दुख [illegible] नि फली ॥ २ ॥

एक कहँ बन जोग जानकी ! बिधि बड़ बिषम बली ।
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥ ३ ॥ १० ॥

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे ।
उर धकधकी न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥१॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान-कृपान बीर सी छोरे ।
तात बिदा माँगिए मातु सौं, बनिहै बात उपाइ न औरे ॥ २ ॥
जाइ चरन गहि आयसु जाँचौ, जननि कहत बहुभाँति निहोरे ।
सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वै हौ तौ जानिहौं सही सुत मोरे ॥ ३ ॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे ।
तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित,
उड़्यो मानो बिहग बधिक भए भोरे ॥ ४ ॥ ११ ॥

राग सोरठ

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउँ जहाँ मोहिं मिलि लीजै ॥ १ ॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।
अजहुँ अवनि-बिदरत दरार मिस सो अवसर-सुधि कीन्हें ॥ २ ॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥ ३ ॥
तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह-बिषम-हिम पाई ॥ ४ ॥ १२ ॥

राग बिलावल

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि ।
जहाँ-गवन कियो कुँवर कोसलपति, बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि ॥१॥
प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि ।
करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥ २ ॥
तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरि ।

कानन कहाँ अवहिं, सुनु, सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि।३।१३।

फिरि फिरि राम सीयतनु हेरत ।
तृषित जानि जल लेन लषन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १ ॥
अवनि कुरंग, विहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत ।
मगन न डरत निरखि कर-कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥२॥
अवलोकत मग-लोग चहूँ दिसि मनहुँ चकोर चंद्रमहिं घेरत ।
ते जन भूरिभाग भूतल पर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत॥ ३ ॥ १४॥

नृपति-कुँवर राजत मग जात ।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन मरकत-कनकबरन मृदुगात ॥ १ ॥
अंसनि चाप, तून कटि मुनिपट, जटा मुकुट विच नूतन पात ॥
फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात ॥ २ ॥
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात ।
सुखमा निरखि ग्राम-वनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥३॥
अंग अंग अगनित अनंग-छवि उपमा कहत सुकवि सकुचात ।
सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात॥४॥१५॥

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुंदर दोऊ ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥ १ ॥
कर सर धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ ।
तापस वर बेष किए सोभा सब लूटि लिए,
चित के चोर बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥ २ ॥
दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ ।

१५—नवसात = सोलह शृंगार ।

तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ ३ ॥ १६ ॥

कुँवर साँवरो, री सजनी ! सुंदर सब अंग ।
रोम रोम छबि निहारि आलि वारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग ॥ १ ॥
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा कलाप,
सुचि सर कर, मुनिपट कटि-तट कसे निषंग ।
आयत उर बाहु नैन, मुख-सुखमा को लहै न
उपमा अवलोकि लोक, गिरामति-गति भंग ॥ २ ॥
यौं कहि भईं मगन बाल, बिथकीं सुनि जुवति-जाल,
चितवत चले जात संग मधुप मृग बिहंग ।
बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि,
तुलसीमन-वसन रँगे रुचिर रूपरंग ॥ ३ ॥ १७ ॥

राग कल्यान

देखु कोऊ परम सुंदर सखि ! बटोही ।
चलत महि मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन
भूपसुत, रूपनिधि निरखि हौं मोही ॥ १ ॥
अमल मरकत स्याम सीलसुखमाधाम,
गौरतनु सुभग सोभा सुमुखि जोही ।
जुगल बिच नारि सुकुमारि सुठि सुंदरी,
इंदिरा इंदु-हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥
करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर-सुखद, मर्दनअवनि-द्रोही ।
अंबुजायत नयन, बदन छबि बहु मयन,
चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥ ३ ॥
बचन प्रिय सुनि स्रवन राम करुनाभवन,

कानन कहाँ अबहिं, सुनु, सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ।३।१३

फिरि फिरि राम सीयतनु हेरत ।
तृषित जानि जल लेन लषन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १ ॥
अवनि कुरंग, विहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत ।
मगन न डरत निरखि कर-कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥२॥
अवलोकत मग-लोग चहूँ दिसि मनहुँ चकोर चंद्रमहिँ घेरत ।
ते जन भूरिभाग भूतल पर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत ॥ ३ ॥ १४ ॥

नृपति-कुँवर राजत मग जात ।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन मरकत-कनकबरन मृदुगात ॥ १ ॥
अंसनि चाप, तून कटि मुनिपट, जटा मुकुट बिच नूतन पात ॥
फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात ॥ २ ॥
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिनं भूषन नव-सात ।
सुखमा निरखि ग्राम-बनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥३॥
अंग अंग अगनित अनंग-छवि उपमा कहत सुकवि सकुचात ।
सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥४॥१५॥

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुंदर दोऊ ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥ १ ॥
कर सर धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ ।
तापस बर बेष किए सोभा सब लूटि लिए,
चित के चोर बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥ २ ॥
दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ ।

१५—नवसात = सोलह शृंगार ।

तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ ३ ॥ १६ ॥

कुँवर साँवरो, री सजनी ! सुंदर सब अंग ।
रोम रोम छवि निहारि आलि वारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग ॥ १ ॥
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा कलाप,
सुचि सर कर, मुनिपट कटि-तट कसे निषंग ।
आयत उर बाहु नैन, मुख-सुखमा को लहै न
उपमा अवलोकि लोक, गिरामति-गति भंग ॥ २ ॥
यौं कहि भई मगन बाल, बिथकीं सुनि जुवति-जाल,
चितवत चले जात संग मधुप मृग बिहंग ।
बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि,
तुलसीमन-बसन रँगे रुचिर रूपरंग ॥ ३ ॥ १७ ॥

राग कल्यान

देखु कोऊ परम सुंदर सखि ! बटोही ।
चलत महि मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन
भूपसुत, रूपनिधि निरखि हौं मोही ॥ १ ॥
अमल मरकत स्याम सीलसुखमाधाम,
गौरतनु सुभग सोभा सुमुखि जोही ।
जुगल बिच नारि सुकुमारि सुठि सुंदरी,
इंदिरा इंदु-हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥
करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर-सुखद, मर्दनअवनि-द्रोही ।
अंबुजायत नयन, बदन छबि बहु मयन,
चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥ ३ ॥
बचन प्रिय सुनि स्रवन राम करुनाभवन

चितए सब अधिक हित सहित कछु ओही ।
दास तुलसी नेह-बिबस बिसरो देह,
जान नहिं आपु तेहि काल धौं कोही ॥ ४ ॥ १८ ॥

राग केदारा

सखि ! नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुंदर बटोही ।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन-जोग,
बदन सोभासदन देखिहौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे गोरे किसोर, सुर मुनि चित्त-चोर,
उभय-अंतर एक नारि सोहो ।
मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति,
राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि,
सुनहि सुमुखि ! जनि बिकल होही ।
को जानै कौने सुकृत लह्यौ है लोचन-लाहु,
ताहि तें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही ।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी;
कौन जानै कहाँ तें आई, कौन की को ही ॥४॥१६॥

माई ! मन के मोहन जोहन-जोग जोही ।
थोरी ही बयस गोरे साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित, बिधुबदन बटोही ॥ १ ॥
सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमनजुत,
तैसिये लसति नव पल्लव खोही ।

१६—निज सहज बिछोही = अपना चंचल स्वभाव छोड़कर ।
२०—खोही = पत्तों का बना हुआ छाता ।

किए मुनि-वेष बीर, धरे धनु तून तीर,
सोहैं मग, को हैं लखि परैं न मोही ॥२॥
सोभा को साँचो सँवारि रूप जातरूप,
ढारि नारि बिरची बिरंचि संग सोही ।
राजत रुचिर तनु, सुंदर स्रम के कन,
चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही ? ॥ ३ ॥
सनेह-सिथिल सुनि बचन सकल सिया
चितई अधिक हित सहित ओही ।
तुलसी मनहुँ प्रभु कृपा की मूरति फिरि
हेरि कै हरपि हिये लियो है पोही ॥ ४ ॥ २० ॥

सखि ! सरद-बिमल-बिधुबदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी,
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहूँ त्रिभुवन-सोभा मनहुँ लूटी ।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥ २ ॥ २१ ॥

सोहैं साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी ।
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी,
बीती हैं बय किसोरी, जोवन होनी ॥ १ ॥
नीके कै निकाई देखि, जनम सफल लेखि,
हम सी भूरि-भागिनि नभ न छोनी ।
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,
सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी ॥ २ ॥ २२ ॥

पथिक गोरे साँवरे सुठि लोने ।
संग सुतिय जाके तनु तें लही है द्युति सोन सरोरुह सोने ॥ १ ॥

वय किसोर-सरि-पार मनोहर वयस-सिरोमनि होने।
सोभा-सुधा, आलि! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने॥ २॥
हेरत हृदय हरत, नहिं फेरत चारु विलोचन कोने।
तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने॥३॥२३॥

मनोहरता के मानो ऐन।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि! निरखु भरि नैन॥ १॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति उपमा कहुँ कोउ है न।
मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-वेष बनाए है मैन॥ २॥
किधौं सिँगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चित-वित लैन।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन॥ ३॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामवधुन्ह के बैन।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए प्रेम कनौड़े के न?॥ ४॥२४॥

वय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं।
सब अंग सहज सोहावने, राजीव जिते नैननि, बदननि बिधु निदरे हैं॥१॥
तून सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे हैं।
मंजु मधुर मृदु मूरति, पानहीं न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं?॥२॥
उभय बीच बनिता बनी लखि मोहि परे हैं।
मदन सप्रिया सप्रिय सखा मुनि-वेष बनाए लिए मन जात हरे हैं॥३॥
सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भरे हैं।
राम-पथिक छबि निरखि कै, तुलसी,
मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं॥ ४॥ २५॥

कैसे पितु मातु, कैसे ते प्रिय परिजन हैं?
जगजलधि ललाम, लोने लोने गोरे स्याम,
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं॥ १॥
रूप के न पारावार, भूप के कुमार मुनि-वेष,

२३—लोन = लाल। वयस सिरोमनि = युवावस्था।

देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं।
सुखमा की मूरति सीं, साथ निसिनाथ-मुखी,
नखसिख अंग सब सोभा के सदन हैं ॥ २ ॥
पंकज-करनि चाप, तीर तरकस कटि,
सरद-सरोजहु तें सुंदर चरन हैं।
सीता राम लषन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि ! हेली हिय के हरन हैं ॥ ३ ॥
प्रानहूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं।
तुलसी के लोचन-चकोर के चंद्रमा से,
आछे मन-मोर चित-चातक के घन हैं ॥४॥२६॥

राग भैरव

देखि ! हू पथिक गोरे साँवरे सुभग हैं।
सुतिय सलोनी संग सोहत सुमग हैं ॥ १ ॥
सोभासिंधु-संभव से नीके नीके नग हैं।
मातु-पितु-भाग-बस गए परि फँग हैं ॥ २ ॥
पाँइँ पनही न, मृदु पंकज से पग हैं।
रूप की मोहनी मेलि मोहे अग जग हैं ॥ ३ ॥
मुनि-बेष धरे धनु सायक सुलग हैं।
तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ॥ ४ ॥ २७ ॥

पथिक पयादे जात पंकज से पाय हैं।
मारग कठिन, कुस कंटकनिकाय हैं ॥ १ ॥
सखी भूखे प्यासे पै चलत चित चाय हैं।
इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं ॥ २ ॥
रूप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं।

२७—सुलग = पास।

मुनिवेष किए किधौं ब्रह्म जीव माय हैं ॥ ३ ॥
बीर बरियार धीर धनुधर-राय हैं।
दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय हैं ॥ ४ ॥
मग-लोग देखत करत हाय हाय हैं।
बन इनको तो बाम बिधि के बनाय हैं ॥ ५ ॥
धन्य ते जे मीन से अवधि-अंबु-आय हैं।
तुलसी प्रभु सों जिन्हहूँ के भले भाय हैं ॥ ६ ॥ २८ ॥

राग आसावरी

सजनी ! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील-रूप-आगार ॥ १ ॥
आगे राजिवनैन स्याम-तनु सोभा अमित अपार।
डारौं वारि अंग अंगनि पर कोटि कोटि सत मार ॥ २ ॥
पाछे गोर किसोर मनोहर, लोचन बदन उदार।
कटि तूनीर कसे, कर सर धनु, चले हरन छिति भार ॥ ३ ॥
जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिँगार।
इंद्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि-हार ॥ ४ ॥
अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार।
पुनि कहँ यह सोभा, कहँ लोचन, देह गेह संसार ? ॥ ५ ॥
सुनि प्रिय बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपा सुखसार।
तुलसिदास प्रभु हरे सबन्हि के मन, तन रही न सँभार ॥ ६ ॥ २९ ॥

देखु री सखी ! पथिक नख-सिख नीके हैं।
नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि
तापस हूँ, वेष किये काम कोटि फीके हैं ॥ १ ॥
सुकृत सनेह सील सुखमा सुख सकेलि

२८—उरगाय = उरुगाय, विष्णु। कै बनाय है = बनाय के है, बहुत ही अधिक है। अवधि-अंबु-आय = जिनकी आयु अवधि रूपी जल ही तक है।

बिरचे बिरंचि किधौं अमिय अमी के हैं।
रूप की सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,
उमहुँ रमा तेँ आछे अंग-अंग ती के हैं ॥ २ ॥
बन-पट कसे कटि, तून तीर धनु धरे,
धीर बीर पालक कृपालु सबही के हैं।
पानही न, चरन-सरोजनि चलत मग,
कानन पठाए पितु-मातु कैसे ही के हैं ? ॥ ३ ॥
आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु,
लाभ के सुलाभ, सुखजीवन से जी के हैं।
धन्य नर नारि जे निहारि बिनु गाहक हूँ
आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं ॥ ४ ॥
बिबुध बरषि फूल हरषि हिये कहत,
ग्राम-लोग मगन सनेह सिय-पीके हैं।
जोगीजन अगम दरस पायो पाँवरनि,
प्रमुदित मन सुनि सुरप सची के हैं ॥ ५ ॥
प्रीति के सुबालक से लालत सुजन सुनि,
मग चारु चरित लपन राम सी के हैं।
जोग न बिराग जाग तप न तीरथ त्याग,
एही अनुराग भाग खुले तुलसी के हैं ॥ ६ ॥ ३० ॥

रीति चलिबे की चाहि, प्रीति पहिचानि कै।
आपनी आपनी कहैं प्रेम परबस अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानि कै ॥ १ ॥
साँवरे कुँवर के बराइ कै चरन के चिह्न,
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि कै।
जुगल कमल-पद-अंक जोगवत जात,
गोरे गात कुँवर महिमा महा मानि कै ॥ २ ॥

उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन सी की,
तिनकी गहनि जे पथिक उर आनि कै ।
लोचन सजल, तन पुलक, मगन मन,
होत भूरिभागी जस तुलसी बखानि कै ॥ ३ ॥ ३१ ॥

राग केदारा

जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए
तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे ।
निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भए
बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे ॥ १ ॥
जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु,
सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे ।
मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ
सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे ॥ २ ॥
लालची कौड़ी के कूर पारस परे हैं पाले,
जानत न को हैं, कहा कीबो सो बिसरिगे ।
बुधि न बिचार, न बिगार, न सुधार सुधि,
देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे ॥ ३ ॥
बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,
'अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे' ।
सो सनेह समउ सुमिरि तुलसीहू के से
भली भाँति भले पैंत भले पाँसे परिगे ॥ ४ ॥ ३२ ॥
बोले राज देन को, रजायसु भो कानन को,
आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो ।

३२—बिनु छर छरिगे = बिना छाँटे हुए छँट कर साफ़ हो गए (चावल के समान), कना अलग करने के लिए चावल को फिर फटक कर साफ़ करने को 'छरना' कहते हैं । निफन = अच्छी तरह ।

मातु-पिता-बंधु-हित, आपनो परम हित,
मोको बीसहू के ईस अनुकूल आजु भो ॥ १ ॥
असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो।
धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजू को
कोटि राज सरिस भरत जू को राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातें कहत सुनत मग-लोगन की
चले जात बंधु दोउ मुनि को सो साज भो।
ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाज भो ॥३॥३३॥
सिरिस-सुमन-सुकुमारि सुखमा की सीँव
सीय, राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाई के प्रान समान, प्रिया के प्रान के प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील भई है ॥ १ ॥
आलवाल-अवध सुकामतरु कामबेलि
दूरि करि केकई बिपत्ति-बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरुजन, प्रिय परिजन,
प्रजाहू को कुटिल दुसह दसा दई है ॥ २ ॥
पंकज से पगनि पानहीं न, परुष पंथ,
कैसे निबहे हैं निबहैंगे गति नई है ?।
एही सोच संकट मगन मग-नर-नारि,
सबकी सुमति राम-राग-रँग-रई है ॥ ३ ॥
एक कहैं बाम बिधि दाहिनो हम को भयो,
उत कीन्हीं पीठि, इत को सुडीठि भई है।
तुलसी सहित बनबासी मुनि हसरिश्री,

३३—बीसहू कै = बीसों बिस्वे, पूरी तरह से।

अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ ४ ॥ ३४ ॥

राग गौरी

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए॥१॥
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनि बसन तून, धनु सर कर, स्यामल गौर सुभाय सोहाए॥२॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए॥३॥
मनु गयो संग, सोचबस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसिदास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए॥४॥३५॥

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
स्यामल गौर सहज सुंदर, सखि! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ॥१॥
कर-कमलनि सर सुभग सरासन, कटि मुनि बसन निषंग सोहाए।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक जननि जेहिं जाए॥२॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन।
तुलसिदास मनमथ मारग में राजत कोटि-मदन-मदमोचन॥३॥३६॥

राग केदारा

आली! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं।
कहाँ तें आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ?॥ १॥
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत,
लोयननि लाहु देत जहाँ जहाँ जैहैं॥ २॥
राम-लषन-सिय-पंथि की कथा पृथुल,
प्रेम बिथकीं कहति सुमुखि सबै हैं।

तुलसी तिन्ह सरिस तेऊ भूरिभाग जेऊ
सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं ॥ ३ ॥ ३७ ॥

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गए जो पथिक गोरे साँवरे सलोने,
सखि! संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
जानि पहिचानि बिनु आपु तें आपुनेहु तें,
प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही।
सुधा के सनेह हू के सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥ २ ॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुँक, कहत
तनु पुलक, नयन जलधार बही।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ ३ ॥ ३८ ॥

आली री! पथिक जे एहि पथ परौं सिधाए।
तेतौ राम लषन अवध तें आए ॥ १ ॥
संग सिय सब अंग सहज सोहाए।
रति, काम, ऋतुपति कोटिक लजाए ॥ २ ॥
राजा दसरथ रानी कौसिला जाए।
कैकेयी कुचालि करि कानन पठाए ॥ ३ ॥
बचन कुभामिनि के भूपहि क्यों भाए?
हाय हाय राय बाम बिधि भरमाए ॥ ४ ॥
कुलगुरु सचिव काहू न समुझाए।
काँच मनि लै अमोल मानिक गवाँए ॥ ५ ॥
भाग मग-लोगनि के देखन जे पाए।

३७—सुचित समैहैं = चित्त में समवाएँगे अर्थात् धारण करेंगे।
३८—उपही = ऊपरी, बाहरी।

तुलसी सहित जिन गुन गन गाए ॥ ६ ॥ ३६ ॥
सखि ! जबतें सीता समेत देखे दोउ भाई।
तब तें परै न कल, कछू न सोहाई ॥ १ ॥
नखसिख नीके, नीके निरखि निकाई।
तन सुधि गई, मन अनत न जाई ॥ २ ॥
हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई।
पावन-प्रेम-बिवस भई हौं पराई ॥ ३ ॥
कैसे पितु मातु प्रिय परिजन भाई।
जीवत जीव के जीवन बनहिं पठाई ॥ ४ ॥
समउ सो चित करि हित अधिकाई।
प्रीति ग्रामबधुन की तुलसिहुँ गाई ॥ ५ ॥ ४० ॥

राग केदारा

जब तें सिधारे यहि मारग लखन राम
जानकी सहित तब तें न सुधि लही है।
अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिंध्यगिरि,
कैधौं कहुँ रहे सो कछू न काहू कही है ॥ १ ॥
एक कहै चित्रकूट निकट नदी के तीर
परनकुटीर करि बसे, बात सही है।
सुनियत भरत मनाइबे को आवत हैं,
होइगी पै सोई जो बिधाता चित्त चही है ॥ २ ॥
सत्य-संघ धरम-धुरीन रघुनाथजू को
आपनी निबाहिबे नृप की निरबही है।
दस-चारि बरिस बिहार बन पदचार
करिबे पुनीत सैल-सर सरि मही है ॥ ३ ॥
सुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।

पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन,
जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है ॥ ४ ॥ ४१ ॥

राग सारंग

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी ।
स्याम गौर धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥ १ ॥
इन्हहिं बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहे, री ।
बनिता बंधु समेत बसे बन, पितु हित कठिन कलेस सहे री ॥ २ ॥
बचन परसपर कहति किराितिनि पुलक गात, जल नयन बहे, री ।
तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक लोचन जनु बिनु पलक लहे, री॥३॥४२॥

राग चंचरी

चित्रकूट अति विचित्र, सुंदर बन महि पवित्र,
पावनि पय सरित सकल मल-निकंदिनी ।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम,
बाम अंग बामाबर बिस्व-बंदिनी ॥ १ ॥ *
चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी ।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी ॥ २ ॥ ४३ ॥
फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल,
ललित-लता-जाल हरति छबि बितान की ।
मंदाकिनि तटिनि तीर, मंजुल मृग बिहग भीर,

---

* टी० बैजनाथ वाली प्रति में इसके आगे ये चार चरण और हैं—
ऋषिवर तहँ छंद बास, गावत कलकंठ हास, कीर्तन उनमाय काय क्रोधकंदिनी । बर बिधान करत गान, वारत धन मान प्रान, झरना झर झिंग झिंग झिंग जल तरंगिनी । बर बिहार चरन चारु पाँडुर चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी । जोबन नव ढरत ढार, दुत्त मत्त मृग मराल, मंद मंद गुंजत हैं अलि अलिंगिनी ।

धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की ॥ १ ॥
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निर्भर झर,
जल-कन घन छाँह, छन प्रभा न भान की ।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिविध बाउ,
जनु विहार-वाटिका नृप पंचबान की ॥ २ ॥
विरचित तहँ पर्नसाल, अति विचित्र लषन लाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी ।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान की ॥ ३ ॥
सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-विभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधान की ।
माधुरी विलास हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥ ४ ॥ ४४ ॥

राग केदारा

लोने लाल लषन, सलोने राम, लोनी सिय,
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं ।
गोरे साँवरे सरीर पीत नील नीरज से,
प्रेमरूप सुखमा के मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख-सिख, निरुपम निरखन जोग,
बड़े उर कंधर-विसाल भुज बर हैं ।
लोने लोने लोचन जटनि के मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने लोने धनुष, विसिष कर कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सरघर हैं ।

४४—सयन = शयनासन, बिस्तर ।
४५—सर-घर = तरकश, तूणीर ।

प्रिया प्रिय बंधु को दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु कुंज, सिलावल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग नाम कहैं,
लागी मधु, सरित, झरत निर्झर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत
भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात कोल
जाको सिसकत सुर विधि हरि हर हैं ॥ ५ ॥४५॥

राग सारंग

आइ रहे जब तें दोउ भाई।
तब तें चित्रकूट-कानन-छवि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥१॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिविध पाप त्रयताप नसाई ॥ २ ॥
उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥ ३ ॥
सरित सरनि सरसीरुह-संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥ ४ ॥
त्रिविध समीर नीर झर झरननि जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई ॥ ५ ॥
भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।
खग मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥ ६ ॥
कामकेलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कवि कहत लजाई।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनो राम बिपिन बिधि आनि बसाई ॥ ७ ॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।

पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु प्रमुदित मन जीवन फलु पाई।
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि संपति महिमा मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥८॥

राग गौरी

देखत चित्रकूट बन मन अति होत हुलास।
सीताराम लषन प्रिय, तापस-बृंद-निवास ॥ १ ॥
सरित सोहावनि पावनि, पापहरनि पय नाम।
सिद्धि-साधु-सुर-सेवित देति सकल मन काम ॥ २ ॥
बिटप बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति।
कंदमूल, जल-थलरुह अगनित अनवन भाँति ॥ ३ ॥
बंजुल मंजु, बकुल कुल सुरतरु, ताल, तमाल।
कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल, पनस रसाल ॥ ४ ॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि अनुराग सुभाग।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध-बन-बाग ॥ ५ ॥
जाइ न बरनि राम-बन चितवत चित हरि लेत।
ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत ॥ ६ ॥
सरित सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग।
गुंजत मंजु मधुप गन कूजत बिबिध बिहंग ॥ ७ ॥
लषन कहेउ रघुनंदन देखिय बिपिन-समाज।
मानहुँ चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥ ८ ॥
चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु ॥ ९ ॥
झिल्लि, झाँझ, झरना, डफ, नव मृदंग निसान।
भेरि उपंग भृंग रव, ताल कीर कलगान ॥ १० ॥
हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर।

४७—अनबन = भिन्न भिन्न, नाना।

गावत मनहुँ नारिनर मुदित नगर चहुँ ओर ॥ ११ ॥
चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डाँग ।
जनु पुरवीथिन विहरत छैल सँवारे स्वाँग ॥ १२ ॥
नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बँधान ।
निलज तरुन तरुनी जनु खेलहिँ समय समान ॥ १३ ॥
भरि भरि सुंड करिनि करि जहँ तहँ डारहिं वारि ।
भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि ॥ १४ ॥
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार ।
जनु मुँह लाइ गेरु मसि भए खरनि असवार ॥ १५ ॥
लिए पराग सुमनरस डोलत मलय समीर ।
मनहुँ अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर ॥ १६ ॥
काम कौतुकी यहि बिधि प्रभुहित कौतुक कीन्ह ।
रीझि राम रतिनाथहि जग-बिजयी बर दीन्ह ॥ १७ ॥
दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ ।
'भलेहि नाथ' माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ ॥ १८ ॥
मुदित किरात किरातिनि रघुबर-रूप निहारि ।
प्रभुगुन गावत नाचत चले जोहारि जोहारि ॥ १९ ॥
देहिँ असीस प्रसंसहिं मुनि, सुर बरषहिँ फूल ।
गवने भवन राखि उर मूरति मंगलमूल ॥ २० ॥
चित्रकूट कानन छवि को कवि बरनै पार ।
जहँ सिय लषन सहित नित रघुबर करहिं बिहार ॥ २१ ॥
तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम गुन-ग्राम ।
गावहिं सुनहिं नारि नर पावहिं सब अभिराम ॥ २२ ॥ ४७ ॥

४७—डोंगर = ऊँची जमीन या टीला । डाँग = घना बनखंड ।

राग बसंत

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मानो खेलत फागु मुद मदन बीर॥
बट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरु-निकर कुरव तमाल॥
मानो बिबिध बेष धरे छैल-जूथ। बिच बीच लता ललना बरूथ॥२॥
पनवानक निर्झर, अलि उपंग। बोलत पारावत मानो डफ मृदंग॥
गायक सुक कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु भाँति बरहिं मराल॥३॥
मलयानिल सीतल सुरभि मंद। बह सहित सुमन रस रेनु वृंद॥
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार लीला अनंग॥४॥
क्रीड़त जीते सुर असुर नाग। हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग॥
कह तुलसिदास तेहि छाँड़ु मैन। जेहि राख राम राजीवनैन॥५॥४८॥
ऋतु-पतिआएभलोबन्योबनसमाज। मानोभए हैं मदन महाराज आज॥१॥
मनो प्रमथ फागु मिस करि अनीति। होरी मिस अरिपुर जारि जीति॥
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि। नय नगर बसाए बिपिन भारि॥२॥
सिंहासन सैल सिला सुरंग। कानन, छवि रति परिजन कुरंग॥
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान। चामर समीर, निर्झर निसान॥३॥
मनो मधु माधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर॥
मधुकर सुक कोकिल बंदि-वृंद। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद॥४॥
महि परत सुमन-रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर-बिभाग॥
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार। कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार॥५॥
बिरहिन पर नित नइ परै मारि। डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि॥
तिनको न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसहिं रघुबीर-बाँह॥६॥४९॥

राग मलार

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत॥१॥
चहुँदिसि बन संपन्न, बिहँग मृग बोलत सोभा पावत।

४८—कुरव=कुरवक, कटसरैया।

जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥ २ ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥ ३ ॥
सिखर परस घन घटहिं, मिलति बग पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥४॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ, बन-प्रतिबिंब तरंग ।
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ॥ ५ ॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगति के पाछे ॥६॥५०॥

राग सोरठ

आजु को भोर और सो, माई ।
सुनौं न द्वार बेद बंदी धुनि गुनिगन-गिरा सोहाई ॥ १ ॥
निज निज सुंदर पति सदननि तें रूप-सील-छबि-छाई ।
लेत असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आई ॥ २ ॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री! सुमित्रा माता?' ।
तुलसी मनहुँ महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ॥ ३ ॥ ५१ ॥

जननी निरखति बान धनुहियाँ ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ॥ १ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे ।
उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ॥ २ ॥
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया ।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया" ॥ ३ ॥
कबहुँ समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।
तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी ॥४॥५२॥

माई री! मोहिं कोउ न समुझावै ।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥ १ ॥

लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को, विधि जो भयो बिपरीता ॥ २॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु, सखि! अरुझि परी यहि लेखे ॥ ३॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जाति बखानी ॥ ४ ॥ ५३ ॥

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥ १॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुंदर मुनि-मन-हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर-बिहारी ॥ २॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई!
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥ ३॥
जीवौं तौ बिपति सहौं निसिबासर मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ॥ ४॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो? ॥५॥५४॥

मेरो यह अभिलाषु बिधाता।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवक सुखदाता॥ १॥
सीता सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ।
स्रवन-सुधा-सम बचन सखी कब आइ कहैगो कोऊ? ॥ २॥
सुनि संदेस प्रेम-परिपूरन संभ्रम उठि धावौंगी।
बदन बिलोकि रोकि लोचन-जल हरपि हिये लावौंगी ॥ ३॥
जनकसुता कब सासु कहैं मोहि, राम लषन कहैं मैया।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे स्यामगौर दोउ भैया ॥ ४॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति बाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम-छबि मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥५॥५५॥

सुन्यौ जब फिरि सुमंत पुर आयो।
कहिहै कहा प्रानपति की गति, नृपति विकल उठि धायो॥ १॥
पाँय परत मंत्री अति व्याकुल, नृप उठाइ उर लायो।
दसरथ-दसा देखि न कह्यो कछु हरि जो सँदेस पठायो॥ २॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो।
साँचेहु सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहिं जिआयो॥ ३॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो॥
हा! रघुपति कहि पर्यो अवनि जनु जल तें मीन बिलगायो॥४॥५६॥

सुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ॥ १॥
तिलक को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्यो समुझि सील सुभाउ॥ २॥
सीय रघुबर लषन बिनु, भय भभरि भगी न आउ।
मोहिं बूझि न परत यातें कौन कठिन कुघाउ॥ ३॥
सुनि सुमंत! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ॥ ४॥ ५७॥

अवध बिलोकि हौं जीवत राममद्र-बिहीन।
कहा करि हैं आइ सानुज भरत धरमधुरीन॥ १॥
राम-सोक-सनेह-संकुल, तनु बिकल, मनु लीन।
टूटि तारो गगन-मग ज्यों होत छिन छिन छीन॥ २॥
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम-पावन-मीन।
करी तुलसीदास दसरथ प्रीति-परमिति पीन॥ ३॥ ५८॥

राग गौरी

करत राउ मन मों अनुमान।
सोक-बिकल मुख बचन न आवै बिछुरे कृपानिधान॥ १॥
राज देन कहि बोलि नारि-बस मैं जो कह्यो बन जान।

आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान ॥ २ ॥
ऐसे सुत के बिरह-अवधि लौं जौ राखौं यह प्रान ।
तौ मिटि जाइ प्रीति की परमिति अजस सुनौं निज कान ॥ ३ ॥
राम गए अजहूँ हौं जीवत समुझत हिय अकुलान ।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान ॥ ४ ॥ ५९ ॥

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री ॥ १ ॥
दिनकर-बंस, पिता दसरथ से, राम लपन से भाई ।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई ? ॥ २ ॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो ।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ? ॥ ३ ॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं ।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि बिधि भरिहै ॥ ४ ॥ ६० ॥

ताते हौं देत न दूषन तोहूँ ।
रामबिरोधी उर कठोर तें प्रगट कियो है बिधि मोहूँ ॥ १ ॥
सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए ।
बिष-बारुनी-बंधु कहियत बिधु ! नातो मिटत न धोए ॥ २ ॥
होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सब के मन माहीं ।
तौ तोरी करतूति, मातु ! सुनि, प्रीति प्रतीति कहा हीं ? ॥ ३ ॥
मृदु मंजुल सोंची-सनेह सुचि सुनत भरत-बर-बानी ।
तुलसी 'साधु साधु' सुर नर मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ ४ ॥ ६१ ॥

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं ।
तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ? ॥ १ ॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ? ।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन बाँची ? ॥ २ ॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै ।

दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हियें की बूझै ? ॥ ३ ॥
तुलसी रामबियोग-विषम-विष-बिकल नारिनर भारी ।
भरत-सनेहसुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥४॥६२॥

काहे को खोरि कैकयिहि लावौं ?
धरहु धीर बलि जाउँ, तात ! मोको आज बिधाता बावौं ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे ।
सो मेरे नयननि आगे तें रघुपति बनहिं सिधारे ॥ २ ॥
तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ आँसु पोंछि उर लाए ।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए ॥३॥६३॥

मेरो अवध धौं कहहु कहा है ।
करहु राज रघुराज-चरन तजि; लै लटि लोगु रहा है ॥ १ ॥
धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है ।
तापर मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है ॥ २ ॥
राम-सपथ कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है ।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहिं हहा है ॥ ३ ॥
यों कहि भोर भरत गिरिवर को मारग बूझि गहा है ।
सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है ॥ ४ ॥
जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है ।
कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निवहा है ॥५॥६४॥

भाई ! हौं अवध कहा रहि लैहौं ।
राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन काल्हि काननहिं जैहौं ॥ १ ॥
जद्यपि मोतें, कै कुमातु तें, ह्वै आई अति पोची ।
सन्मुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची ॥ २ ॥
तुलसी यों कहि चले भोरहीं, लोग बिकल सँग लागे ।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहंग मृग भागे ॥३॥६५॥

[illegible]

सुक सों गहवर हिये कहै सारो।
धीर कीर ! सिय राम लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥ १ ॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो ? ॥ २ ॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बचन करुनाकर के जब पुर-परिवार सँभारो ॥ ३ ॥
भैया भरत भावते के सँग बन सब लोग सिधारो।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥ ४ ॥
सुनि खग कहत अंब ! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो ॥ ५ ॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ॥ ६ ॥ ६६ ॥

कहै सुक सुनहिं सिखावन, सारो !।
बिधि करतब बिपरीत बाम गति, रामप्रेम-पथ न्यारो ॥ १ ॥
को नर-नारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम तें प्यारो।
बिद्यमान सब के गवने बन, बदन करम को कारो ॥ २ ॥
अंब अनुज प्रिय सखा सुसेवक देखि बिषाद बिसारो।
पंछी परबस परे पींजरनि लेखो कौन हमारो ॥ ३ ॥
रही नृप की, बिगरी है सब की, अब एक सँवार निहारो।
तुलसी प्रभु निज चरन-पीठ-मिस भरत-प्रान रखवारो ॥ ४ ॥ ६७ ॥

ता दिन सृंगबेरपुर आए।
राम सखा ते समाचार सुनि बारि बिलोचन छाए ॥
कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जानी।
कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि रैनि बिहानी ॥
भोरहि भरद्वाज आस्रम ह्वै करि निषादपति आगे।

६६—सारो = शारिका, मैना। मौंगी रहि = चुपचाप रह।

चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे ॥
बूझत 'चित्रकूट कहँ' जेहि तेहि मुनि बालकनि बतायो ।
तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढ़त निरखि हरषि हिय धायो ॥१॥६८॥

राग केदारा

विलोके दूरि तें दोउ बीर ।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर ।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु तीर ॥ २ ॥
मन अगहुँड़ तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर ।
गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर ॥ ३ ॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर ।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर ॥४॥६९॥

भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।
ह्वै न सकत सामुहें सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि ॥ १ ॥
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।
हृदय सोच, जल भरे विलोचन, नेह देह भइ भोरि ॥ २ ॥
बनवासी, पुरलोग, महामुनि किए हैं काठ के से कोरि ।
दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥ ३ ॥
तुलसी राम-सुभाव सुमिरि उर धरि धीरजहि बहोरि ।
बोले बचन विनीत उचित हित करुना-रसहि निचोरि ॥४॥७०॥

जानत हौं सबही के मन की ।
तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सुनहु दीन हित जन की ॥१॥
ए सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहि एक गति घन की ।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की ॥२॥

६९—धुनत = क्रीड़ावश धनुष की डोरी पर मारते हैं ।
७०—कोरि = छीलछाल कर ।

मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जियै जैसो अहि जासु गई मनि फन की।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहिँ बन की ॥ ३ ॥
मोको जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातु तेँ तन की।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की॥४॥७१॥

तात! विचारो धौं हौं क्यों आवौं।
तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल विधि, बहुत कहा कहि कहि समुझावौं॥१॥
निज कर खाल खैंचि या तनु तेँ जौ पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उऋन पिता दसरथ तेँ; कैसे ताके वचन मेटि पति पावौं॥२॥
तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहि कालिमा लावौं।
प्रभुरुखनिरखिनिरासभरतभए,जान्योहैसबहिभाँतिविधिबावौं॥३॥७२॥

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं।
सकुच-सिंधु बोहित विवेक करि बुधि बल बचन निबाहैं ॥ १ ॥
छोटेहुतेँ छोह करि आए मैं सामुहें न हेरो।
एकहि बार आजु विधि मेरो सील सनेह निबेरो ॥ २ ॥
तुलसी जो फिरिबो न बनै प्रभु तौ हौं आयसु पावौं।
घर फेरिए लषन लरिका हैं, नाथ साथ हौं आवौं ॥ ३ ॥ ७३ ॥

रघुपति! मोहिं संग किन लीजै ?।
बारबार 'पुर जाहु' नाथ! केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति अपराधिनि को जायो।
प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि सरन तकि आयो ॥ २ ॥
जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी।
तौ परिहरहु दयालु दीनहित प्रभु अभिअंतर-साखी ॥ ३ ॥
ताते, नाथ! कहौं मैं पुनि पुनि प्रभु पितु मातु गोसाईं।
भजन-हीन नरदेह वृथा खर स्वान फेरु की नाईं ॥ ४ ॥
बंधु-बचन सुनि स्रवन नयन राजीव नीर भरि आए।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥ ७४ ॥

काहेको मानत हानि हिये हौ ?
प्रीति नीति गुन सील धर्म कहँ तुम अवलंब दिये हौ ॥ १ ॥
तात! जात जानिबे न ए दिन; करि प्रमान पितु-बानी।
ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥ २ ॥
तुलसिदास अनुजहिं प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हें।
मनहुँ सबनि के प्रान-पाहरू भरत सीस धरि लीन्हें ॥ ३ ॥ ७५ ॥

बिनती भरत करत कर जोरे।
दीनबंधु दीनता दीन की कबहुँ परै जिनि भोरे ॥ १ ॥
तुम्हसे तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिए अघ औगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें।
पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥ ३ ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तो प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ ॥ ४ ॥ ७६ ॥

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो।
जनमि कैकयी-कोखि कृपानिधि! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥
'भरत भूप, सिय राम लषन बन,' सुनि सानंद सहौंगो।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौंगो ॥ २ ॥
प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो।
आगे की बिनती तुलसी तब जब फिरि चरन गहौंगो ॥ ३ ॥ ७७ ॥

प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है।
कीबी छमा नाथ आरति तें कही कुजुगुति नई है ॥ १ ॥
यों कहि बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि बिष बेलि बई है ॥ २ ॥
आए सदा सुधारि गोसाई जन तें बिगरि गई है।
थके बचन पैरत सनेह-सरि परयो मानो घोर घई है ॥ ३ ॥

चित्रकूट तेहि समय सबनि की बुद्धि बिषाद हई है।
तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है ॥४॥७८॥

जब तें चित्रकूट तें आए।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए ॥ १ ॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभुपद-प्रेमनेमव्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥ २ ॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे।
प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥३॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु त्यों त्यों प्रीति अधिकाई।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई ॥४॥७९॥

राग रामकली

राखी भगति भलाई भली भाँति भरत।
स्वारथ परमारथ पथी जय जय जग करत ॥ १ ॥
जो व्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत।
सो व्रत लिए चातक ज्यों सुनत पाप हरत ॥ २ ॥
सिंहासन सुभग राम-चरन-पीठ धरत।
चालत सब राजकाज आयसु अनुसरत ॥ ३ ॥
आपु अवध, बिपिन बंधु, सोच जरनि जरत।
तुलसी सम बिषम, सुगम अगम लखि न परत ॥४॥८०॥

मोहिं भावति, कहि आवति नहिं भरतजू की रहनि।
सजल नयन, सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि ॥ १ ॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम-गरुअ-गहनि।
दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपधि निरबहनि ॥ २ ॥
सीता-रघुनाथ-लषन-बिरह-पीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि ॥ ३ ॥ ॥ ८१ ॥

७८—घई = भँवर।

जानी है संकर हनुमान लषन भरत-रामभगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ॥ १ ॥
लहत सकृत चहत सकल, जुग जुग जगमगति ।
राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहिं डगति ॥ २ ॥
ऋधि, सिधि, विधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु विषय-ठगिनि ठगति ॥३॥८२॥

राग गौरी

कैकयी करी धौं चतुराई कौन ? ।
राम लषन सिय बनहिं पठाए, पति पठए सुरभौन ॥ १ ॥
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन ।
पुरबासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ वो देखति हौं न ॥ २ ॥
कौसल्या दिन राति बिसूरति बैठि मनहिं मन मौन ।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए संग जौ न ॥३॥८३॥

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।
लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्यां कहा जात बह्यो ॥ १ ॥
पति सुरपुर, सिय राम लषन बन, मुनिब्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो ॥ २ ॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यौ ? ॥३॥८४॥

राग सोरठ

हौं तो समुझि रही अपनो सो ।
राम लषन सिय को सुख मो कहँ भयो, सखी ! सपनो सो ॥ १ ॥
जिन्हके बिरह बिषाद बँटावन खग मृग जीव दुखारी ।
मोहिं कहा सजनी समुझावति हौं तिन्हकी महतारी ॥ २ ॥

८४—मरिबोइ मृतक दह्यो = मानो मृत्यु रूपी मृतक को ही जला डाला है अर्थात् मैं मरती भी नहीं हूँ ।

भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरवासी ।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति ह्वैहै जग उपहाँसी ॥३॥८५॥

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ? ।
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातुहेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान पान बिसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम लषन के घोरे ॥ ४ ॥ ८६ ॥

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ॥ १ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम-मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥ ८७ ॥

राग केदारा

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए ।
चित्रकूट तें राम लषन सिय सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥
सैल, सरित, निर्झर, बन, मुनिथल देखि देखि सब आए ।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक मानस सुगम सुहाए ॥ २ ॥
बड़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित, बिषम बिषाद बढ़ाए ।
सिरिस सुमन सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढ़ाए ॥ ३ ॥

८७—सार = खबरदारी, सँभाल ।

अवध सकल नर नारि विकल अति अँकनि वचन अनभाए ।
तुलसी राम-वियोग-सोग-बस समुझत नहिं समुझाए ॥४॥८८॥

सुनी मैं, सखि! मंगल चाह सुहाई ।
सुभ पत्रिका निषादराज की आजु भरत पहँ आई ॥ १ ॥
कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई ।
गुरु कृपालु संभ्रम पुर घर घर सादर सबहि सुनाई ॥ २ ॥
बधि बिराध, सुर साधु सुखी करि, ऋषि सिख आसिष पाई ।
कुंभज सिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई ॥ ३ ॥
बीच बिंध्य रेवा सुपास थल बसे हैं परन-गृह छाई ।
पंथ-कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास सुनि गाई ॥४॥८९॥

अरण्य कांड

राग मलार

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर॥१॥
कँपै कलाप धर धरहि फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर।
जहँ जहँ प्रभु विचरत तहँ तहँ सुख दंडकवन कौतुक न थोर॥२॥
सघन छाँह तम-रुचिर रजनि भ्रम, बदन-चंद चितवत चकोर।
तुलसी मुनि खग मृगनि सराहत भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर॥३॥

राग कल्यान

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया वन बसति सो मृदु मूरति मन मोरे॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छवि छोरे॥
जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे॥
चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे॥२॥

१—कँपै = कँपा कर। कलाप = मोर की पूछ।

२—चलत..... तोरे = नट भी उनकी सुंदर द्रुत गति पर मोहित होकर तिनका तोड़ते हैं जिसमें उन्हें नजर न लगे। (स्त्रियाँ बच्चों को नजर से बचाने के लिए तिनका तोड़ने का टोटका करती हैं।)

राग सोरठ

बैठे हैं राम लषन अरु सीता ।
पंचबटी बर परनकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता ॥
कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला ।
पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहुँ मंजुल छाला ॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिँ चाप सर लीन्हें ।
चल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें ॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे ।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसि उर आछे ॥ ३ ॥

राग कल्यान

कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग ।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग ॥
भुज बिसाल, कमनीय कंध उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग ।
मनु मुकुता मनि-मरकतगिरि पर लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग ॥
नलिन नयन, सिर जटा मुकुट बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।
तुलसिदास ऐसी मूरति की बलि, छबि,
बिलोकि लाजैं अमित अनंग ॥ ४ ॥

राग केदारा

राघव, भावति मोहि बिपिन की बीथिन्ह धावनि ।
अरुन-कंज-बरन चरन सोकहरन, अंकुस कुलिस केतु अंकित अवनि ॥
सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि ।
कनक-कुरंग संग साजे कर सर चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि ॥
सोहत सिर मुकुट जटा पटल, निकर सुमन लता सहित, रची बनवनि ।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भ्रकुटिन्ह की नवनि ॥

३—गवहिँ = धीरे से, चुपचाप ।
४—मेरवनि = मिलान । भँवनि = भ्रमण, घूमना । पवनि = पावन, पवित्र ।

देखत खग-निकर, मृग रवनिन्ह जुत, थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि।
हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि॥
जिन्हके मन मगन भए हैं रस सगुन, तिन्हके लेखे अगुन मुकुति कवनि।
स्रवन-सुख करनि, भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि॥५॥

राग सोरठ

रघुबर दूरि जाइ मृग मारयो ।
लखन पुकारि, राम हरुए कहि मरतहुँ बैर सँभारयो ॥
सुनहु तात ! कोउ तुम्हहिँ पुकारत प्राननाथ की नाईं ।
कह्यो लषन हत्यो हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआई ॥
बंधु बिलोकि कहत तुलसी-प्रभु "भाई ! भली न कीन्हीं ।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं" ॥ ६ ॥

आरत बचन कहति बैदेही ।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही' ॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै ।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन लाल छिनि लीजै ॥
बनदेवनि सिय कहन कहति यौं छल करि नीच हरी हौं ।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यौं त्यौं पर-हाथ परी हौं ॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो ।
'पुत्रि पुत्रि ! जनि डरहि, न जैहै नीचु ? मीचु हौं आयो' ॥ ७ ॥

फिरत न बारहिं बार पचारयो ।
चपरि चोंच चंगुल हय हति, रथ खंड खंड करि डारयो ॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलान्यो ।
तब असि काढ़ि काटि पर पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यो ॥
रामकाज खगराज आजु लरयो जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहँग बड़भागी ॥ ८ ॥

राग गौरी

हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि
लषन ललित कर लिए मृगछाल ।
आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले,
फरके बामं बाहु लोचन बिसाल ॥ १ ॥
सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल ।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ॥ २ ॥
तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि करि कपि,
हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल ।
जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लालें,
तेऊ न पढ़त, न पढ़ावैं मुनिबाल ॥ ३ ॥
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,
तुलसी बिबरन परन-तृन-साल ।
औरै सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु
गहबर हिय कहैं कोसलपाल ॥ ४ ॥ ८ ॥
आस्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि खग मृग मानो कबहुँ न हे ।
मुनि न मुनिबधूटी, उजरी परनकुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठो न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये
प्रिया, न पुलकि प्रिय बचन कहे ।
पल्लव-सालन हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी,
बिरह बिथकि लखि लषन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति,

तुलसी गहन बिनु दहन दहे ।
अनुज दियो भरोसो, तौलों है सोचु खरो सो,
सिय-समाचार प्रभु जौलों न लहे ॥ ३ ॥ १० ॥

राग सोरठ

अबहिं सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई ।
भए सुनि सजग बिरहसरि पैरत थके थाह सी पाई ॥
कसि तूनीर तीर धनु-धर-धुर धीर बीर दोउ भाई ।
पंचबटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई ॥
चले बूझत बन बेलि बिटप खग मृग अलि अवलि सुहाई ।
प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आह न आई ॥
रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई ।
तुलसी रामहिं प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई ॥११॥

मेरे एकौ हाथ न लागी ।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव दागी ॥
दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो जो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निसाचरपति सों हठि न जानकी राखी ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए ।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए ॥
बारबार कर मींजि सीस धुनि गीधराज पछिताई ।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई ॥ १२ ॥

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हो ॥
सुनहु लपन ! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥
यहु बिधि राम कह्यौ तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यौ ।

११—गोदहि = गोदावरी को । आह = हिम्मत, साहस ।

रोकि प्रेम, अवलोकि बदनबिधु बचन मनोहर बोल्यौ ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं? ॥ १३ ॥

नीके कै जानत राम हियो हौ।
प्रनतपाल, सेवक-कृपालु-चित, पितु पटतरहि दियो हौं ॥
त्रिजगजोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज सुकृती-समाज सब-ऊपर आजु कियो हौं ॥
स्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं ॥ १४ ॥

मेरे जान तात कछू दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन-सेवासुख मोहिं पितु को सुख दीजै ॥
दिव्य-देह इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरि हर सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै ॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन-जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि 'रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ क्यों न कहीजै ?' ॥
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ह्वै परी मानो प्रेम सहीजै ॥ १५ ॥

मेरो सुनियो, तात! सँदेसो।
सीय-हरन जनि कहेहु पिता सों, ह्वैहै अधिक अँदेसो ॥
रावरे पुन्यप्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं।
कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं ॥
सुनि प्रभु-बचन राखि उर मूरति चरनकमल सिर नाई।
चल्यो नभ सुनत राम-कल-कीरति अरु निज भाग बड़ाई ॥
पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो।
ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ॥ १६ ॥

१३—न धोखो लैहौं = धोखा न उठाऊँगा, न चूकूँगा।

राग सूहो

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली।
तृन-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र-बरबानी भली।
ज्यों कल्प-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख-फली॥१॥
प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु।
जानत जन-जिय की मृदु चित्त राम गरीबनिवाजु॥
मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजि हैं गृह आइकै।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै॥
लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै॥ २॥
दोना रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै।
सुंदर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भू पर पानिकै।
दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम-पन पहचानिकै॥ ३॥
स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि कैधौं सति भाउ'॥
सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसलराय के।
गहे चरन जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-काय के॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चाय कै।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के॥ ४॥
प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि।

आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥
पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-बिरहित भये।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये॥ ५ ॥
सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात!
प्रभु खात माँगत, देति सबरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन-भाग के॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुराग के॥ ६ ॥
रघुबर अँचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी॥
तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ आयसु पाइ गवने परमनिधि पाले परी॥ ७ ॥
सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाइ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहिं सो गई।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जलअंजलि दई॥
तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई॥८॥१७॥

१७—फलचारि हू......सबरी दये = चारो फलों (अर्थ, धर्म आदि) को (शबरी के दिए) चार फलों से जलाकर जलकारकर शबरी को फल दिए अर्थात् शबरी को चारों फलों से कहीं बढ़कर फल दिए।

राग सूहो

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु ।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु ॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली ।
तून-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली ॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र-बरबानी भली ।
ज्यों कल्प-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख-फली ॥१॥
प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लपन मेरे आजु ।
जानत जन-जिय की मृदु चित राम गरीबनिवाजु ॥
मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजि हैं गृह आइकै ।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै ॥
लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै ।
दुहूँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै ॥ २ ॥
दोना रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल ।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल ॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै ।
सुंदर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै ॥
छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भू पर पानिकै ।
दोउ भाइ आये शबरिका के प्रेम-पन पहचानिकै ॥ ३ ॥
स्रवन सुनत चली आवत देखि लपन रघुराउ ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि कैधों सति भाउ' ॥
सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसलराय के ।
गहे चरन जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-काय के ॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चाय कै ।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के ॥ ४ ॥
प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि ।

आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥
पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-बिरहित भये ।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये ॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये ।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये ॥ ५ ॥
सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात ।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात ।
प्रभु खात माँगत, देति सबरी राम भोगी जाग के ।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन-भाग के ॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के ।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुराग के ॥ ६ ॥
रघुबर अँचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि ।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि ॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी ।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी ॥
तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी ।
सिर नाइ आयसु पाइ गवने परमनिधि पाले परी ॥ ७ ॥
सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाइ ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहिं सो गई ।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जलअंजलि दई ॥
तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई ।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई ॥८॥१७॥

१७—फलचारि हू......सबरी दये = चारो फलों (अर्थ, धर्म आदि) को (शबरी के दिए) चार फलों से जलाकर जलकारकर शबरी को फल दिए अर्थात् शबरी को चारों फलों से कहीं बढ़कर फल दिए ।

किष्किंधा कांड

राग केदारा

भूषन बसन बिलोकत सिय के ।
प्रेम-बिवस मन, कंप पुलक तनु, नीरजनयन नीर भरे पिय के ॥
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सुगुनगन तिय के ।
स्वामिदसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के ॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय[1] के ।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिवेक बीररस बिय के ॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के ।
तुलसिदास यह समउ कहे तें कवि लागत निपट निठुर जड़ जिय के ॥१॥

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है ।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहिं सिय-सोधु लह्यो है ।
जा कारन तजि लोकलाज तनु राखि बियोग सह्यो है ।
ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है ॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमित-मुख उतरु न देन चह्यो है ।
आइ गए हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है ।
पठये बदि बदि अवधि दसहुँ दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है ।
तुलसी सिय लगि भवदधि-निधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है ॥२॥

१—सुकिय = सुकृत ।

सुंदर कांड

राग केदारा

रजायसु राम को जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो॥
भालुनाथ नल नील साथ चले, बली बालि को जायो।
फरकि सुअँग भए सगुन, कहत मानो मग मुद-मंगल छायो॥
देखि विवर सुधि पाइ गीध सों सबनि अपनो बलु मायो।
सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो॥
खोजत घर घर जनु दरिद्र-मनि फिरत लागि धन धायो।
तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु भूरिभाग भयो भायो॥ १॥

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि।
मनहुँ मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि॥
रटति निसि बासर निरंतर राम राजिवनैन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन॥
नाथ के गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई कर बर रुचिर नाम निहारि॥
हृदय हरप बिषाद अति पति-मुद्रिका पहिचानि।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि? ॥ २॥

राग सोरठ

बोलि, बलि, मूँदरी! सानुज कुसल कोसलपालु।
अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह-ज्वाला-जालु॥

१—मायो = मापा, अंदाज किया। लूक = उल्का।

कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु ।
रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लालु ? ॥
परस्पर पति देवरहि का होति चरचा चालु ।
देवि ! कहु केहि हेत बोले बिपुल बानर भालु ॥
सीलनिधि समरथ सुसाहिब दीनबंधु दयालु ।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु ॥ ३ ॥
रदल सलपन हैं कुसल कृपालु कोसल-राउ ! ।
सील-सदन सनेह-सागर सहज सरल सुभाउ ॥
नींद भूख न देवरहि परिहरे को पछिताउ ।
धीरधुर रघुबीर को नहिं सपनेहुँ चित चाउ ॥
सोधु बिनु, अनुरोधु ऋतु के, बोध बिहित उपाउ ।
करत हैं सोइ समय साधन फलहि बनत बनाउ ॥
पठए कपि दिसि दसहुँ जे प्रभुकाज कुटिल न काउ ।
बोलि लियो हनुमान करि सनमान जानि समाउ ॥
दई हौं संकेत कहि कुसलात सियहि सुनाउ ।
देखि दुर्ग बिसेषि जानकि जानि रिपु-गति आउ ॥
कियो सीय प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहि लखाउ ।
पाइ अवसर नाइ सिर तुलसीस गुनगन गाउ ॥ ४ ॥
सुवन समीर को धीर धुरीन बीर बड़ोइ ।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यों दियो रोइ ॥
अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध-बिंध्य बढ़ोइ ।
सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ ॥
बुद्धि बल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ ।
सकल साज समाज साधक समउ कहै सब कोइ ॥
उतरि तरु तें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ ।

१—कलसभव = अगस्त्य, जिन्होंने बिंध्यपर्वत को बढ़ने से रोक दिया था।

चुके अवसर मनहुँ सुजनहिं सुजन सनमुख होइ ॥
कहे बचन विनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ।
सीय सुनि हनुमान जान्यौ भली भाँति भलोइ ॥
देवि! बिनु करतूति कहिबो जानिहैं लघु लोइ।
कहौंगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ ॥
करत कछू न बनत हरिहिय हरष सोक समोइ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ ॥ ५ ॥

राग केदारा

हौं रघुबंसमनि को दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि! जानि मारुतपूत ॥
मैं सुनी बातैं असैली जे कही निसिचर नीच।
क्यों न मारै गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥
निदरि अरि रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु दिन चारि में दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि उर धरु धीर ॥
चित्रकूट कथा कुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ॥
भये सीतल स्रवन तन मन सुने बचन-पियूष।
दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख ॥ ६ ॥

तात! तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु
लखि नइ गति भइ मति मलानि ॥

५—तुलसीस = हनुमान। घमोइ = सत्यानाशी या भंडभाँड़ नाम का पौधा जो खँडहरों में प्रायः उगता है।

६—असैली = शैलीविरुद्ध, रीति-नीति-विरुद्ध।

पिय को बचन परिहर्यो जिय के भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
प्रीतम-बिरह तौ सनेह सरबसु, सुत!
औसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥
आरज-सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहिं सोच मोतें सब विधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि ॥
नेम तौ पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मीन ही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्योंहीं त्योंहीं,
रही, प्रीति परी सही, बिधि सों न बखानि ॥७॥

मातु काहे को कहति अति बचन दीन ?
तब की तुहीं जानति, अब की हौं हीं कहत,
सब के जिय की जानत प्रभु प्रवीन ॥
ऐसे तो सोचहिं न्याय-निठुर-नायक-रत
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन ।
करुनानिधान को तो ज्यों ज्यों तनु छीन भयो
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥
सिय को सनेह, रघुबर की दसा सुमिरि
पवनपूत देखि भयो प्रीति-लीन ।
तुलसी जन को जननी प्रबोध कियो,
"समुझि तात! जग विधि-अधीन" ॥ ८ ॥

राग जयतश्री ।

कहु कपि कब रघुनाथ कृपा करि, हरिहैं निज वियोग-संभव दुख ।
राजिवनयन मयन-अनेक-छबि रविकुल-कुमुद सुखद मयंक-मुख ॥

विरह-अनल स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक ।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहिं तक ॥
सुदृढ़ ज्ञान अवलंबि सुनहु सुत ! राखति प्रान बिचारि दहन मत ।
सगुन रूप, लीला-बिलास-सुख सुमिरति करति रहति अंतरगत ॥
सुनु हनुमंत ! अनंत-बंधु करुना सुभाव सीतल कोमल अति ।
तुलसिदास यहि त्रास जानि जिय बरु दुख सहैं प्रगट कहि न सकति॥८॥

राग केदारा

कबहुँ, कपि ! राघव आवहिंगे ? ।
मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥
बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज-वियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ।
यह अभिलाप रैन दिन मेरे राज बिभीषन कब पावहिंगे ॥
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे ? ॥१०॥

सत्य बचन सुनु मातु जानकी ! ।
जन के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥
तुव वियोग-संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबान की ।
ननु कहु कहँ रघुपति-सायक-रवि, तम-अनीक कहँ जातुधान की ॥
कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की ।
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कान की ॥
तुव दरसन, सँदेस सुनि हरि को बहुत भई अवलंब प्रान की ।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के प्रेम मगन नहिं सुधि अपान की ॥११॥

१—एकहि तक = एकताक, एकतार, एकरस ।

राग कान्हरा

रावन ! जु पै राम रन रोपे ।
को कहि सकै सुरासुर समरथ बिसिप काल-दसननि तें चोपे ॥१॥
तपबल, भुजबल कै सनेह-बल सिव बिरंचि नीकी बिधि तोपे ।
सो फल राजसमाज सुवनजन, आपुन नास आपने पोपे ॥
तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोपे ।
परसुराम से सूर-सिरोमनि पल में भए खेत के धोपे ॥
कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोपे ।
कह्यो कुमंत्रिन को न मानिए, बड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोपे ॥
जासु प्रसाद जनमि जग पुरपनि सागर सृजे, खने अरु सोखे ।
तुलसिदास सो स्वामि न सूझ्यो नयन बीस मंदिर के से मोखे ॥१२॥

राग मारू

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो ।
तौ यहि रिस तोहिं सहित दसानन जातुधान दल दलतो ॥
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो ।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो ॥
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छल तो ।
लंकनाथ ! रघुनाथ-बैरु-तरु आजु फैलि फूलि फलतो ॥
कालकरम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो ।
ता रिपु सों पर भूमि रारि रन जीवन मरन सुथल तो ॥
देखी मैं दसकंठ-सभा सब, मोंते कोउ न सबल तो ।
तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो ॥ १३ ॥

१२—मोखे = गवाक्ष, झरोखा ।

१३—रसराज = पारा । खलतो = खरल में डालकर घोंट डालता । बिनु छल तो = बिना छल के था अर्थात् होता । अरि उर······गलतो = इस प्रकार एक एक शत्रु को (अर्थात् उनके बल को) समझ बूझ कर भी ।

तौलौं, मातु! आपु नीके रहिबो।
जौलों हौं ल्यावौं रघुबीरहिं, दिन दस और दुसह दुख सहिबो ॥
सोखि कै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो ॥
बैरि-बृंद-विधवा-बनितनि को, देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो।
सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥
लंक-दाह डर आनि मानिबो साँचु राम सेवक को कहिबो।
तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु दव दहिबो ॥१४॥

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ॥
कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पियके जियकी जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥
मीचते नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु प्रीति सों असीस दीन्हीं ह्वै है तिहारोई मन भायो ॥
करुना कोप लाज भय भरो कियो गौन, मौन हीं चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ तुलसीरसना रूखी वाही ते परत गायो ॥१५॥

राग वसंत

रघुपति! देखो आयो हनूमंत। लंकेस-नगर खेल्यो बसंत।
श्रीराम-काजहित सुदिन सोधि। साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥
सिय-पाँय पूजि आसिषा पाइ। फल अमिय सरिस खायो अघाइ ॥
कानन दलि होरी रचि बनाइ। हठि तेल बसन बालधि बँधाइ ॥

१५—गहबरि आयो = करुणा से भर आया। मीच ते नीच······प्रेम पायो = (सीताजी का ऐसा विरह दुःख देखकर) हनुमान जी को अपनी अमरता मृत्यु से भी अधिक दुःखदायिनी लगी, और उन्होंने इस स्थल पर बल छल का अवसर न देख अपने प्रेम को बहुत कठोर और दारुण पाया। समौ = प्रसंग अवसर।

लिए ढोल चले सँग लोग लागि। बरजोर दई चहुँ ओर आगि॥
आसत आहुति किए जातुधान। लखि लपट भभरि भागे बिमान॥
नभतल कौतुक, लंका बिलाप। परिनाम पचहि पातकी पाप॥
हनुमान-हाँक सुनि बरषि फूल। सुर बार बार बरनहिं लँगूर॥
भरि भुवन सकल कल्यान-धूम। पुर जारि बारिनिधि बोरि लूम।
जानकी तोपि पोषेउ प्रताप। जय पवन-सुवन दलि दुअन-दाप॥
नाचहिं कूदहि कपि करि बिनोद। पीवत मधु मधुबन मगन मोद॥
यों कहत लषन गहे पाँय आइ। मुनि सहित मुदित भेंट्यो उठाइ॥
लगे सजन सेन भयो हिय हुलास। जय जय जस गावत तुलसिदास॥१६॥

राग जयतश्री

सुनहु राम बिश्रामधाम ! हरि जनकसुता, अति बिपति जैसे सहति।
हे सौमित्रि-बंधु करुनानिधि मन महँ, रटति प्रगट नहिं कहति॥
निजपद-जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहत न एक छन।
मनहुँ नील नीरज ससि-संभव रबि बियोग दोउ स्रवत सुधाकन॥
बहु राचसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहुँ दुष्ट इंद्रिय संकट महँ बुद्धि-बिवेक-उदय मगु जोवति॥
सुनि कपि बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एक मन।
तुलसिदास दुख-सुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृत जन॥१७॥

राग केदारा

रघुकुल-तिलक बियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहु बिरह-मूरति मन मारे॥
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर, मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निजपद-कमल निहारे॥
दरसन-आस-लालसा मन महँ राखे प्रभु ध्यान-प्रान-रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन-गन-सुमन सँवारे॥१८॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति।
राम-बियोग असोक-बिटप वर सीय निमेष कलप सम टारति।
बार बार वर बारिजलोचन भरि भरि वरत बारि उर ढारति।
मनहुँ बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।
तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अंतरगति हारति॥ १९॥

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न।
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कोन।
'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन।
जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धरयो तिहुँ पौन।
तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन॥२०॥

कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भए, भरे सलिल सरसीरुह नैन।
सिय-बियोग-सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित चैन।
लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन।
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल ब्याकुल उर ऐन।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह सर पैन।
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन सके उत्तरु दै न।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैनहिं कह्यौ चलहु सजि सैन॥२१॥

१९—बरत = तपता हुआ, गरम। टारति = तरेरा या पानी की धारा देती है।

२०—गौन = गौण, अर्थात् कहने में उसका महत्त्व नहीं आ सकता कम सा हो जाता है।

राग मारू

जब रघुवीर पयानो कीन्हों ।
छुभित सिंधु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्हों ।
सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारि ।
जटापटल ते चली सुरसरी सकत न संभु सँभारि ।
भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दसचारि ।
खरभर लंक, ससंक दसानन, गर्भ स्रवहिं अरि-नारि ।
कटकटात भट भालु बिकट मरकट करि केहरि-नाद ।
कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी-उपरा बदि बाद ।
गिरि-तरुधर नख मुख कराल रद कालहु करत बिषाद ।
चले दस दिसि रिस भरि, धरु धरु कहि, को बराक मनुजाद ?
पवन पंगु, पावक पतंग ससि दुरि गए, थके बिमान ।
जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान ।
गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान ।
नभ निसान हनुमान हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान ।
दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धरि धीर ।
बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर ।
चली चमू, चहुँ ओर सोर, कछु बनै न बरने भीर ।
किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि-तीर ।
जातुधानपति जानि कालबस मिले बिभीषन आइ ।
सरनागत-पालक कृपालु कियो तिलक, लियो अपनाइ ।
कौतुकहीं बारिधि बँधाइ उतरे सुबेल तट जाइ ।
तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभु आगमन सुनाइ ॥ २२ ॥

राग आसावरी

आए देखि दूत सुनि सोच सठ मन मैं ।

२२—अग = पर्वत ।

बाहर बजावैं गाल भालु-कपि कालबस,
मोसे बीर सों चहत जीत्यो रारि रन मैं ।
राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि
घालि को गनत? रीछ जल ज्यौं न घन मैं ।
काज को न कपिराज, कायर कपिसमाज,
मेरे अनुमान हनुमान हरि गन मैं ।
समय सयानी मृदु बानी रानी कहै 'पिय!
पावक न होइ जातुधान-बेनु-बन मैं ।
तुलसी जानकी दिए स्वामी सों सनेह किये
कुसल, नतरु सब ह्वै है छार छन मैं ॥ २३ ॥
आपनी आपनी भाँति सब काहू कही है ।
मंदोदरी, महोदर, मालवान महामति,
राजनीति-पहुँच जहाँ लौं जाकी रही है ।
महामद-अंध दसकंध न करत कान;
मीचु-बस नीच हठि कुगहनि गही है ।
हँसि कहै सचिव 'सयाने मोसों यों कहत,
चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है ।
भालु, नर, बानर अहार निसचरनि को,
सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है ।
देखो कालकौतुक पिपीलिकनि पंख लागे,
भाग मेरे लोगनि के भई चित-चही है ।
तोसों न तिलोक आजु साहस समाज-साजु,
महाराज-आयसु भो जोई सोई सही है ।

२३—घालि = घलुआ अर्थात् कुछ नहीं । रीछ...घन मैं = शामथंत जलहीन बादल के समान अर्थात् निस्सार है ।

तुलसी प्रनाम कै बिभीषन बिनती करै
'ख्याल, बेधे बाल, कपि केलि लंका दह्यो है' ॥ २४ ॥

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।
बेदऊ पुरान कवि कोविद बिरद-रत,
जाको जस सुनत, गावत गुन ग्रामै।
माया, जीव, जग-जाल, सुभाउ, करमकाल,
सबको सासकु, सबमैं; सब जामैं।
बिधि से करनिहार, हरि से पालनिहार,
हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं।
सोइ नरबेष जानि, जन की बिनती मानि,
मतो नाथ सोई जा तें भलो परिनामै।
सुभट-सिरोमनि कुठारपानि सारिखेहू
लखी औ लखाई इहाँ किए सुभसामैं।
बचन-बिभूषन बिभीषन-बचन सुनि
लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बामैं।
तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात, भले तात
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं ॥ २५ ॥

जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करति बिभीषन को बार बार,
'कहा भयो तात लात मारे, बड़ो भाई है।
साहिब पितु समान, जातुधान को तिलक,
ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है।
गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति,
रोष किए दोष, सहें समुझें भलाई है।
इहाँ तें बिमुख भये, राम की सरन गए
भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है।

मातु पग सीस नाइ, तुलसी असीस पाइ
चले भले सगुन कहत मन भाई है ॥ २६ ॥

भाई को सो करौं डरौं कठिन कुफेरै।
सुकृत-संकट परयो जात गलानिन्ह गरयो,
'कृपानिधि को मिलौं पै मिलि कै कुबेरै'।
जाइ गहे पाँय, धाइ धनद उठाइ भेट्यो,
समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरै।
तहँई मिले महेस, दियो हित-उपदेस,
'राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै।
जाको नाम कुंभज कलेस-सिंधु सोखिबे को,
मेरो कह्यो मानि, तात! बाँधे जिनि बेरै।
तुलसी मुदित चले, पाए हैं सगुन भले,
रंक लूटिबे को मानों मनिगन-ढेरै ॥ २७ ॥

राग केदारा

संकर सिख आसिष पाइकै।
चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै।
गए सोच, भए सगुन सुमंगल दस दिसि देव देखाइकै।
सजल नयन, सानंद हृदय तनु प्रेम पुलक अधिकाइकै।
अंतहु भाय भली भाई को कियो अनभलो मनाइकै।
भइ कूबर की लात बिधाता राखी बात बनाइकै।
नाहित क्यों कुबेर घर मिलि हर हितु कहते चित लाइकै।
जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइकै।
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै।

२७—सुकृत-संकट = धर्मसंकट।

२८—कूबर की लात = ऐसी लात जिससे कुबड़ी पीठ सीधी हो जाय, अर्थात् बात बन जाय।

कृपासिंधु सनमानि जानि जन दीन लियो अपनाइकै।
स्वारथ परमारथ करतलगत समपथ गयो सिराइकै।
सपने कै सौतुक सुख-सस सुर सींचत देत निराइकै।
गुरु गौरीस साँइ सीतापति हित हनुमानहिँ जाइकै।
मिलिहौं मोहिं कहा कीबे अब अभिमत अवधि अघाइकै।
मरतो कहाँ जाइ को जानै लटि लालची ललाइकै।
तुलसिदास भजिहौं रघुबीरहि अभय-निसान बजाइकै॥ २८॥

पदपद्म गरीबनिवाज के।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन-फल हित सुर साधु समाज के।
गई-बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के।
सबरी सुखद, गीध गतिदायक, समनसोक कपिराज के।
नाहिंन मोहिं और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के।
आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन बाज के।
आरतिहरन सरन समरथ सब दिन अपने की लाज के।
तुलसी पाहि कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकाज के॥ २९॥

महाराज राम पहँ जाउँगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउँगो।
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहिं सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं ठाकुर ठाउँ गो।
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो?
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो।
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो॥ ३०॥

२८—सस=शस्य, खेती बारी।
३०—ठाकुर ठाउँ गो=ठाकुर और ठिकाना नहीं रह गया।

आइ सचिव बिभीषन के कही ।
कृपासिंधु दसकंधबंधु लघु चरन-सरन आयो सही।
बिषम-बिषाद-बारिनिधि बूड़त थाह कपीस कथा लही ।
गये दुख दोष देखि पदपंकज अब न साध एकौ रही ।
सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई निरखही ।
तुलसी मुदित दूत भयो मानहुँ अमिय-लाहु माँगत मही ॥ ३१ ॥

बिनती सुनि प्रभु प्रमुदित भए ।
रीछराज, कपिराज, नील, नल बोलि बालिनंदन लए ।
बूझिये कहा? रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दए ।
बली बंधु वाको जेहिं बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए ।
बाँह-पगार द्वार तेरे तैं सभय न कबहूँ फिरि गए।
तुलसी असरन-सरन स्वामि के बिरद बिराजत नित नए॥ ३२ ॥

हिय बिहँसि कहत हनुमान सों ।
सुमति साधु सुचि सुहृद-बिभीषन, बूझि परत अनुमान सों ।
'हौं बलि जाउँ, और को जानै?' कहौ कपि कृपानिधान सों ।
छली न होइ स्वामि सनमुख ज्यों तिमिर सातहय-जान सों ।
खोटो खरो सभीत पालिए सो सनेह सनमान सों ।
तुलसी प्रभु कीबो जो भलो सोइ बूझि सरासन बान सों॥ ३३ ॥

साँचेहु बिभीषन आइ है ?
बूझत बिहँसि कृपालु, लषन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ है ।
ऐहै कहा, नाथ ? आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है ।
रावन-रिपुहि राखि रघुबर बिनु को त्रिभुवनपति पाइ है ।
प्रभु प्रसन्न सब सभा सराहति दूत-बचन मन भाइ है ।
तुलसी बोलिये बेगि लषन सों भइ महराज रजाइ है ॥ ३४ ॥

३३—सातहय-जान—सात घोड़े जिसके यान में जुते हैं अर्थात् सूर्य ।

चले लेन लषन हनुमान हैं।
मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं।
भयो रजायसु पाँव धारिए, बोलत कृपानिधान हैं।
दूरि तें दीनबंधु देखे जनु देत अभय बरदान हैं।
सील सहस हिमभानु तेज सत कोटि भानुहूँ के भानु हैं।
भगतनि को हित कोटि मातुपितु, अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं।
जन गुन रज गिरि गनि सकुचत निज गुन गिरि रज परमानु हैं।
बाँह-पगारु बोल को अविचल, बेद करत गुनगान हैं।
चारु चाप तूनीर तामरस करनि सुधारत बान हैं।
चरचा चलति बिभीषन की सोइ सुनत सुचित दै कान हैं।
हरषत सुर बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं।
तुलसी ते कृतकृत्य जे सुमिरत समय सुहावनो ध्यान हैं॥ ३५॥

रामहिं करत प्रनाम निहारिकै।
उठे उमँगि आनंद-प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारिकै।
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत ज्यों भेंट्यौ भुजा पसारिकै।
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारिकै।
नाथ! कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत लेत जे नाम रावरो बिनय करत मुख चारि कै।
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै॥ ३६॥

करुनाकर की करुना भई।
मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ, काहू सों न खुनिस खई।
दसमुख तज्यो दूध-माखी ज्यों आपु काढि साढ़ी लई।

३५—हिमभानु = चंद्रमा।

भव-भूपन सोइ कियो विभीपन मुद-मंगल-महिमामई ।
विधि हरि हर मुनि सिद्ध सराहत, मुदित देव दुंदुभी दई ।
बारहिं बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई ।
कौसिक सिला जनक संकट हरि भृगुपति की टारी टई ।
खग मृग सबर निसाचर सबकी पूँजी विनु बाढ़ी सई ।
जुग जुग कोटि कोटि करतब करनी न कछू बरनी नई ।
राम-भजन-महिमा हुलसी हिय तुलसीहू की बनि गई ॥ ३७ ॥

मंजुल मूरति मंगलमई ।
भयो बिसोक बिलोकि विभीपन नेह देह सुधिसाँव गई ।
उठि दाहिनी ओर तें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई ।
नखसिख निरखि निरखि सुख पावत, भावत कछु कछु और भई ।
बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई ।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन ज्यों दई ।
प्रीति-प्रतीति-रीति-सोभासरि थाहत जहँ जहँ तहँ घई ।
बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वविजयी जई ।
को दयालु दूसरो दुनी जेहि जरनि दीन-हिय की हई ? ।
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥ ३८ ॥

सब भाँति विभीपन की बनी ।
कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति घनी ।
सखा लपन हनुमान संभु गुरु धनी राम कोसलधनी ।
हिय ही और और कीन्हीं विधि, रामकृपा औरै ठनी ।
कलुप-कलंक कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी ।
सोइ पद पाय विभीपन भो भव-भूपन दलि दूपन-अनी ।
बाँह-पगार उदार-सिरोमनि नत-पालक पावन-पनी ।
सुमन बरपि रघुवर-गुन बरनत हरपि देव दुंदुभी हनी ।

३७—टई=टही, घात । सई=वृद्धि, बरकत ।

रंक-निवाज रंक राजा किए, गए गरब गरि गरि गनी ।
राम-प्रनाम महा महिमा-खनि सकल सुमंगलमनि जनी ।
होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी ।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ॥ ३९ ॥

कहो क्यों न बिभीषन की बनै ?
गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चारयौं जनै ।
मंगलमूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै ।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ? ।
नाम-प्रताप पतित-पावन किए जे न अघाने अघ अनै ।
कोउ उलटो कोउ सूधो जपि भए राजहंस वायस-तनै ।
हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै ।
सो तुलसी चातक भयौ जाँचत राम स्याम सुंदर घनै ॥ ४० ॥

अति भाग बिभीषन के भले ।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भए दुरित दोष दारिद दले ।
रावन कुंभकरन बर माँगत सिव बिरंचि वाचा छले ।
राम-दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले ।
मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले फले ।
तुलसी सुनि सनमान बंधु को दसकंधर हँसि हिये जले ॥ ४१ ॥

गये राम सरन सबकौ भलो ।
गनी-गरीब, बड़ो छोटो, बुध मूढ़, हीनबल अति बलो ।
पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो ।
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो ।
नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो ।
सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो ।

३९—मनी = [फा०] अभिमान ।

प्रभुपद-प्रेम प्रनाम कामतरु सद्य बिभीषन को फलो ।
तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थलो॥ ४२ ॥

सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ! आयो सरन।
उपल केवट गीध सबरी संसृत-समन,
सोक स्रमसींव सुग्रीव आरतिहरन।
राम राजीव लोचन बिमोचन बिपति,
स्याम नव तामरस-दाम बारिद-बरन।
लसत जट जूट सिर चारु मुनि चीर कटि,
धीर रघुबीर तूनीर-सर-धनु-धरन।
जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम
बंधु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन।
पतितपावन प्रनतपाल करुनासिंधु!
राखिए मोहिं सौमित्रि-सेवित-चरन।
दीनता प्रीति संकलित मृदुबचन सुनि
पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन।
बोलि, लंकेस कहि अंक भरि भेंटि प्रभु,
तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद-दरन।
रातिचर-जाति आराति सब भाँति गत,
कियो सो कल्यान-भाजन सुमंगल करन।
दास तुलसी सदय हृदय रघुबंसमनि
पाहि कहे काहि कीन्हों न तारनतरन? ॥ ४३ ॥

दीन-हित बिरद पुराननि गायो।
आरत-बंधु, कृपालु, मृदुल-चित जानि सरन हौं आयो।
तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन सील सुभाउ नाथ को मैं चरननि चितु लायो।
जानत प्रभु दुख सुख दासनि को तातें कहि न सुनायो।

करि करुना भरि नयन बिलोकहु तब जानौं अपनायो ।
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो ।
भेंट्यो हरि भरि अंक भरत ज्यौं लंकापति मन भायो ।
कर पंकज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो ।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो ? ॥ ४४ ॥

राग धनाश्री

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्हसन कौन दुराउ ।
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ ।
आयो सरन भजौं, न तजौं तिहि, यह जानत ऋषिराउ ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिंन और उपाउ ।
तिनहिं लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ ।
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ ।
नहिं कोऊ प्रिय मोहिं दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ।
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥ ४५ ॥

नाहिन भजिबे जोग बियो ।
श्रीरघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो ।
कहहु कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो ? ।
कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ? ।
कौन देव सबरी के फल करि भोजन सलिल पियो ? ।
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाहँ लियो ?।
भजन प्रभाउ बिभीषन भाष्यौ सुनि कपि-कटक जियो ।
तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो ॥ ४६ ॥

४६—बरियो = बली ।

राग जयतश्री

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल-कृपाअयन, मयननि बहु छवि अंगनि दूरति ।
सिरसि जटा-कलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीरकी सोभा सुमिरि, भई है मगन नहिं तनकी सूरति ॥४७॥

राग केदारा

कहु कबहुँ देखिहौं आली ! आरज सुवन ।
सानुज सुभग-तनु, जब तें बिछुरे बन, तब तें दव सी लगी तीनिहूँ भुवन ।
मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये, मन के करन चाहैं चरन छुवन ।
चित चढ़िगो बियोग दसा न कहिबे जोग, पुलकगात, लागे लोचन चुवन ।
तुलसी त्रिजटा जानी सिय अति अकुलानी मृदु बानी कह्यौ ऐहैं दवन-दुवन ।
तमीचर-तमहारी सुरकंज सुखकारी, रविकुल-रवि अब चाहत उवन ॥४८॥

अबलों मैं तोसों न कहे री ।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ।
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री ।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ।
सर-सरीर सूखे प्रानबारिचर जीवन आस तजि चलनु चहे री ।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री ।
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर सहित हुते जात बहे री ।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री ।
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि रहे री ।
अब सखि सिय संदेह परिहरु हिय आइ गए दोउ बीर अहेरी ॥४९॥

राग बिलावल

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै ?
जा दिन बंध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम आनि मोहिं सुनैहै ।
बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै ।

कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, विबुध-समाज विलोकन धैहै ।
दिव्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल विमल विमाननि छैहैं ।
बरषिहैं कुसुम भानुकुल-मनि पर, तब मोको पवनपूत लै जैहै ।
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ, तनु-छवि कोटि मनोज हितैहै ।
इन नयनन्हि यहि भाँति प्रानपति, निरखि हृदय आनँद न समैहै ।
बहुरो सदल, सनाथ, सलछिमन, कुसल कुसल विधि अवध देखैहै ।
गुरु, पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै ।
मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहै माँगने जो जेहि भैहै ।
विजय राम राजाधिराज को, तुलसिदास पावन जस गैहै ॥ ५० ॥

सिय ! धीरज धरिये राघौ अब ऐहैं ।
पवनपूत पै पाइ तिहारी सुधि सहज कृपालु विलंब न लैहैं ।
सेन साजि कपि भालु काल सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं ।
घेराइ पै देखिबो लंकगढ़ विकल जातुधानी पछितैहैं ।
रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ।
तिलक सारि अपनाय विभीषन अभय-बाँह दै अमर बसैहैं ।
जय धुनि सुनि बरषिहैं सुमन सुर, व्योम विमान निसान बजैहैं ।
बंधु समेत प्रानवल्लभपद परसि सकल परिताप नसैहैं ।
राम बाम दिसि देखि तुमहि सब नयनवंत लोचन फल पैहैं ।
तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं ।
यह सोभा सुख समय विलोकत काहू तो पलकैं नहि लैहैं ।
कपिकुल लखन सुजस जय जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं ।
प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं ॥ ५१ ॥

लंका कांड

राग मारू

मानु अजहूं सिख परिहरि क्रोधु।
पिय पूरो आयो अब काहि कहु करि रघुबीर-बिरोधु।
जेहि ताडुका सुबाहु मारि मख राखि जनायो आपु।
कौतुक ही मारीच-नीचमिस प्रगट्यो बिसिख-प्रतापु।
सकल भूप बल गरब-सहित तोर्‌यो कठोर सिवचापु।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग हर्‌यो परसुधर-दापु।
कपट काक साँसति प्रसाद करि बिनु स्रम बध्यो बिराधु।
खर दूषन त्रिसिरा कबंध हति कियो सुखी सुर साधु।
एकहि बान बालि मार्‌यो जेहि जो बल-उदधि अगाधु।
कहु धौं कंत कुसल बीती केहिं किये राम-अपराधु।
लाँघि न सके लोक-बिजयी तुम जासु अनुज-कृत-रेखु।
उतरि सिंधु जार्‌यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेषु।
कृपासिंधु खलबन-कृसानु सम, जस गावत स्रुति सेषु।
सोइ बिरुदैत बीर कोसलपति नाथ समुझि जिय देखु।
मुनि पुलस्त्य के जस-मयंक महँ कत कलंक हठि होहि।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यों जगु जोहि।
चलु मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहिं।
तुलसिदास प्रभु सरन सबद सुनि अभय करैंगे तोहिं ॥ १ ॥

राग कान्हरा

तू दसकंठ भले कुल जायो।
तामहँ सिव-सेवा बिरंचिबर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो।

खर, दूपन, त्रिसिरा, कबंध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो ।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ संदेस कहन हौं आयो ।
श्रीमद नृप-अभिमान मोहवस जानत अनजानत हरि लायो ।
तजि व्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समझायो ।
जातें तव हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो ।
नाहिंत रामप्रताप-अनल मह ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ।
जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यौ तथापि न कछु मन भायो ।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो ॥ २ ॥

तै मेरो मरम कछू नहि पायो ।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर! मोहिं दास ज्यों डाटन आयो ।
भ्राता कुंभकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि कर ल्यायो ।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक लौं कैलास उठायो ।
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो ।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तनु ताको जस खल मोहि सुनायो ।
कहा भयो बानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिंधु बँधायो ।
जो तरिहै भुज बीस घोरनिधि ऐसो को त्रिभुवन मैं जायो? ।
सुनि दससीस-बचन कपि-कुंजर बिहँसि ईसमायहि सिर नायो ।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो ॥ ३ ॥

सुनु खल मैं तोहिं बहुत बुझायो ।
एते मान सठ भयो मोहबस जानतहूँ चाहत विष खायो ।
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल जानत हौ किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर सरनागत पर प्रेम देखायो ।
पावहुगे निज करम जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो ।
हौं ही दसन तोरिबे लायक कहा करौं जो न आयसु पायो ।
अब रघुबीर बान बिदलित उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो ।

अविचल राज्य विभीषन को सब जेहि रघुनाथ चरन चित लायो ।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो ॥४॥

राग केदारा

राम लपन उर लाय लयें हैं ।
भरे नीर राजीवनयन सब अँग परिताप तये हैं ॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथये हैं ।
सेवक सखा भगति भायप गुन चाहत अब अथये हैं ॥
निज कीरति करतूति, तात ! तुम सुकृती सकल जये हैं ।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं ॥
मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं ।
लागति साँगि बिभीषन-ही पर सीपर आपु भये हैं ॥
सुनि प्रभु-बचन भालु कपि-गन सुर सोच सुखाइ गये हैं ।
तुलसी आइ पवनसुत-बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं ॥ ५ ॥

राग सोरठ

मोपै तौ न कछू ह्वै आई ।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लपन सो भाई ॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई ।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौं न प्रान पठाई ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिश कठिनता पाई ।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई ॥
तात-मरन तिय-हरन गीध-बध भुज दाहिनी गँवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ ६ ॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता ।

१—सीपर=[फा० सिपर] ढाल ।

ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वै है कहा विभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु-वचन भालु कपि सकल विकल हिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥ ७ ॥

राग मारू

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं ॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥
विबुध-बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु विलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसीप्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ८ ॥

सुनि हनुमंत-बचन रघुबीर ।
सत्य समीर-सुवन सब लायक कह्यो राम धरि धीर ॥
चहिए बैद, ईस-आयसु धरि सीस कीस बलऐन ।
आन्यो सदन-सहित सोवत ही जौलौं पलक परै न ॥
जियै कुँवर निसि मिलै मूलिका, कीन्हीं बिनय सुषेन ।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चल्यो सजीवनि लेन ॥
कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यौ द्रोनाचल जिय जानि ।
देखी दिव्य ओषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि ॥
लियो उठाय कुधर कंदुक ज्यों, बेग न जाइ बखानि ।
ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि ॥
आनि पहार जोहारे प्रभु, कियो बैदराज उपचार ।
करुनासिंधु बंधु भेंट्यो, मिटि गयो सकल दुख भार ॥

मुदित भालु-कपि-कटक लह्यो जनु समर-पयोनिधि पार।
बहुरि ठौरही राखि महीधर आयो पवनकुमार॥
सेन सहित सेवकहि सराहत पुनि पुनि राम सुजान।
बरषि सुमन हिय हरषि प्रसंसत विबुध बजाइ निमान॥
तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भए मनहुँ बिनु प्रान।
परी भोरही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान॥ ९॥

राग केदारा

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेग बियो है॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है।
दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है॥
आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्यो अकास सो कैसेकै जात सियो है॥ १०॥

भरत सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम लषन रन जीति अवध आए, कैधौं मोहिं भ्रम, कैधौं काहू कपट ठयो है।
प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहूँ भाइन सनेह सों सो उर लाय लयो है॥
समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठवौं, सुनि हरिहिय गरब गूढ़ उपयो है॥
तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है।
धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर-बंधु-महिमा को सिंधु तरि को कवि पार गयो है? ॥११॥

११—उपयो है = उत्पन्न हुआ है।

होतो नहिं जो जग जनम भरत को।
तौ कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरत को?
धीरज-धरम-धरनि धर-धुरहू तें गुरु धुर धरनि धरत को?
सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को?
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को।
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कह अभिमत फरनि फरत को? ॥१२॥

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
'तात! जाहु कपि सँग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
अंब-अनुज-गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥१३॥

बिनय सुनाइबी परि पाय।
कहौं कहा कपीस तुम्ह सुचि सुमति सुहृद सुभाय॥
स्वामि-संकट-हेतु हौं, जड़ जननि जनम्यो जाय।
समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय॥
कहत सिथिल सनेह भो जनु धीर घायल घाय।
भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय॥
भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन-मानस माय।
"लाल! लोने लषन-सहित सुललित लागत नाँय"॥
देखि बंधु-सनेह अंब-सुभाउ, लषन कुठाय।

१३—धनु = अर्थात् शत्रुघ्न। पैंत = पाँसा।

तपत तुलसी तरनि त्रासकु एहि नये तिहुँ ताय ॥१४॥

हृदय-घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै॥
मोहिं कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरै॥
तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै।
उपमा राम-लपन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै-नीरै॥ १५॥

राग कान्हरा

राजत राम काम-सत-सुंदर।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित, फेरत चाप बिसिष बनरुह-कर॥
स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर॥
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरपित सकल रिच्छ अरु बनचर।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि किए अभय मुनि नाग बिबुध नर।
तुलसिदास यह रूप अनूपम हिय सरोज बसि दुसह बिपतिहर॥१६॥

राग आसावरी

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वै हैं।
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि बूझ धौं पथिक कहाँ ते आए वै हैं॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकिगात लागे लोचन च्वै हैं।
निज बासरनि बरष पुरवैगो बिधि मेरे तहाँ करम कठिन कृत कै हैं॥
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुख स्वैहैं।
तुलसिदास मोसी कठोर-चित कुलिससाल-भंजनि को ह्वै हैं॥१७॥

आली! अब राम-लपन कित ह्वै हैं।
चित्रकूट तज्यौ तब तें न लही सुधि बधू-समेत कुसल सुत द्वै हैं॥

१६—बनरुह=कमल। हरिहित=इंद्रबधूटी, बीरबहूटी।

वारि बयारि विषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं ।
कंद मूल फल फूल असन बन, भोजन समय मिलत कैसे वैहैं ॥
जिन्हहिं बिलोकि सोचिहैं लता द्रुम खग मृग मुनि लोचन जल च्वैहैं ।
तुलसिदास तिन्हकी जननी हौं, मो सी निठुर चित और कहुँ ह्वै हैं॥१८॥

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥ १९ ॥

राग गौरी

छेमकरी बलि बोलि सुबानी ।
कुसल छेम सिय राम लषन कब ऐहैं, अंब ? अवध रजधानी ॥
ससिमुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि-सोचनि बेद बखानी ।
देवि ! दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥
सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी ।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि, मन प्रसन्न दुख-दसा सिरानी ।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥
तेहि अवसर हनुमान भरत सों कही सकल कल्यान-कहानी ।
तुलसिदास सोइ चाह सजीवनि विषम वियोगव्यथा बड़ि भानी ॥२०॥

२०—चाह = खबर, समाचार ।

राग धनाश्री

सुनियत सागरसेतु बँधायो।
कोसलपति की कुसल सकल सुधि कोउ इक दूत भरत पहँ ल्यायो॥
बध्यो विराध त्रिसिर खर दूषन, सूर्पनखा को रूप नसायो।
हति कबंध, बल-अंध बालि दलि कृपासिंधु सुग्रीव बसायो॥
सरनागत अपनाइ बिभीषन रावन सकुल समूल बहायो।
बिबुध-समाज निवाजि बाँह दै बंदिछोर बर बिरद कहायो॥
एक एक सों समाचार सुनि नगरलोग जहँ तहँ सब धायो।
घन-धुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों बूड़त जलधि पार सो पायो॥
'अवधि आजु', यों कहत परसपर बेगि बिमान निकट पुर आयो।
उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन सिर नायो।
जो जेहि जोग राम तेहि बिधि मिलि सबके मन अति मोद बढ़ायो।
भेंटी मातु, भरत, भरतानुज, क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।
तेही दिन मुनिवृंद अनंदित तुरत तिलक को साज सजायो॥
महाराज रघुबंस-नाथ को सादर तुलसिदास गुन गायो॥२१॥

राग जयतश्री

रन जीति राम राउ आए।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनंद-बधाए॥
अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बसाए।
धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाये॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए॥
मिलि गुरु बंधु मातु जन परिजन भए सकल मन भाए।
दरस-हरष दसचारि बरष के दुख पल में बिसराए॥
बोलि सचिव सुचि सोधि सुदिन मुनि मंगल साज सजाए।

२१—अनमायो = जिसकी माप नहीं हो सकती।

महाराज अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए ॥
लै लै भेंट नृप अहिप लोकपति अति सनेह सिर नाए ।
पूजि प्रीति पहिचानि राम आदरे अधिक अपनाए ॥
दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए ।
गये सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए ॥
प्रभु, प्रताप-रवि अहित-अमंगल-अघ-उलूक-तम ताए ।
किये बिसोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए ॥
राम राज कुलकाज सुमंगल सबनि सबै सुख पाए ।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए ॥
आस्रम-धरम-बिभाग बेदपथ पावन लोग चलाए ।
धर्म-निरत सिय-राम-चरन-रत मनहुँ राम-सिय-जाए ॥
कामधेनु महि बिटप कामतरु कोउ बिधि बाम न लाये ।
ते तब, अब तुलसी तेउ जिन्ह हित-सहित राम-गुन गाये ॥२२॥

राग टोड़ी

आजु अवध आनंद बधावन रिपु रन जीति राम आए ।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥
घर घर चारु चौक चंदन मनि, मंगल-कलस सबनि साजे ।
ध्वज पताक तोरन बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥
राम-तिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिये ।
सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरप हिये ॥
मंगल गान, वेदधुनि, जयधुनि मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे ।
बरपि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे ॥
राम-राज भइ कामधेनु महि सुख संपदा लोक छाए ।
जनम जनम जानकीनाथ के गुनगन तुलसिदास गाए ॥ २३ ॥

उत्तर कांड

राग सोरठ

बन तें आइकै राजा राम भए भुआल।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल॥
मिटे कलुष कलेस कुलषन कपट कुपथ कुचाल।
गए दारिद दोष दारुन दंभ दुरित दुकाल॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल।
नारि नर तेहि समय सुकृती भरे भाग सुभाल॥
बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल।
राम-सिय-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध सुर दिगपाल।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल॥ १॥

राग ललित

भोर जानकीजीवन जागे।
सूत मागध प्रबीन, बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे॥
स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे।
उनीं दे लोचन चारु, मुख सुषमा सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे॥
सहज सुहाई छबि, उपमा न लहैं कबि, मुदित बिलोकन लागे।
तुलसिदास निसि बासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे॥२॥

राग कल्यान

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई।
देखो सखि अतुलित छबि, संत कंज-कानन-रबि,
गावत कल कीरति कबि कोबिद समुदाई॥

मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर,
सेवत पद कमल धीर निरमल चित लाई ।
ब्रह्ममंडली-मुनींद्रबृंद-मध्य इंदुवदन
राजत सुखसदन लोकलोचन-सुखदाई ॥
बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई ।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥
ललित भ्रुकुटि तिलक भाल चिबुक अधर द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई ।
मधुकर जुग पंकज बिच सुक बिलोकि नीरज पर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई ॥
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित बिबिध बिधि बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीरपाँति रुचिर,
हेमजाल अंतर परि ताते न उड़ाई ॥
शंकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि-चंचरीक,
निर्व्यलीक मानस-गृह संतत रहे छाई ।
अतिसय आनंदमूल तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥ ३ ॥

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर
हरन सकल सरजुतीर निरखहु, सखि ! सोई ।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग-करन,
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ॥

३—बीच कियो = बीच बिचाव किया, बीच में पड़ कर झगड़ा छुड़ाया । निर्व्यलीक = कपट-रहित ।

सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नील
कुंचित कच, कुंडल कल नासिक चित पोहैं ।
मनहुँ इंदुबिंब मध्य कंज मीन खंजन लखि
मधुप मकर कीर आए तकि तकि निज गौं हैं ॥
ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक-अंक, रुचिर बंक भौहैं ।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन दमक दामिनि द्युति,
हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवनि तिरछौं हैं ॥
कंबु कंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं ।
जनु कलिंदनंदिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि
धँसति लसति हंससेनि संकुल अधिकौहैं ॥
दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय,
चंचला कलाप कनक निकर अलि किधौं हैं ।
सज्जन-चख-झख-निकेत, भूपन मनिगन समेत,
रूप-जलधि-बपुप लेत मन-गयंद बोहैं ॥
अकनि बचन चातुरी, तुरीय पेखि प्रेम मगन
पग न परत इत उत सब चकित तेहि समौ हैं ।
तुलसिदास यह सुधि नहिं कौन को, कहाँ तें आई,
कौन काज, काके ढिग, कौन ठाँव को हैं ॥ ४ ॥

देखु सखि ! आजु रघुनाथ सोभा बनी ।
नील-नीरद-बरन-बपुप, भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन दुति-दामिनी ॥
सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिए,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी ।

४—बोहैं लेत = डुब्बी लेता है, अवगाहन करता है ।

सजनि आवत भवन, मत्त-गजवर-गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी ॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर विलुलित मृदुल,
करनि विवरत चतुर सरस सुषमा जनी ।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहुँ ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुंदर, अधर अरुन, द्विज दुति सुघर,
बचन गंभीर, मृदुहास भव-भानवी ॥
स्रवन कुंडल, विमल गंड मंडित चपल,
कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी ।
जुगल कंचन-मकर मनहुँ विधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी ॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुविसाल चहुँ पास बनि गजमनी ।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥
मंदिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि वरषहि विपुल कुसुम कुंकुम-कनी ।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम सत कोटि मद हरत छबि आपनी ॥५॥

आजु रघुबीर छबि जाति नहि कछु कही ।
सुभग सिंहासनासीन सीतारमन,
भुवन अभिराम बहु काम सोभा सही ॥

२—धरहरि करत = बीच बिचाव करते हैं । तनी = तानी, फैलाई ।

चारु चामर व्यजन, छत्र मनिगन बिपुल,
दाम मुकुतावली जोति जगमगि रही ।
मनहुँ राकेस सँग हंस उडुगन बरहि
मिलन आए हृदय जानि निज नाथही ॥
मुकुट सुंदर सिरसि, भालवर तिलक भ्रू
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।
मनहुँ हर-डर जुगल मारध्वज के मकर
लागि स्त्रवननि करत मेरु की बतकही ॥
अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमासदन, हास त्रय-तापही ॥
विविध कंकन हार, उरसि गजमनि-माल
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलद ही ॥
पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही ।
ललित सायक चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुज तनु दनुजवन-दहन मंडन-मही ॥
जासु गुन रूप नहिं कलित निर्गुन सगुन,
संभु सनकादि सुक भक्ति दृढ़ करि गही ।
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन कर्म चहै प्रीति नित निर्वही ॥ ६ ॥

रामराज राजमौलि मुनिवर-मन-हरन सरन
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ, री ।
लोक लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,
रूप सीलधाम, अंग छवि अनंग को री ? ॥

६—मेरु की बतकही = मेल की बातचीत । त्रयतापही = तीनों तापों का हनन करनेवाला । तजि सहज = (चंचल) स्वभाव छोड़ कर ।

भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निर्मित मनि-रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहिं थोरी ।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंजवृंद प्रीति लागि
गुंजत कल गान तान दिनमनि रिझयो री ॥
अरुनकंज-दल-बिसाल लोचन भ्रू तिलक भाल
मंडित स्रुति कुंडल वर सुंदरतर जोरी ।
मनहुँ संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी ॥
सुंदर नासा कपोल चिबुक, अधर अरुन बोल
मधुरे दसन राजत जब चितवत मुख मोरी ।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराग-सिखर निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी ॥
कंबु कंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सो री !
जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप,
कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ॥
निर्मल अति पीत चैल-दामिनि जनु जलद नील,
राखी निज सोभाहित बिपुल बिधि निहोरी ।
नयनन्हि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन वेष
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ री ॥
सुंदर सीता समेत सोभित करुनानिकेत,
सेवक सुख देत लेत चितवत चित चोरी ।
बरनत यह अमित रूप थकित निगम नागभूप,
तुलसिदास छबि बिलोकि सारद भइ भोरी ॥ ७ ॥

७—पुरट = सोना, स्वर्ण । संबरारि = कामदेव, (प्रद्युम्न ने जो काम के अवतार थे शंबर को मारा था) । कंजराग = पद्मराग मणि । कंद = बादल । घोरि घोरी = गरज गरज कर ।

राग केदारा

सखि ! रघुनाथ-रूप निहारु ।
सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु ॥
स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारु ।
चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु ॥
रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हारु ।
मनहुँ सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिंदनिहारु ।
बदन सुषमासदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु ।
दासतुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥८॥

सखि ! रघुबीर-मुखछबि देखु ।
चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥
नयन-सुषमा निरखि नागरि ! सफल जीवन लेखु ।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु ॥
भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम-रेखु ।
भ्रमर द्वै रबिकिरनि ल्याए करन जनु उनमेखु ॥
सुमुखि ! केस सुदेस सुंदर सुमन-संजुत पेखु ।
मनहुँ उडुगन-निवह आए मिलन तम तजि द्वेषु ॥
स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु कबि करत बाद बिसेषु ।
नासिका द्विज अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु बेषु ॥
रूप बरनि न सकत नारद संभु सारद सेषु ।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद-सकल-नरेसु ॥ ९ ॥

८—रबिसुवन = अश्विनीकुमार ।
९—ससि पूरन मेखु = शरद पूर्णिमा का चंद्रमा जो मेष राशि में होता है । निवह = समूह ।

राग जयतश्री

देखौ राघव-बदन बिराजत चारु ।
जात न बरनि बिलोकत ही सुख, मुख किधौं छबि बर नारि सिँगार।
रुचिर चिबुक, रद-जोति अनूपम, अधर अरुन, सित हास निहारु ।
मनो ससिकर बस्यो चहत कमल महँ प्रगटत दुरत न बनत बिचारु॥
नासिक सुभग मनहुँ सुक सुंदर, चितवत चकित आचरज अपारु ।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर, रीझि चित चतुर अपनपौ वारु ॥
नयनसरोज, कुटिल कच, कुंडल भ्रुकुटि सुभाल तिलक सोभा-सारु ।
मनहुँ केतु के मकर, चाप सर गयो बिसारि भयो मोहित मारु ॥
निगम सेष सारद सुक संकर बरनत रूप न पावत पारु ।
तुलसिदास कहै कहौ धौं कौन बिधि अति लघुमति जड़ कूर गँवारु ॥१०॥

राग ललित

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,
सेवक सुरुप सोभा सरद-ससि सिहाई।
दसन-बसन लाल बिसद हास रसाल,
मानो हिमकर-कर राखे राजीव मनाई ॥
अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि, भाल
तिलक, चारु कपोल, चिबुक नासा सुहाई ।
बिथुरे कुटिल कच, मानहुँ मधु लालच अलि
नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ॥
स्रवन सुंदर सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप उपमा कही न जाई ।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप
कनक मकरजुत बिधि बिरची बनाई ॥११॥

११—दसन-बसन = रदच्छद = ओठ ।

राग भैरव

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छवि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिवेक-बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे॥
भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगुल कनक सर साजै॥
रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक-सुमन सेज सजि सोए॥
बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाए।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलिबिपुल सकौतुक आए॥
सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले॥
अधर अरुन-तर, दसन-पाँति बर, मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन-सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा॥
चारु चिबुक, सुकतुंड-बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममुख सुखद समन भवत्रासा॥१२॥

राग केदारा

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं॥
सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन जनु जनमी सिंगार-सबिता हैं॥
धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।

१३—घाहैं = दो उँगलियों के बीच की घाई (संधिस्थान)। साहैं = द्वार के ढाँचे की दोनों खड़ी लकड़ियाँ। त्रपा = लज्जा से। घाहैं दिवाई = धाड़ मार कर रुलाया।

जे पूजी कौसिक-मख ऋषयनि जनक गनप संकर गिरिजा हैं ॥
भवधनु दलि जानकी बिवाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं।
परसु पानि जिन्ह किए महामुनि जे चितए कबहूँ न कृपा हैं ॥
जातुधान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं ॥
दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहैं ॥
जे भुज बेद पुरान सेष सुक सारद सहित सनेह सराहैं।
कल्पलताहु की कल्पलता बर, कामदुहहु की कामदुहा हैं ॥
सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं, करतीहैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं ॥१३॥

राग भैरव

रामचंद्र-करकंज कामतरु बामदेव-हितकारी।
सियसनेह-बर-बेलि-बलित बर प्रेमबंधु बर बारी ॥
मंजुल-मंगल मूल मूल-तनु करज मनोहर साखा।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन अभिलाषा ॥
अबिचल अमल अनामय अबिरल ललित रहित-छल-छाया।
समन सकल संताप पाप रुज मोह मान मद माया ॥
सेवहिं सुचि मुनि-भृंग-बिहग मन-मुदित मनोरथ पाए।
सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमँगि गुन गाए ॥१४॥

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
शंकर-हृदय भगति भूतल पर प्रेम-अछयबट भ्राजै ॥
स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी।
जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥
अंकुस कुलिस कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग बिलासा।
मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा ॥

बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे ॥१५॥

राग बिलावल

रघुबर-रूप बिलोकु नेकु मन।
सकल लोक-लोचन-सुखदायक नखसिख सुभग स्यामसुंदर तन ॥
चारु चरन-तल-चिह्न चारि फल चारि देत पर चारि जानि जन।
राजत नखजनु कमल-दलनि पर अरुन-प्रभा-रंजित तुषार-कन ॥
जंघा जानु जानु कदलि उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन।
रुचिर निषंग, नाभि रोमावलि त्रिवलि-वलित उपमा कछु आव न ॥
भृगुपद-चिह्न पदिक उर सोभित मुकुतमाल कुंकुम अनुलेपन।
मनहुँ परस्पर मिलि पंकज रवि प्रगट्यो निज अनुराग सुजस घन ॥
बाहु बिसाल ललित सायक धनु, कर कंकन केयूर महाधन।
बिमल दुकूल दलन दामिनि-दुति यज्ञोपवीत लसत अति पावन ॥
कंबुग्रीव, छबिसींव चिबुक द्विज, अधर कपोल, बोल भय-मोचन।
नासिक सुभग कृपापरिपूरन, तरुन अरुन राजीव बिलोचन ॥
कुटिल भृकुटिबर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुंदरता स्रवन बिभूषन।
मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन ॥
कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर जटित ज्योतिमय बहु बिधि मनिगन।
तुलसिदास रबिकुल-रबि-छबि कबिकहि नसकतसुकसंभुसहसफन ॥१६॥

राग कान्हरा

देखौ रघुपति-छबि अतुलित अति।
जनु तिलोक सुखमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग अंगनि प्रति ॥
पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनि की जनु अनुराग भरी अंतरगति ॥
सकल सुचिह्न सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्‍यो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति ॥

सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल; कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति ।
चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदलीजति ॥
काम-तून-तल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करभहिं बिलखावति ।
रसना रचित रतन चामीकर, पीत वसन कटि कसे सरसावति ॥
नाभी सर त्रिवली निसेनिका, रोमराजि सैवल छवि पावति ।
उर मुकुतामनि-माल मनोहर मनहुँ हंस-अवली उड़ि आवति ॥
हृदय पदिक भृगु-चरन-चिह्न वर, बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति ।
कल केयूर पूर-कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति ॥
सुजस सुरेख सुनख अंगुलिजुत, सुंदर पानि मुद्रिका राजति ।
अंगुलित्रान कमान बानछवि सुरनि सुखद असुरनि-डर सालति ॥
स्याम सरीर सुचंदन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छवि छाजति ।
नील जलद पर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति ॥
यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति ।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति ॥
सरद-समय-सरसीरुह-निंदक मुख-सुखमा कछु कहत न बानति ।
निरखत ही नयननि निरुपम सुख, रविसुत, मदन, सोम-दुति निदरति ॥
अरुन अधर द्विजपाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति ।
बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय बरषति ॥
मंजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति ।
पंकज-मान-बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति ॥
कंस सुदेस गँभीर वचन वर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति ।
लखि नव नील पयोद रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥

१७—सूत धरयो = कारीगरों के समान सीध नापने के लिए सूत रक्खा । विधिसुत = विश्वकर्मा । कदली जति = कदलीजित । जत्रु = गले के नीचे की धन्वाकार हड्डी जिसे हँसली कहते हैं । अंस = कंधा । तति = विस्तीर्ण । कृकाटिका = कंधे और गले का जोड़ ।

भौंहैं बंक मयंक-अंक रुचि कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति ।
सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति ॥
बरनत रूप पार नहिं पावत निगम सेष सुक संकर भारति ।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै यह मन बचन अगोचर मूरति ॥१७॥

राग मलार

आली री! राघौ के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ।
फटिक भीति सुचारु चहूँ दिसि, मंजु मनिमय पौंरि ।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर सु फँसौरि ॥
तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल-घौरि ।
प्रतिछाँह-छबि कबि साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि ! ॥
मदन जय के खंभ से रचे खंभ सरल बिसाल ।
पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल ॥
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक रेखैं सी मनसिज-भाल ।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत-कोमल-माल ॥
उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपाँति सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि-बिभाग ॥
दादुर मुदित, भरे सरित सर, महि उमंग जनु अनुराग ।
पिक मोर मधुप चकोर चातक सोर उपवन बाग ॥
सो समौ देखि सुहावनो नवसत्त सँवारि सँवारि ।
गुन-रूप-जोबन सींव सुंदरि चलीं झुंडनि भारि ॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि ।
लागीं असीसन राम सीयहि सुख-समाजु निहारि ॥

१८—पाँचसर सु फँसौरि = कामदेव के फंदे सा है । फँसौरि = फंदा, पाश। प्रतिछाँह·········गुरु हौं रि ! = प्रतिबिंब कवियों का साक्ष्य दे कर मूल प्रति या बिंब (असल वस्तु) से कहता है कि मैं तुम से बड़ा हूँ । नवसत = सोलह शृंगार ।

झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुहो गौंड-मलार।
मंजीर-नूपुर-वलय-धुनि जनु काम-करतल तार॥
अति चपुत समकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार॥
हिय हरषि बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि।
आनंद जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरिपूरि॥
सब कहहिं अबिचल राज नित, कल्यान मंगल भूरि।
चिरजियौ जानकिनाथ जग तुलसी सजीवनि मूरि॥१८॥

राग सूहो

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजू के तीर।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर॥
पुरनर नारि चतुर अति धरमनिपुन, रत-नीति।
सहज सुभाय सकल उर श्रीरघुबर-पद-प्रीति॥
श्रीरामपद-जलजात सब के प्रीति अबिरल पावनी।
जो चहत सुक सनकादि संभु बिरंचि मुनिमन-भावनी॥
सबही के सुंदर मंदिराजिर, राउ रंक न लखि परै।
नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं न मन बिषयनि हरै॥१॥
सब ऋतु सुखप्रद सो पुरी पावस अति कमनीय।
निरखत मनहि हरत हठि हरित अवनि रमनीय॥
बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ ओर।
मधुर गरजि घन बरषहि, सुनि सुनि बोलत मोर॥
बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकनि कूजत उड़ात सुहावने॥
बकराजि राजति गगन, हरिधनु तड़ित दिसि दिसि सोहहीं।
नभ नगर की सोभा अतुल अवलोकि मुनि मन मोहहीं॥ २॥
गृह गृह रचे हिंडोलना महि गच काँच सुढार।

चित्र विचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार ॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर ॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही ॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम सहित-मनोहरा।
नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा ॥ ३ ॥
झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनि वर नारि।
कुसुंभि चीर तनु सोहहिं भूषन बिबिध सँवारि ॥
पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड।
राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड ॥
सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं ॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छबि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं ॥ ४ ॥
फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार।
बिबुध-बिमान थकित भए देखत चरित अपार ॥
बरषि सुमन हरषहिं वर बरनहिं हरिगुन-गाथ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ' ॥
जय जानकीपति बिसद कीरति सकल-लोक-मलापहा।
सुरवधू देहिं असीस चिरजिव राम सुख संपति महा ॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं।
रघुबीर के गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं ॥५॥१९॥

राग आसावरी

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आजु बनी।

१९-३ भौंर = वह घूमनेवाली अँकड़ी जिसमें झूले की डोरी बँधी रहती है।

ललित दीपमालिका विलोकहिं हित करि अवधधनी ॥
फटिक-भीत सिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी ॥
प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।
मानहुँ प्रगटि विपुल लोहितपुर पठइ दिए अवनी ॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक गनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं जो कलिमल-समनी ॥ २० ॥

राग गौरी

अवध नगर अति सुंदर वर सरिता के तीर।
नीति-निपुन नर तिय सबहिं धरम धुरंधर धीर ॥
सकल ऋतुन्ह सुखदायक तामहँ अधिक वसंत।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत ॥
बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग पिकवर, गुंजत भृंग ॥
समय विचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारि नर बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥
नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु ॥
स्याम-तमाल-जलदवनु निर्मल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल ॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल ॥
कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज मोति ॥
वर दर-ग्रीव, अमितबल बाहु सुपीन विसाल।

२०—लोहितपुर = मंगललोक।

कंकन हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल ॥
उर भृगु-चरन बिराजत, द्विज प्रिय चरित पुनीत ।
भगत हेतु नर-बिग्रह सुरबर गुन गोतीत ॥
उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर ।
हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर ॥
उरु अरु जानु पीन मृदु मरकत खंभ समान ।
नूपुर मुनि मन मोहत करत सुकोमल गान ॥
अरुन बरन पदपंकज, नखदुति इंदु-प्रकास ।
जनक-सुता-करपल्लव लालित बिपुल बिलास ॥
कंज कुलिस धुज अंकुस रेख चरन सुभ चारि । ×
जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि ॥
अंग अंग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ ।
एहि सुख मगन होइ मन फिरि नहिं अनत लोभाइ ॥
खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब संग ।
बरषि सुमन सुर निरखहिं, सोभा अमित अनंग ॥
ताल मृदंग झाँझ डफ बाजहिं पनव निसान ।
सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥
बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्व ।
निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्व ॥
निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि ।
मनहुँ हिमालय सिखरनि लसहिं अमर-मृगनैनि ॥
धवल धाम तें निकसहिं जहँ तहँ नारि बरूथ ।
मानहुँ मथत पयोनिधि बिपुल अपसरा-जूथ ॥
किंसुक बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत ।
जनु बिधु-निवह रहे करि दामिनि-निकर निकेत ॥
कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर वर नारि ।

ऋतु सुभाय सुठि सोभित देहिं विविध विधि गारि ॥
जो सुख जोग जाग जप तप तीरथ तेँ दूरि ।
राम-कृपा तेँ सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि ॥
खेलि वसंत कियो प्रभु मज्जन सरजूनीर ।
विविध भाँति जाचक-जन पाए भूपन चीर ॥
तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भगति अनूप ।
मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥ २१ ॥

राग वसंत

खेलत वसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर-समाज ॥
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ
बाजहि मृदंग डफ ताल वेनु । छिरकैं सुगंध-भरे मलय-रेनु ॥
उत जुवति-जूथ जानकी संग । पहिरे पट भूषन सरस रंग ॥
लिए छरी बेंत सोधैं विभाग । चाँचरि झूमक कहैं सरस राग॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ । ललना-गन जब जेहि धरैं धाइ ॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ । छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ ॥
चढ़े खरनि विदूपक स्वाँग साजि । करैं कूटि, निपट गइ लाज भाजि
नर नारि परसपर गारि देत । सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥
बरपत प्रसून बर-विबुध-बृंद । जय जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद ॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध वास । गावत कल कीरति तुलसिदास ॥२२॥

राग केदारा

देखत अवध को आनंद ।
हरपि बरपत सुमन दिन दिन देवतनि को बृंद ।
नगर-रचना सिखन को विधि तकत बहु विधिबंद ॥
निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद ।

२१—अंसुक = वस्त्र । निवह = समूह ।
२३—विधिबंद = बंध अर्थात् रचना के भेद ।

मुदित पुर लोगनि सराहत निरखि सुखमाकंद ॥
जिन्हके सुअलि-चख पियत राम-मुखारविंद-मरंद ।
मध्य व्योम बिलंबि चलत दिनेस उडुगन चंद ।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद ॥ २३ ॥

राग सोरठ

पालत राज यों राजाराम धरमधुरीन ।
सावधान सुजान सब दिन रहत नय-लयलीन ॥
स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन ।
नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचुविहीन ॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन ।
सकल चाहत राम ही ज्यों जल अगाधहि मीन ॥
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन ।
लेहु निज करि, देहु निज पदप्रेम पावन पीन ॥ २४ ॥

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ ॥
भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ ।
परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाउ ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरप बिसमय काउ ?॥
अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साधु सखाउ ।

२५—भोग पुनि पितु-आयु को = ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा दशरथ अपनी आयु पूरी करने के पहले ही मर गए, उनकी शेष आयु को रामचंद्रजी ने भोगा। अपनी आयु भर तो राम ने जानकी को साथ रखा पर जब अपने पिता की आयु भोगने चले तब जानकी का परित्याग उन्होंने उचित विचारा।

जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ।।
राम जोगवत सीय-मनु प्रिय मनहि प्रानप्रियाउ ।
परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ ।। २५ ।।
राम बिचारि कै राखी ठीक दै मन माहिँ ।
लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहि जाहिँ ।।
प्रियतमा-पति-देवता जिहि उमा रमा सिहाहिँ ।
गुरुबिनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिँ ।।
मेरेही सुख सुखी सुख अपनो सपनहूँ नाँहि ।
गेहिनी गुन-गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ।।
राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं ।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम कृपाहिं ।। २६ ।।
चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ।।
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ ।
सीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ।।
जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ ।
धीरि धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ।।
"तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ ।
बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ ।।
'भले हि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ ।
चले तुलसी पालि सेवक धरम-अवधि-अघाइ ।। २७ ।।
आए लषन लै सौंपी सिय मुनीसहि आनि ।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ।।
बालमीकि बिलोकि व्याकुल, लषन गरत गलानि ।
सर्वबिद बूझत न बिधि की बामता पहिचानि ।।

२६—गुरुबिनी = गुर्विणी, गर्भवती ।

जानि जिय अनुमान हौ सिय सहस विधि सनमानि ।
राम सद्गुन-धाम, परमिति भई कछुक मलानि ॥
दोनबंधु दयालु देवर देखि अति अकुलानि ॥
कहति वचन उदास तुलसीदास त्रिभुवन-रानि ॥ २८ ॥

तौलौं बलि आपुही कीवी विनय समुझि सुधारि ।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन ऋषि-रीति बसि दिन चारि ॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि कौ मनुहारि ।
बहुरि तिहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥
लषन लाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि ।
पालवी सब तापसनि ज्यों राजधरम विचारि ॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि ।
बालमीकि न सकै तुलसी सो सनेह सँभारि ॥२९॥

सुनि व्याकुल भए उतरु कछु कह्यो न जाइ ।
जानि जिय विधि बाम दीन्हौं मोहिं सरुप सजाइ ॥
कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ ।
आजु अवसर ऐसे हूँ जौं न चले प्रान बजाइ ॥
इतहि सीय-सनेह-संकट उतहिं राम-रजाइ ।
मौनहीं गहि चरन गौने सिख सुआसिष पाइ ॥
प्रेम-निधि पितु को कहे मैं परुष-बचन अघाइ ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ ॥ ३० ॥

गौने मौनही बारहि बार परि परि पाय ।
जात जनु रथ चोर कर लछिमन मगन पछिताय ॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय ।
दुसह साँसति सहन कौ हनुमान ज्यायो जाय ॥
हेतु हौं सियहरन कौ तब, अबहुँ भयौं सहाय ।
होत हठि मोहिं दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय ॥

तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय ।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यों अवध सुभाय ॥
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं विधि वायँ ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥ ३१ ॥

पुत्रि! न सोचिए आई हौं जनक-गृह जिय जानि ।
कालिही कल्यान कौतुक, कुसल तव, कल्यानि ॥
राजऋषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल खानि ।
ऐसेहूँ थल वामता, बड़ि वाम विधि की बानि ।
बोलि मुनि कन्या सिखाई प्रीति-गति पहिचानि ॥
आस्रसिन्ह की देवसरि सिय सेइयहु मन मानि ।
न्हाइ प्रातहि पूजिबो वट बिटप अभिमत-दानि ॥
सुवन-लाहु उछाहु, दिन दिन, देवि अनहित-हानि ॥
पाप-ताप-विमोचनी कहि कथा सरस पुरानि ।
बालमीकि प्रबोधि तुलसी गई गरुइ गलानि ॥ ३२ ॥

जब ते जानकी रही रुचिर आस्रम आइ ।
गगन, जल, थल विमल तब ते सकल मंगलदाइ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ ।
कंद मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥
मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ ।
मुदित-मन मृग विहग विहरत विषम बैर बिहाइ ॥
रहत रवि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ ॥
मोद-विपिन-विनोद चितवत लेत चितहिं चोराइ ।
राम बिनु सिय सुखद बन तुलसी कहै किमि गाइ ॥ ३३ ॥

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ ।
पूत जाये जानकी द्वै मुनिवधू उठीं गाइ ॥

हरपि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ ।
भुवन कानन आस्रमनि रहे मोद मंगल छाइ ॥
तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे विधिबस आइ ।
माँगि मुनि सों विदा गवने भोर सो सुख पाइ ॥
मातु मौसी बहिनिहूँ तें सासु तें अधिकाइ ।
करहिं तापस-तीय-तनया सीय-हित चित लाइ ॥
किए बिधि ब्यवहार मुनिवर विप्रबृंद बोलाइ ।
कहत सब ऋषिकृपा को फल भयो आजु अघाइ ॥
सुरुप ऋषि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ ।
सूल राम-सनेह को तुलसी न जिय तें जाइ ॥ ३४ ॥

मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहैं की रीति ।
बन-बसन पहिराइ तापस, तोपि पोपे प्रीति ॥
नामकरन सुअन्नप्रासन बेदबाँधी नीति ।
समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति ॥
बाल लालहिं, कहहिं "करिहैं राज सब जग जीति" ।
राम सिय सुत गुरु अनुग्रह उचित अचल प्रतीति ॥
निरखि बाल-बिनोद तुलसी जात बासर बीति ।
पिय-चरित सिय-चित चितेरो लिखत नित हित-भीति ॥३५॥

बालक सीय के बिहरत मुदित मन दोउ भाइ ।
नाम लव कुस राम-सिय-अनुहरति सुंदरताइ ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बालबृंद बोलाइ ॥
भूप भूषन बसन बाहन राज-साज सजाइ ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून लेत बनाइ ॥
दुखी सिय पिय-विरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥३६॥

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलों बात मातु सों मुहँ भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी ते' जननिहु गँस न गही।
सीय लषन रिपुदवन राम-रुख लखि सब की निबही॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥ ३७॥

राग रामकली

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधवासी।
अति उदार अवतार मनुज-वपु धरे ब्रह्म अज अविनासी॥
प्रथम ताड़का हति सुबाहु वधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्रनारि तारी॥
सब भूपन को गरब हरयो हरि, भंज्यो संभु-चाप भारी।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी॥
तात-बचन तजि राजकाज सुर चित्रकूट मुनिवेष धरयो।
एक नयन कीन्हों सुरपतिसुत, बधि बिराध ऋषि-सोक हरयो॥
पंचबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हों।
खर दूषन संहारि कपटमृग गीधराज कहँ गति दीन्हीं॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मारयो।
बानर रीछ सहाय अनुज संग सिंधु बाँधि जस बिस्तारयो॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टारयो।
परमसाधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सारयो॥
सीता अरु लछिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आए।
नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए॥
सिव बिरंचि सुक नारदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी॥

३७—गँस = गाँस, बैरभाव।

मिले भरत जननी गुरु परिजन चाहत परम अनंद भरे ।
दुसह-वियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥
वेद पुरान विचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो ।
तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो ॥२८॥

श्रीकृष्णगीतावली

श्रीकृष्णगीतावली

राग बिलावल

माता लै उछंग गोबिंदमुख बार बार निरखै ।
पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरषै ॥
पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई ।
अतिसय सुख जाते तोहिं मोहिं कहु समुझाई ॥
देखत तव बदन-कमल मन अनंद होई ।
कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई ॥
सुंदर मुख मोहिं देखाउ, इच्छा अति मोरे ।
मम समान पुन्यपुंज बालक नहिं तोरे ॥
तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज-रूप धारी ।
बालकेलि लीलारस ब्रजजन-हितकारी ॥१॥

राग ललित

'छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया'
'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहिं तात' ।
'सिगरियै हौं हीं खैहौं, बलदाऊ को न देहौं,'
सो क्यौं भटू तेरो कहा कहि इत उत जात ॥
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात ।
नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात ॥

बनियाँ ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस,
मुनि-मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरपत बरपत फूल भूरिभागी,
ब्रजवासी विबुध सिद्ध सिहात ॥ २ ॥

राग आसावरी

तोहि स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे ॥
गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजवास बसेरे।
दिनप्रति भाजन कौन बेसाहै ? घर निधि काहूके रे ॥
किए निहारो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे।
अबहीं तें ये सिखे कहाधौं चरित ललित सुत तेरे ॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातुबदन तन हेरे।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातें जे कहि भजे सवेरे ॥ ३ ॥

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहिं बानि परगृह की, नाना जुगुति बनावहिं ॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड़्यों तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं ॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं ॥
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझि हलधर को, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहूको ते सिसु मोहिं न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं ॥ ४ ॥

कबहुँ न जात पराये धामहिं।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहिं ॥
मेरे कहाँ थाकु गोरस, को नवनिधि मंदिर यामहिं।

ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहिं ॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहिं।
बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहिं ॥
हरिमुख निरखि, परुष बानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहिं।
तुलसिदास प्रभु देख्योइ चाहति श्रीउरललित-ललामहिं ॥ ५ ॥

अब सब साँची कान्ह तिहारी।
जो हम तजे पाइ गौं मोहन गृह आए दै गारी ॥
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातैं सकल सवाँरी।
साधु जानि हँसि हृदय लगाए परम प्रीति महतारी ॥
कोटि जतन करि सपथ कहैं हम मानै कौन हमारी ?
तुमहिं बिलोकि आन की ऐसी क्यों कहिहै बर नारी ॥
जैसे हौ तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी।
तुलसिदास प्रभु मुखछवि निरखत मन सब जुगुति बिसारी ॥ ६ ॥

राग केदारा

महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै।
सहि देख्यो, तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै ?
ग्वालिनि तौ गोरस सुखी ता बिनु क्यों जीजै।
सुत समेत पाउँ धारिये, आपुहि भवन मेरे देखिये जो न पतीजै ॥
अति अनीति नीकी नहीं अजहूँ सिख दीजै।
तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै ।७।

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया ! तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई ॥
या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई ॥

१–नाकु=सीमा।

सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।
तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई॥८॥

राग गौरी

अब ब्रजबास महरि किमि कीबो ?।
दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो॥
अब तो कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो ?
लीजै गाँउ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ ह्वै जीबो॥
ग्वालिबचन सुनि कहति जसोमति 'भलो न भूमि पर बादर छीबो।
दैअहि लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो'॥ ६॥

जानी है ग्वालि परी फिरि फीके।
मातुकाज लागी लखि डाटत,' है बायनो दियो घर नीके॥
अब कहि देउँ, कहति किन,' यों कहि माँगत दहिउ धरयो जो है छीके।
तुलसी प्रभुमुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन मन ती के॥१०॥

जौलों हौं कान्ह! रहौं गुन गोए।
तौलों तुम्हहिं पत्यात लोग सब, सुसुकि सभीत साँचु सो रोए॥
हौं भले नग-फँग परे गढ़ीबे, अब ए गढ़त महरि-मुख जोए।
चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए॥
गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए।
तुलसी मुदित मातु सुतगति लखि बिथकी है ग्वालि मैन-मन-मोए॥११॥

भूलि न जात हौं काहूके काऊ।
साखि सखा सब सुबल, सुदामा, देखिधौं बूझि बोलि बलदाऊ॥
यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।
याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि ए लँगरि झगराऊ॥
कहति परसपर बचन जसोमति, लखि नहिं सकति कपट सति भाऊ।
तुलसिदास ग्वालिनि अतिनागरि, नट नागरमनि नँदललाऊ॥ १२॥

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
एहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बवै ब्याह की बात चलाई॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।
उबटौं न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भई बड़ि बार कालि तौ न आई।
जब सोइबो तात यों हाँकहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो भँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥१३॥

राग केदारा

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु॥
मंजु अंजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु।
स्यामसारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु॥
सुभग उर दधिबुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥
कान्हहू पर सतर भौहैं, महरि मनहिं बिचारु।
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमार॥ १४॥

लेत भरि भरि नीर कान्ह कमलनैन।
फरक अधर डर निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन॥
दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि कहा कीन्हों,
चीन्हो री सुभाय तेरो आजु लगे माई मैं न।
तुलसिदास नंदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर-ऐन॥ १५॥

हाहा री महरि बारो, कहा रिसबस भई, कोखि के
जाए सों रोपु केतो बड़ो कियो है।
ढीली करि दाँवरी, बावरी साँवरेहिं देखि,
सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है॥

दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन
जबते जनम हलधर हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगार्यो, ढार्यो लरिका री,
ऐसे सुत पर कोह कैसो तेरो हियो है॥
मुनि कहैं सुकृती न नंद जसुमति सम,
न भयो, न भावी, नहिं बिद्यमान बियो है।
कौन जानै कौनो तप, कौने जोग जाग जप
कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है॥
इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए,
नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है।
नंदलाल-बाल-जस संत-सुर-सरबस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो है॥ १६॥

ललित लालन निहारि, महरि मन बिचारि,
डारि दे घरबसी लकुटी बेगि कर तें।
कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत,
डरहूँ को डर, कान्ह डरै तेरे डर तें॥
कह्यौ मेरो मानि, हित जानि तू सयानी बड़ी,
बड़े भाग पायो पूत बिधि हरि हर तें।
ताहि बाँधिबे को धाई, ग्वालिनी गोरसहाँई,
लै लै आईं बावरी दाँवरी घर घर तें॥
कुल-गुरु-तिय के बचन कमनीय सुनि,
सुधि भए बचन जे सुने मुनिबर तें।
छोरि लिये लाय उर, बरषैं सुमन सुर,
मंगल है तिहूँ पुर हरि हलधर तें॥
आनंद-बधावनो मुदित गोप-गोपीगन

१७—घरबसी = व्यंग्य से घर उजाड़नेवाली।

आजु परी कुसल कठिन करवर तें।
तुलसी जे तोरे तरु किए देव, दिये बरु;
कै न लह्यो कौन फरु देव दामोदर तें॥ १७॥

राग मलार

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान विचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर वारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पविपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल।
सीत-सभीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल॥
राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाइ॥
सुनि हँसि उठ्यौ नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपने सों करि गयो गर्व गँवाइ॥ १८॥

राग गौरी

टेरि कान्ह गोवर्धन चढ़ि गैया।
मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अघाति न घैया॥
सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया॥
बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैंया॥
खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोगदैया।
तुलसी बालकेलि-सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया॥१९॥

राग नट

गावत गोपाललाल नीके राग नट हैं।

१९—रोगदैया = अन्याय; बेईमानी।

चलि री आली देखन लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर तटिनी के तट हैं ॥
मोरचंदा चारु सिर मंजु गुंजापुंज धरे बनि बन-धातु तन ओढ़े पीत पट हैं।
मुरली तान-तरंग मोहे कुरंग विहंग, जोहैं मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं ॥
अंबर भ्रमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं।
तुलसीप्रभुनिहारिजहाँतहाँब्रजनारिठगीठाढ़ीमगलियेरीतेभरे घट हैं॥२०॥

राग बिलावल

देखु सखी हरिबदन इंदु-पर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छवि, कहि न जाइ सोभा अनूप धर ॥
बाल-भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर ।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचारि डरहिं डर॥
अरुन बनज-लोचन, कपोल सुभ, स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर ।
मनहुं सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगुल बसीठ बारिचर ॥
नँदनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत स्रुति सेष उमावर ।
तुलसिदास त्रैलोक्य-बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध सूलहर ॥२१॥

आजु उनींदे आए मुरारी।
आलसवंत सुभग लोचन सखि छिन मूँदत, छिन देत उघारी ॥
मनहुँ इँदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन विधि रचे सँवारी ।
कुटिल अलक जनु मार फंद कर गहे सजग है रह्यो सँभारी ॥
मनहुँ उड़न चाहत अति चंचल पलक पंख छिन देत पसारी ।
नासिक कीर, बचन पिक सुनि करि संगति मनु गुनि रहति बिचारी ॥
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भ्रुकुटि सरासन की अनुहारी ।
परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग प्रगटत दुरत न मानत हारी ॥
जदुपति मुखछवि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी ।
तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी भजीं तात पति तनय बिसारी ॥२२॥

राग गौरी

गोपाल गोकुल-बल्लभी-प्रिय गोप-गोसुत-बल्लभं ।

चरनारविंदमहं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्ल्लभं ॥
घनश्याम काम अनेक छवि, लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क-बसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं ॥
सिर केकि-पच्छ विलोल कुंडल अरुन वनरुह-लोचनं।
गुंजावतंस विचित्र, सब अँग धातु भवभय-मोचनं ॥
कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू राका-मयंक-समाननं।
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार वृंदाकाननं ॥२३॥

राग बिलावल

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याममई ॥
रूपरसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई।
साँचेहु क्रूर कुटिल, सित मेचक, वृथा मीनछवि छीनि लई ॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गए चित सूल नई।
तुलसिदास सब अपहुँ से भए जड़, जब पलकनि हठ दगा दई ॥२४॥

राग कान्हरा

नहिं कछु दोष स्याम को माई!
जो दुख मैं पायों सुजनी सो। तो सबै मन की चतुराई ॥
निज हित लागि तबहिं ए बंचक सब अंगनि बसि प्रीति बढ़ाई।
लियो जो सकल सुख हरि-अँग-संग को जहँ जिहि बिधि तह सोइ बनाई ॥
अब नंदलाल-गवन सुनि मधुबन तनहि तजत नहिं बार लगाई।
रुचिर रूप-जल मों रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई ॥
एहि सरीर बसि सखि वा सठ कह कहि न जाइ जो निधि फबि आई।
तदपि कछू उपकार न कीन्हों निज मिलन्यौ नहिं मोहिं सिखाई ॥
आपु मिल्यो यहि भाँति जाति तजि, तन मिलयो जल-पय की नाई।
ह्वै मराल आयो सुफलकसुत लै गयो छीर नीर बिलगाई ॥

२१–रसेस = लवण, नमक।

मन ज्यों तजी, कान्ह ज्यों त्यागी, प्रानी चलिहैं परिमिति पाई ।
तुलसिदास रीतेहु तनु ऊपर नयननि की ममता अधिकाई ॥ २५ ॥

राग धनाश्री

करी है हरि बालक की सी केलि ।
हरष न रचत, विषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि ॥
गई बनाइ बारि बृंदावन प्रीति सजीवनि-बेलि ।
सींचि सनेहसुधा खनि काढ़ी लोक-बेद परहेलि ॥
तृन ज्यों तजी, पालितनु ज्यों हम विधि बासव बल पेलि ।
एतेहुँ पर भावत तुलसी प्रभु गए मोहनी मेलि ॥ २६ ॥

आली अब कहौ निज नेह निहारि ।
समुझे सहे हमारो है हित विधि-बामता बिचारि ॥
सत्यसनेह सील सोभा सुख सब गुन-उदधि अपारि ।
देख्यो सुन्यो न कबहुँ काहु कहुँ मीन-बियोगी बारि ॥
कहियत काकु कूबरी हूँ को, सो कुबानि-बस नारि ।
बिष तें बिषम बिनय अनहित की, सुधा सनेही गारि ॥
मन फेरियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे भारि ।
तुलसी जग दूजो न देखियत कान्हकुँवर अनुहारि ॥ २७ ॥

लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति ।
नीलनलिन स्याम, सोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहि उर फूरति ॥
सारद अमित सेष नहिं कहि सकत अंग अँग सूरति ।
तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति ॥ २८ ॥

जब तें ब्रज तजि गए कन्हाई ।
तब तें बिरह-रबि उदित एकरस सखि बिछुरनि-वृष पाई ॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर-नभ पर छाई ।
इंद्रिय रूपरासि सोचहिं सुठि, सुधि सब की बिसराई ॥
भयो सोक-भय-कोक-कोकनद भ्रम-भ्रमरनि सुखदाई ।

चित-चकोर, मनमोर, कुमुद-मुद सकल विकल अधिकाई ॥
तनु-तड़ाग बलवारि सुखन लाग्यो परी कुरूपता-काई।
प्रानमीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई ॥
तुलसीदास मनोरथ-मन-मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
राम स्याम सावन भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई ॥ २९ ॥

ससि तें सीतल मोको लागै माई री! तरनि।
याके उए बरति अधिक अँग अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि॥
सब बिपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि।
तुलसिदास स्यामसुंदर-बिरहकीदुसहदसासोमोपेपरति नहीं बरनि ॥३०॥

संतत दुखद सखी! रजनीकर।
स्वारथरत तब, अबहुँ एकरस, मोको कबहुँ न भयो तापहर ॥
निज अंसिक सुख लागि चतुर अति कीन्हीं है प्रथम निसा सुभ सुंदर।
अब बिनु मन, तन दहत दया तजि,राखत रबि ह्वै नयन बारिधर ॥
जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर।
ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भयो ब्योमचर ॥
सकल बिकार-कोस बिरहिनि-रिपु, कोहे तें याहि सराहत सुर नर ?।
तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गह्यो गिरिजाबर ॥३१॥

राग मलार

कोउ सखि नई चाह सुनि आई।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई ॥
घन-धावन, बगपाँति पटोसिर, बैरख-तड़ित सोहाई।
बोलत पिक नकीब, गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई ॥
चावक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई।
चाहत कियो बास बृंदावन बिधि सों कछु न बसाई ॥
सींव न चाँपि सको कोऊ तब जब हुते राम कन्हाई।

३२—चाह = चर्चा।

अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई ? ॥ ३२ ॥

राग सोरठ

ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोगकथा बिस्तारो ॥
जा कारन पठए तुम माधव सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं ? ॥
परम चतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा कहत हौ ? ॥
वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं।
जोग जुगुति अरु मुकुति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं ॥
जेहि उर बसत स्यामसुंदर घन तेहि निर्गुन कस आवै।
तुलसिदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै ॥ ३३ ॥

मधुकर कहहु कहन जो पारो।
नाहिंन, बलि, अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारो ॥
नहिं तुम ब्रज बसि नंदलाल को बालबिनोद निहारो।
नाहिंन रासरसिक रस चाख्यो, ताते डेल सो डारो ॥
तुलसी जौ न गए प्रीतम संग प्रान त्यागि तनु न्यारो।
तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब, कहा करम सों चारो ? ॥ ३४ ॥

ऊधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो।
नीके जिय की जानि अपनपौ समुझि सिखावन दीबो ॥
स्यामबियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो।
तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो ॥
गोपी गाय ग्वाल गोसुत सब रहत रूप-अनुरागे।
दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सौं लागे ॥
तुलसी है सनेह दुखदायक, नहिं जानत ऐसो को है ? ।

३४—डेल सो डारो = पत्थर सा मारते हो।

तऊ न होत कान्ह को सो मन, सबै साहिबहि सोहै ॥ ३५ ॥

राग बिलावल

सो कहौ मधुप जो मोहन कहि पठई।
तुम सकुचत कत? हौं हीं नीके जानति, नंदनंदन हो निपट करी सठई ॥
हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन को संदेह, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।
तुलसिदास कौन आस मिलन की, कहि गए सो तौ कछु एकौ न चित ठई ॥

मेरे जान और कछु न मन गुनिए।
कूबरीरवन कान्ह कही जो मधुप सों,
सोई सिख सजनी! सुचित दै सुनिए ॥
काहे को करति रोप, देहि धों कौने को दोप,
निज नयननि को बयो सब लुनिए।
दारु सरीर, कीट पहिले सुख,
सुमिरि सुमिरि बासर निसि घुनिए ॥
ये सनेह सुचि अधिक अधिक रुचि,
बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।
तुलसिदास अब नंदसुवन-हित
विपम-वियोग-अनल तनु हुनिए ॥ ३७ ॥

भली कही, आली! हमहुँ पहिचाने।
हरि निर्गुन निर्लेप निरपने निपट निठुर निज काज सयाने ॥
ब्रज को विरह, अरु संग महर को, कुवरिहि वरत न नेकु लजाने।
समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेखो उर आने ॥
सुनत न सिख लालची विलोचन एतेहु पर रुचि रूप लोभाने।
तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं, नीके ई लागत मन रहत समाने॥३८॥

राग मलार

जोपै अलि! अंत इहै करिबे हो।
तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो ॥

जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो।
तौ मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढरिबे हो॥
दै कूबरिहि रूप ब्रजसुधि भए लौकिक डर डरिबे हो।
ज्ञान बिराग काल-कृत करतब हमरेहि सिर धरिबे हो॥
उन्हहिं राग रबि नीरद-जल ज्यों, प्रभु-परमिति परिबे हो।
हमहुँ निठुर-निरुपाधि-नेहनिधि निज भुजबल तरिबे हो॥
भलो भयो सब भाँति हमारो एकबार मरिबे हो।
तुलसी कान्हबिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो॥ ३९॥

ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही।
ज्ञानगिरा कूबरीरवन की सुनि बिचारि गहिबे ही॥
पाइ रजाइ नाइ सिर गृह ह्वै गति परमिति लहिबे ही।
मति-मटुकी मृगजल भरि घृतहित मनहीं मन महिबे ही॥
गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही।
तुलसी प्रभुहिं तुम्हहिं हमहूँ हिय साँसति सी सहिबे ही॥ ४०॥

मधुकर! कान्ह कहा ते न होहीं।
कै ये नई सिखी सिखई हरि निज-अनुराग-बिछोहीं॥
राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातैं बकुचौहीं।
स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौं हीं॥
नागरमनि सोभासागर जेहि जग जुवती हँसि मोही।
लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही॥
है निर्गुण सारो बारिक, बलि, घरी करौ, हम जोही।

३९—उन्हहिं राग......ज्यों = जैसे, सूर्य ही मेघ रूप में जल को आकर्षित करता है पर उससे कोई राग या संबंध नहीं रखता। प्रभु-परिमिति परिबे हो = राजा की मर्यादा के पालन में पड़ना था।

४०—बहिबे ही बनि आए = आ पड़ने पर निबाहना ही होगा।

४१—बकुचौंही = बकुचा या गठरी बाँधकर। बारिक = बारीक। घरी करौ = तह लगाकर रखो।

तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट जिन्हहिं आजु सब सोही ॥ ४१ ॥

मधुप तुम्ह कान्ह ही की कही क्यों न कही है ?।
यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है ॥
कब ब्रज तज्यौ, ज्ञान कब उपज्यौ ? कब बिदेहता लही है।
गए बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है ॥
आयसु देहु करहिं सोइ सिर धरि प्रीति-परमिति निरबही है।
तुलसी परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि सब सही है ॥ ४२ ॥

दीन्हीं है मधुप सबहि सिख नीकी।
सोइ आदरौ आस जाके जिय वारि बिलोवत घी की ॥
बूझी बात कान्ह कुबरी की, मधुकर कछु जनि पूछौ।
ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछो ॥
हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरेबैं नंदलला की।
ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ॥
गए कर तें, घर तें, आँगन तें ब्रजहू तें ब्रजनाथ।
तुलसी प्रभु गयो चहत मनहुँ तें सो तो है हमारे हाथ ॥४३॥

ताकी सिख ब्रज न सुनैगो कोउ भोरे।
जाकी कहनि रहनि अनमिल,अलि, सुनत समुझियत थोरे ॥
आपु कंजमकरंद सुधाहद हृदय रहत नित बोरे।
हम सों कहत बिरह-स्रम जैहै गगन कूप खनि खोरे ॥
धान को गाँव पयार तें जानिय ज्ञान विषय मन मोरे।
तुलसी अधिक कहे न रहै रस गूलरि को सो फल फोरे ॥४४॥

आली ! अति अनुचित उतरु न दीजै।
सेवक सखा सनेही हरि के जो कुछ कहैं सो कीजै ॥
देसकाल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै।

४३—औरेबैं = टेढ़ी चालें।
४४—खोरे = स्नान करने से।

कै समुझियो, कै ये समुझैहै हारेहु मानि सहीजै ॥
सखि सरोष प्रियदोष विचारत प्रेम पीन पन छीजै ।
खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै ॥
ऊधो परम हितू हित सिखवत परमिति पहुँचि पतीजै ।
तुलसिदास अपराध आपनो, नंदलाल बिनु जीजै ॥४५॥

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै ।
अलि, पहिचानि प्रेम की परमिति उतरु फेरि नहिं दीजै ॥
जननी जनक जरठ जाने जन परिजन लोगु न छीजै ।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै ॥
कंस मारि जदुबंस सुखी कियो, स्रवन सुजस सुनि जीजै।
तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ॥ ४६ ॥

कान्ह, अलि ! भए नये गुरु ज्ञानी ।
तुम्हरे कहत आपने समुझत, बात सही उर आनी ॥
लिए अपनाइ लाइ चन्दन तन, कछु कटु चाह उड़ानी ।
जरी सुँघाइ कूबरी कौतुक करि जोगी बघा-जुड़ानी ॥
ब्रज बसि रास-बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी ।
जोग-जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान-सिरोमनि जानी ॥
कहिबे कछू कछू कहि जैहै, रहौ, आलि ! अरगानी ।
तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय-हाथ बिकानी ॥४७॥

सब मिलि साहस करिय सयानी ।
ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी ॥
बसैं सुबास, सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी ।
महरि महर जीवहिं सुख-जीवन खुलहि मोद-मनि-खानी ॥

४६—बिढ़तो = बिढ़ता, कमाई ।

४७—चाह उड़ानी = खबर उड़ी है । बघा-जुड़ानी = व्याघ्र को ठंढा अर्थात वश में करनेवाली क्रिया ।

तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी।
देखिबो दरस दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।
तुलसी सो तिहुँभुवन गाइबी नंदसुवन सनमानी॥ ४८॥

कही है भली बात सब के मनमानी।
प्रियसम प्रियसनेह-भाजन, सखि! प्रीति-रीति जगजानी॥
भूषन भूति गरल परिहरि कै हरमूरति उर आनी?।
मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास-जल छानी?॥
पूछ सों प्रेम, विरोध सींग सों, यहि विचार हितहानी।
कीजै कान्ह-कूबरी सों नित नेह करम मन बानी॥
तुलसी तजिय कुचालि आलि अब सुधरै सबइ नसानी।
आगे करि मधुकर मथुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी॥ ४९॥

राग कान्हरा

हे हम समाचार सब पाए।
अब विसेष देखे तुम्ह देखे हैं कूबरी हाँक से लाए॥
मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए।
समुझि रहनि, सुनि कहनि विरह ब्रन अनप अमिय औषध सरुहाए॥
मधुकर रसिक सिरोमनि कहियत कौने यह रसरीति सिखाए।
बिनु आखर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिनि ग्वाल रिझाए॥
फल पहिले ही लह्यो ब्रजबासिन्ह, अब साधन उपदेसन आए!
तुलसी अलि, अजहूँ नहिं बूझत, कौन हेतु नँदलाल पठाए॥५०॥

कौन सुनै अलि की चतुराई।
अपनिहि मतिविलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई॥
सरल सुलभ हरिभगति-सुधाकर निगम पुराननि गाई।

४९—कै = किसने?
५०—सरुहाए = चंगा किया (?)

तजि सोइ सुधा मनोरथ करि करि को मरिहै, री माई ॥
जद्यपि ताको सोइ मारगप्रिय जाहि जहाँ बनि आई ।
मैन के दसन, कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई ॥
सगुन छीरनिधि-तीर बसत ब्रज तिहुँ पर बिदित बड़ाई ।
आक दुहन तुम्ह कह्यौ सो परिहरि हम यह मति नहिं पाई ॥
जानत हैं जदुनाथ सबन की बुधि बिबेक जड़ताई ।
तुलसिदास जनि बकहिं, मधुप सठ ! हठ निसि दिन अँवराई ॥५१॥

राग केदारा

गोकुल प्रीति नित नई जानि ।
जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञानगिरा पुरानि ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन-खानि ।
नवल नंदकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदरयो सो तो नव कमल की कानि ।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि ॥ ५२ ॥

काहे को कहत बचन सवाँरि ।
ज्ञानगाहक नाहिनै ब्रज मधुप अनत सिधारि ॥
जुगुति धूम बघारिबे की समुझिहैं न गँवारि ।
जोगिजन मुनिमंडली मों जाइ रीतो ढारि ॥
सुनै तिन्ह की कौन तुलसी जिन्हहिं जीति न हारि ।
सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि ॥ ५३ ॥

ऐसे हौं हुँ जानति भृंग ।
नाहिनै काहू लह्यो सुख प्रीति करि इक अंग ॥
कौन भीर जो नीरदहि जेहि लागि रटत विहंग ?
मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग ॥
पीर कछू न मनिहिं जाके विरह-बिकल भुअंग ।

५१—मैन = मोम ।

व्याध-विसिष विलोक नहिं कलगान-लुबुध कुरंग ॥
स्यामघन गुनवारि छविमनि मुरलि-तान-तरंग ।
लग्यो मन यहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग ? ॥ ५४ ॥

ऊधो ! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन ?
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रवीन ॥
अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन ।
बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन ॥
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न ।
दासतुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन ॥ ५५ ॥

राग गौरी

सुनत कुलिस सम बचन तिहारे ।
चित दै मधुप सुनहु सोउ कारन जाते जात न प्रान हमारे ॥
ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे ।
अवधि-जरा जोरति हठि पुनि पुनि, याते तनु रहत सहत दुख भारे ॥
पावक-बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे ।
तिन्हहिं निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे ॥
जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे ।
तुलसिदास यह दसा जानि जिय उचित होइ सो कहौ अलि,प्यारे॥५६॥

छपद ! सुनहु बर बचन हमारे ।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन की कौन हरै, हरि अंतर-कारे ॥
कनककुंभ भरि भरि पियूषजल बरपत सक्र कल्पसत हारे ।
कदलि सीप चातक को कारज स्वाति-बारि बिनु कोउ न सँवारे ॥
सब अँग रुचिर किसोर स्यामघन जेहि हृदि-जलज बसत हरि प्यारे ।
तेहि उर क्यों समात बिराटबपु ज्यों महि सरित सिंधु गिरि भारे ॥
बढ़्यो अति प्रेम प्रलय के बट ज्यों बिपुल जोग-जल बोरि न पारे ।

२७—ज्यों = सह, साथ ।

तुलसिदास ब्रजवनितन को व्रत समरथ को करि जतन निवारे ॥५७॥

मधुप ! समुझि देखहु मन माहीं ।
प्रेमपियूषरूप उडुपति बिनु कैसे हो ! अलि पैयत रबि पाहीं ॥
जद्यपि तुम हित लागि कहत सुनि स्रवन वचन नहिं हृदय समाहीं ।
मिलहि न पावक महँ तुषार कन जो खोजत सत कलप सिराहीं ॥
तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाहीं ।
तुलसिदास सोइ जतन करहु कछु बारक स्याम इहाँ फिरि जाहीं ॥५८॥

मोको अब नयन भए रिपु माई ।
हरि-बियोग तनु तजेहि परमसुख ए राखहि सोइ है बरियाई ॥
बरु मन कियो बहुत हित मेरो बारहिबार काम दव लाई ।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहि स्वारथ निपुन अधिक चतुराई ॥
ज्ञानपरसु दै मधुप पठायो बिरहबेलि कैसेहु कटिनाई ।
सो थाक्यो बरह्यौ एकहि तक देखत इनकी सहज सिँचाई ॥
हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाव कंदुक की नाईं ।
चातक जलज मीनहुँ ते भोरे समुझत नहिं उन्हकी निठुराई ॥
ए हठ-निरत दरस लालचबस परे जहाँ बुधिबल न बसाई ।
तुलसिदास इन्हपर जो द्रवहि हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई ॥ ५९ ॥

राग आसावरी

कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?
समरधीर महाबीर पाँचपति क्यों दैहैं मोहिं होन उघारी ॥
राजसमाज सभासद समरथ भीषम द्रोन धर्मधुरधारी ।
अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहैं रखवारी ॥
यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी ।
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी ॥
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी ।

२१—बरह्यौ = बाढ़े में । एकहि तक = एक ही तार, लगातार ।

हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों 'पाहि पाहि, प्रभु, पाहि !' पुकारी ॥
तुलसी परखि प्रतीति प्रीतिगति आरतपाल कृपालु मुरारी ।
बसनबेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी ॥ ६० ॥

गहगह गगन दुंदुभी बाजी ।
बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरष-मगन मुनि सुजन समाजी ॥
सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी ।
लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी ॥
प्रीति प्रतीति द्रुपदतनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी ।
कहि पारथ-सारथिहि सराहत गई-बहोरि गरीब-निवाजी ॥
सिथिल-सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधू बिराजी ।
सभासिंधु जदुपति जय जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवनभरि भ्राजी ॥
जुग जुग जग साके केसव के समन-कलेस कुसाज-सुसाजी ।
तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्णकृपालु-भगतिपथ राजी ? ॥६१॥

६१—खाजी = खाद्य, अर्थात् अपने मुँह की खाकर ।

विनयपत्रिका

विनयपत्रिका

—:०:—

राग बिलावल

गाइए गनपति जगबंदन। संकरसुवन भवानीनंदन॥
सिद्धिसदन गजवदन विनायक। कृपासिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद-मंगल-दाता। विद्यावारिधि बुद्धि-विधाता॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे॥१॥

दीनदयालु दिवाकर देवा। कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा।
हिम-तम-करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दुरित रुजाली॥
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी।
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी। हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी॥
बेद पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी रामभगति बर माँगै॥२॥

को जाचिए संभु तजि आन?
दीनदयालु भगतआरतिहर सब प्रकार समरथ भगवान॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो विषपान।
दारुन दनुज जगत-दुखदायक जारयो त्रिपुर एक ही बान॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत स्रुति सकल पुरान।
सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु पारबती-पति परम सुजान।
देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥३॥

१—नंदन = आनंद देनेवाले।

२—करमाली = किरणों की माला धारण करनेवाले। रुजाली = रोग-समूह।

राग धनाश्री।

दानी कहुँ संकर सम नाहीं।
दीनदयालु दिबोई भावै जाचक सदा सोहाहीं॥
मारि कै मार थप्यो जग में जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो कह्यो क्यों परत मो पाहीं? ॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेदबिदित तेहि पद पुरारि-पुर कीट पतंग समाहीं॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने कबहुँ न पेट अघाहीं॥ ४॥

बावरो रावरो नाह, भवानी!
दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्रीसारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंग-जुत सुनि बिधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी॥५॥

राग रामकली।

जाँचिए गिरिजापति कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी॥
औढर-दानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे॥

५—दिन = प्रति दिन, सदा। सिहानी = ईर्ष्या की। नाक = स्वर्ग। नकबानी आयों = नाकों दम हो गया।

६—औढर-दानि = मन मौजी (पात्रापात्र का विचार न करनेवाले) देनेवाले।

सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥
गए जे मरन आरति-के-लीन्हे। निरखि निहाल निमिषि महँ कीन्हे
तुलसिदास जाचक जस गावै। विमल भगति रघुपति की पावै॥६॥
कस न दीन पर द्रवहु, उमावर। दारुन-बिपति-हरन, करुनाकर॥
वेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयो कृपिनतर॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। ह्वै प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद निज॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥
देहु कामरिपु! रामचरन-रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति॥ ७॥

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।
दियो जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ घोरे॥
गाँव बसत, वामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे॥८॥

सिव, सिव! होइ प्रसन्न करु दाया।
करुनामय, उदार-कीरति,-बलि जाउँ! हरहु निज माया॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिन तव कृपा रामपद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई॥

६—आरति के लीन्हे = दुःखग्रस्त।

७—गुणनिधि नामक ब्राह्मण ने शिव की मूर्ति पर चढ़कर मंदिर का घंटा चुराया था। शिव ने समझा कि और लोग तो पत्र पुष्प आदि चढ़ाते हैं, पर इसने अपने आपको हमारे अर्पण कर दिया। अतः प्रसन्न होकर उन्होंने उसे मुक्ति दे दी।

८—साखि = शाखी, वृक्ष। सिहोर = थूहर, सेंहुड़।

श्रुपच सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं।
तव-पद-विमुख न पार पाव कोउ कलप कोटि चलि जाहीं॥
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव देव त्रिपुरारी।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन-सोक-भयहारी॥
गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी।
तुलसिदास हरिचरन-कमल, हर! देहु भगति अविनासी॥९॥

राग धनाश्री

देव! मोहतम-तरणि, हर, रुद्र, शंकरशरणं,
हरण-भयशोक, लोकाभिरामं।
बालशशि भाल, सुविशाल लोचन-कमल,
काम-शतकोटि-लावण्यधामं॥
कंबु, कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह रुचिर,
तरुण-रविकोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग, अर्द्धांग शैलात्मजा,
व्याल-नृकपाल-माला विराजै॥
मौलि संकुल-जटामुकुट-विद्युच्छटा,
तटिनि बर बारि हरिचरण-पूतं।
श्रवण कुंडल, गरलकंठ करुणाकंद,
सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं॥
सूल-सायक-पिनाकासिकर सत्रुवन-
दहन इव धूमध्वज, वृषभ-यानं।
व्याघ्र-गज-चर्म्म परिधान, विज्ञान-घन,

९—निहार = कुहार।

१०—विग्रह = शरीर। संकुल = भरा हुआ। छाया हुआ। पूतं = पवित्र। पिनाकासि = धनुष और तलवार। धूमध्वज = अग्नि।

सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं ॥
तांडवित-नृत्य पर, डमरु-डिमडिम-प्रवर,
अशुभ इव भाति कल्याणराशी ।
महाकल्पांत ब्रह्मांडमंडल-दवन,
भवन कैलाश, आसीन काशी ॥
तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो,
विश्व भवदंशसंभव, पुरारी ।
ब्रह्मेंद्र-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-मरुत-यम,
अर्चि भवदंघ्रि सर्व्वाधिकारी ॥
अकल, निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन, ब्रह्म,
कर्मपथमेकमजनिर्विकारं ।
अखिल विग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर,
सर्वगत, शर्व, सर्वोपकारं ॥
ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्य सुख,
सुभग सौभाग्य शिव सानुकूलं ।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार-पथ
भ्रमत भव विमुख-तव-पादमूलं ॥
नष्टमति, दुष्ट अति, कष्टरत, खेदगत
दासतुलसी शंभु शरण आया ।
देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे
भक्तिमनवरत गतभेदमाया ॥ १० ॥

भीषणाकार, भैरव भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति, विपतिहर्त्ता ।

१०—भाति = जान पड़ते हैं। तज्ञ = तत्व के जाननेवाले। भवदंशसंभव = तुम्हारे अंश से पैदा हुआ। अर्चि = पूजन करके। भवदंघ्रिं = तुम्हारे चरण। निरंजन = माया रहित। अनवरत = सदा।

११—प्रमथ = महादेवजी के एक प्रकार के गण।

मोहमूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारणतरण, करण, कर्त्ता ॥
अतुल बल विपुल विस्तार, विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणीधराभं।
शिरसि संकुलित कल कूट पिंगल जटा-पटल शतकोटिविद्युच्छटाभं॥
भ्राज विबुधापगा-आप पावन परम मौलिमालेव शोभाविचित्रं।
ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं॥
इंदु-पावक-भानु-नयन, मर्दनमयन, ज्ञानगुण-अयन, विज्ञानरूपं।
रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवणकुंडल, वदन-छवि अनूपं॥
चर्म-असिशूलधर, डमरु शर चाप कर, यान वृषभेश, करुणानिधानं।
जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरलपानं॥
भस्मतनुभूषणं, व्याघ्रचर्म्माम्बरं, उरग-नरमौलि-उरमालधारी।
डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी॥
काल अतिकाल, कलिकाल-व्यालाद-खग, त्रिपुरमर्दन, भीम-कर्म भारी।
सकल-लोकांत-कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी॥
पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता॥
यस्यगुणगण गनति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।
शेष सर्वेश आसीन आनंदवन, प्रणत-तुलसीदास-त्रासहारी॥ ११॥

सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं, परम रम्यं।
काममदमोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं॥
कंबु-कुंदेंदु-कर्पूरगौरं, शिवं, सुंदरं, सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध-सनकादि-योगींद्र-वृंदारका-विष्णु-विधि-वंद्य चरणारविंदं॥
ब्रह्मकुलवल्लभं, सुलभमतिदुर्ल्लभं, विकटवेषं, विभुं, वेदपारं।
नौमि करुणाकरं, गरलगंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं॥
लोकनाथं, शोकशूलनिर्मूलिनं, शूलिनं, मोहतम-भूरि-भानुं।

११—अतिकाल = काल के भी परे अर्थात् उसके भी काल। व्यालाद-खग = साँपखानेवाला पक्षी, गरुड़। आनंदवन = काशी।

कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं ॥
तह्ममज्ञानपाथोधि-घटसम्भवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं ।
प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं, दासतुलसी शरण सानुकूलं ॥१२॥

राग-बसंत

सेवहु सिवचरन सरोज-रेनु । कल्यान-अखिलप्रद कामधेनु ॥
कर्पूरगौर, करुनाउदार । संसार-सार, भुजगेंद्रहार ॥
सुख-जनम-भूमि महिमा अपार । निर्गुन, गननायक, निराकार ॥
त्रयनयन, मयन-मर्दन, महेस । अहँकार-निहार-उदित-दिनेस ॥
बर बाल-निसाकर मौलि भ्राज । त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज ॥
जिन कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल । तिनकी गति कासीपति कृपाल ॥
उपकारी को पर हर समान ? सुर असुर जरत कृत गरलपान ॥
बहु कल्प उपाय करिय अनेक । बिनु संभु-कृपा नहिं भव बिवेक ॥
बिज्ञान-भवन, गिरिसुता-रमन । कह तुलसिदास मम त्रास-समन ॥१३॥

देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत।मनो देखनतुमहिं आई ऋतु बसंत॥
जनु तनुदुति चंपक-कुसुममाल । बर बसन नील नूतन तमाल ।
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल । सूचति कटि केहरि, गति मराल ।
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । नूपुर किंकिनि कलरव-बिहंग ॥
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल ॥
आनन सरोज, कच मधुपपुंज । लोचन बिसाल नव नीलकंज ॥
पिक-बचन चरित बर बरहि कीर । सित सुमन हास, लीला समीर ॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । उर बसि प्रपंच रचै पंचबान ॥
करि कृपा हरिय भ्रमफंदकाम । जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥१४॥*

राग मारू

दुसह-दोष-दुख-दलनि करु देवि ! दाया ।
विश्वमूलासि, जन-सानुकूलासि, शरशूलधारिणि, महामूल माया ॥

---

*—इस पद में शिव के अर्द्धांग रूप पर बसंत ऋतु का रूपक घटाया है।

तड़ितगर्भांग सर्वांग सुंदर लसत, दिव्य पट, भव्य भूषण विराजै।
बालमृगमंजु-खंजन-विलोचनि, चंद्रवदनि, लखि कोटि रतिमार लाजै
रूप-सुख-शील-सीमासि भीमासि रामासि वामासि वर बुद्धि बानी।
छमुख-हेरंब-अम्बासि जगदम्बिके! शंभुजायासि जय जय भवानी॥
चंड-भुजदंड-खंडनि विहंडनि, महिषमद-भंग करि अंग तोरे।
शुम्भ निःशुम्भ कुम्भीश रणकेशरिणि, क्रोधवारिधि वैरिवृंद बोरे।
निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुणकथन उर्विधर करै सहस जीहा।
देहि मा! मोहिप्रण प्रेम, यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा॥१५

राग रामकली

जय जय जगजननि, देवि, सुर-नर-मुनि-असुरसेवि,
भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि, कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धिसदनि, पर्वशर्वरीश-बदनि,
ताप-तिमिर-तरुनतरनि-किरनमालिका॥
वर्मचर्मकर कृपान, सूलसेलधनुषबान-
धरनि, दलनि दानवदल, रनकरालिका।
पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत,
भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका॥
जय महेसभामिनी, अनेकरूप-नामिनी,
समस्त-लोकस्वामिनी, हिमशैलबालिका।
रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम,
देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रणतपालिका!॥ १६॥
जय जय भगीरथनंदिनि, मुनिचय-चकोरचंदिनि,
नर-नाग-विबुधबंदिनि, जय जह्नु बालिका।

१५—हेरंब=गणेश।
१६—पर्व-शर्वरीश=पूर्णिमा का चंद्रमा।
१७—चय=समूह।

विष्णुपदसरोजजासि, ईस-सीस पर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका ।
बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयतापहारि,
भँवर बर, बिभंगतर तरंगमालिका ॥
पुरजन-पूजोपहार सोभित ससि-धवल धार,
भंजनि-भवभार, भक्तिकल्प-थालिका ।
निजतटवासी बिहंग, जल-थलचर पसु पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ॥
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंश बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥१७॥

राग धनाश्री

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।
बिष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघबृंद-बिद्राविनी ॥
मिलितजलपात्रअज-युक्तहरिचरनरज, बिरजवरवारित्रिपुरारिसिर-धामिनी
जह्नु-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगरसुत, भूधर-द्रोनि-बिहरनि बहुनामिनी ॥
यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुतकामिनी ।
स्वर्गसोपान, बिज्ञान-ज्ञानप्रदे ! मोहमदमदन-पाथोज-हिमजामिनी ॥
हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीर बर, मध्य धारा बिशद बिश्वअभिरामिनी ।
नील पर्यंक कृत शयन सर्पेश जनु सहसशीशावली स्रोत सुरस्वामिनी ॥
अमितमहिमा अमितरूप भूपावली-मुकुटमनि-वंदिते ! लोकत्रयगामिनी ।
देहिरघुबीरपदप्रीतिनिर्भरमातु ! दासतुलसीत्रासहरणिभवभामिनी ॥१८॥

राग रामकली

हरति पाप त्रिबिधताप सुमिरत सुरसरित ।
बिलसति महि कल्पबेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥

१७—बिभंग = चंचल । थालिका = थाला, आलबाल ।

१८—अज = ब्रह्मा । बिरज = निर्मल । द्रोनि = घाटी । निर्भर = पूर्ण ।

सोहति ससिधवल-धार सुधा-सलिल-भरित ।
विमलतर तरंग लसत रघुवर के से चरित ॥
ताे बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित? ॥१९॥

ईससीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि।
मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध, सुजन मंगल-करनि ॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि ।
सगरसुवन-साँसति-समनि, जलनिधि-जल-भरनि ॥
महिमा की अवधि करसि बहु विधि-हरि-हरनि ।
तुलसी करु बानि विमल विमल-बारि-बरनि ॥२०॥

राग बिलावल

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ।
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न ॥
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन-मुख मलीन लहै आढ़ न ।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ-मेघ लागे डाढ़न ॥२१॥

राग भैरव

सेइय सहित सनेह देहभरि कामधेनु कलि कासी ।
समनि-सोक-संताप-पाप-रुज, सकल-सुमंगल-रासी ॥
मरजादा चहुँ ओर चरन वर सेवत सुरपुरवासी ।
तीरथ सब सुभ अंग, रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥
अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी ।
गलकंबल बरुना बिभाति, जनु लूम लसति सरितासी ॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि खलगन भयदा सी ।

२१—बहि = बहिः, बाहर । आढ़ = ओट । जगदघ = जगत् + अघ ।
२२—अंतर-अयन = अंतगृही । अयन = आयन, दुग्धकोश । सरितासी = सरिता + असी ।

लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी ॥
मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर, सुरसरि सुखसुषमा सी ।
स्वारथ-परमारथ-परिपूरन, पंचकोस महिमा सी ॥
विस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा सी ।
सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी ॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी ।
ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग आखर-विस्वविकासी ॥
चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी ।
लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी ॥
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति-कला सी ।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी ॥२२॥

राग बसंत

सब सोचविमोचन चित्रकूट । कलिहरन, करनकल्यान बूट ॥
सुचि अवनि सुहावनि आलवाल । कानन विचित्र, बारी बिसाल ॥
मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच । बर-बारि विषम नर नारि नीच ॥
साखा, सुसृंग, भूरुह, सुपात । निरझर मधु, बर मृदु मलयबात ॥
सुक-पिक-मधुकर-मुनिबर-विहारु । साधन-प्रसून, फलचारि चारु ॥
भवघोरघाम-हर सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाउ जानकीनाह ॥
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥
रस एक, रहित-गुनकर्मकाल । सिय राम लषन पालक कृपाल ॥
तुलसी जौं राम-पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥२३॥

२२—लोलदिनेस = लोलार्क (एक कुंड) । त्रिलोचन = एक स्थान । करनघंट = करनघंटा । पंचनदा = पंचगंगा । माधव = बिंदुमाधव । चारितु = चारा ।

२३—बूट = वृक्ष । बारि = बारी, क्यारी ।

राग कान्हरा

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।
कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ॥
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु ।
सैलसृंग भवभंगहेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु ॥
जहँ जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु ।
सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ नलु ॥
न करु बिलंब, बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पलु ।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु ।
करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महा फलु ॥
कामदमन कामता-कलपतरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु ।
तुलसी तोहिं बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु ॥ २४ ॥

राग धनाश्री

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-बिधु बिबुधकुल-कैरवानंदकारी ।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन-सोकसंतापहारी ॥
जयति जय बालकपि-केलि कौतुक-उदित-चंडकरमंडल-ग्रासकर्त्ता ।
राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन, सरनभयहरन, जय भुवनभर्त्ता ॥
जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसारपाता ।
बिप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आसिषाकार-बपुष बिमल-गुन-बुद्धि-बारिधि बिधाता ॥
जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन, बालि-बलसालि-बध-मुख्य-हेतू ।
जलधि-लंघन-सिंह, सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर-उत्पातकेतू ॥
जयति भूनंदिनी-सोच-मोचन, बिपिनदलन, घननादबस-बिगतसंका ।

२४—पय = पयस्विनी ।

२५—चंडकर मंडल = सूर्य-मंडल । संसारपाता—संसार की रक्षा करनेवाला ।

लूमलीला-अनलज्वालमालाकुलित, होलिकाकरन-लंकेसलंका ॥
जयति सौमित्रिरघुनंदनानंदकर, रिच्छ-कपि-कटक-संघटविधाई ।
बद्ध-बारिधि-सेतु, अमरमंगलहेतु, भानुकुलकेतु-रनबिजयदाई ॥
जयति जय बज्रतनु, दसन, नख, मुख विकट, चंड-भुजदंड-तरु, सैल-पानी।
समर-तैलिकयंत्र तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥
जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता ।
अघट-घटना-सुघट, सुघट-बिघटन-बिकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता ॥
जयति बिस्व-बिख्यात बानैत, बिरुदावली बिदुष बरनत बेद बिमलबानी ।
दास तुलसीत्रास-समन सीतारमन-संग सोभित राम राजधानी ॥२५॥

जयति मर्कटाधीस मृगराज-बिक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
मोह-मद-कोह-कामादि-खल-संकुल-घोरसंसार-निसि-किरनमाली ॥
जयति लसदंजनादितिज कपि-केसरी-कस्यप-प्रभव-जगदार्तिहर्ता ।
लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-हंस हनुमान कल्यानकर्ता ॥
जयति सुबिसाल बिकराल-बिग्रह, बज्र-सार सर्बांग भुजदंड भारी ।
कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि-बृहद् बैरि-सस्त्रास्त्रधर-कुधरधारी ॥
जयति जानकी-सोचसंताप-मोचन, रामलछिमनानंद-बारिज-बिकासी ।
कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन-तेजरासी ॥
जयति पाथोधि पाषान-जलजान-कर जातुधान-प्रचुर-हरष-हाता ।
दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित्-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता ॥
जयति भुवनैकभूषन, बिभीषन-बरद-बिहित-कृत, रामसंग्राम-साका ।
पुष्पकारूढ़-सौमित्रि-सीता-सहित भानुकुलभानु-कीरति-पताका ॥
जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता ।

२५—संघट-बिधाई = एकत्र करनेवाला । घटकरन = कुंभकर्ण । कदन = मारण, विनाश ।

२६—हंस = सूर्य । बालधि = पूँछ । पाकारिजित् = इंद्रजीत (मेघनाद) । मर्मभित = मर्मस्थानों को भेदनेवाले ।

साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-वैताल-भूत-प्रमथ-जूथ-जंता ॥
जयति वेदांतविद, विविधविद्या-विशद-वेदवेदांग-विद्, ब्रह्मवादी ।
ज्ञान-वैराग्य-विज्ञान-भाजन विभो! विमलगुन गनत सुक नारदादी ॥
जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-ज्ञानव्रत, सत्यरत, धर्मचारी ।
सिद्ध-सुरवृंद-जोगींद्र-सेवित सदा दासतुलसी प्रनत-भय-तमारी ॥२६॥

जयति मंगलागार, संसारभारापहर बानराकार, विग्रह-पुरारी ।
राम-रोपानल-ज्वालमालामिस-ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी ॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो ।
यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंदसिंधो ॥
जयति रुद्राग्रणी, विश्वविद्याग्रणी, विश्वविख्यात भट-चक्रवर्त्ती ।
सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्त्ती ॥
जयति संग्राम-जय, रामसंदेसहर, कोसला-कुसल-कल्यान-भाषी ।
रामविरहार्कसंतप्त-भरतादिनरनारि-सीतलकरन-कल्पसाखी ॥
जयति सिंहासनासीनसीतारमन निरखि निर्भर-हरष नृत्यकारी ।
रामसम्राज-सोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥२७॥

जयतिवातसंजात,विख्यात-विक्रम,बृहद्बाहु,बलविपुल,बालधिविसाला।
जातरूपाचलाकार-विग्रह लसत-लोमविद्युल्लता-ज्वालमाला ॥
जयति बालार्क-बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूटधारी ।
विकट भ्रुकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी ॥
जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर धनंजय-रथत्रानकेतू ।
भीषम-द्रोन-करनादि-पालित, कालदृक, सुयोधन-चमू-निधनहेतू ॥
जयति गतराज-दातार; हरतार-संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी ।
ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा समन घोर मारी ॥

२७—ध्वांतचर = निश्चर । सलभ = फतिंगा । नतग्रीव = नीची गर्दन-वाले । कल्पसाखी = कल्पवृक्ष । निर्भर = भरा ।

२८—जातरूपाचल = सोने का पर्वत । कपिस = भूरा । व्यालसूदन = गरुड़ ।

जयति निगमागम-व्याकरन-करनलिपि काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो।
सामगायक, भक्त-काम-दायक, वामदेव-श्रीराम-प्रियप्रेमबंधो॥
जयति धर्मांसु-संदग्ध-संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिव्यदेह-दाता।
कालकलि-पाप-संताप-संकुल-सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-माता॥२८॥

जयति निर्भरानंद-संदोह कपिकेसरी केसरीसुवन भुवनैकभर्ता।
दिव्य-भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे, भगत-संताप-चिंतापहर्ता॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो! ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी।
वचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मव्रती जानकीनाथ-चरनानुरागी॥
जयति विहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मन्मथ-मथन, ऊर्ध्वरेता।
महानाटक-निपुन, कोटि-कविकुल-तिलक, गानगुन-गर्व-गंधर्व-जेता॥
जयति मंदोदरी-केसकर्षन विद्यमान-दसकंठ-भटमुकुट-मानी।
भूमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत् जातनाजंतु-कृत-जातुधानी॥
जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच-लोचनसजल-सिथिलबानी।
रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर पाहि! दासतुलसी-सरन सूलपानी॥२९॥

राग सारंग

जाके गति है श्री हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन मूरति मोदनिधान की॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम, अरु जानकी।

२८—करनलिपि = लेखक। धर्मांसु = सूर्य्य।

२९—निर्भरानंद = पूर्णानंद। भूम्यंजनामंजुलाकरमणे (भूमि + अंजना + मंजुल + आकर + मणि) = अंजना रूपी भूमि की सुंदर खानि के रत्न। ऊर्ध्वरेता = जिसका वीर्य कभी च्युत न हुआ हो। भूमिजा = सीता। संजात = उत्पन्न। अंतकृत = यमराज। जातनाजंतु = वह जंतु जो मरणकाल का कष्ट भोग रहा हो।

तुलसी कपि की कृपा-विलोकनि खानि सकल कल्यान की ॥ ३० ॥

राग गौरी

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाके है सब भाँति भरोसो कपि केसरीकिसोर को ?
जनरंजन, अरिगन-गंजन, मुखभंजन खल बरजोर को।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट-सिरमोर को ॥
उथपे-थपन, थपे-उथपन पन विबुधबृंद-बंदिछोर को।
जलधि लंघि, दहि लंक प्रबल-दल-दलन निसाचर घोर को ॥
जाको बालविनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुकचोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को ॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को।
सदा अभय, जय-मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोर को ॥
भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारो करतल, जस गावत गई-बहोर को ॥३१॥

राग बिलावल

ऐसी तोहिं न बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से, तो से न वसीले ॥
तेरे देखत सिंह को सिसु-मेढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ॥
हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भए अब गर्ब-गहीले ॥

३१—उथपे थपन = उखड़े हुए को स्थापित करनेवाले। बंदिछोर = बंदीखाने से छोड़ानेवाले। रदमद = अहंकार रूपी दाँत। रनरोर = रण में विजयी। गई बहोर = गई हुई वस्तु को पुनः लौटानेवाले।

३२—बूझिये = चाहिए। वसीले = जरिये, द्वारा। गर्वगहीले = घमंडी।

सेवक को परदा फटै, तू समरथ सी ले ।
अधिक आपु तें आपनो सुनि मान सही ले ॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जे रामरँगीले ॥३२॥

समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे ।
मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया, रे ॥
तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे ।
अँधियारे मेरी बार क्यों ? त्रिभुवन-उजियारे ! ॥
केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे ।
केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे ॥
खायो खोंचो माँगि मैं तेरो नाम लिया रे ।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे ॥
जो तोसों होतो फिरों मेरो हेतु हिया रे ।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे ॥
तो सो ज्ञाननिधान को सर्वज्ञ बिया रे ? ।
हौं समुझत साईं-द्रोहि की गति छार-छिया रे ॥
तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे ।
तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ? ॥ ३३ ॥

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी ।
इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी ॥
लोक-रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी ।

३३—कीबे = करना । भिया = भैया (संबोधन) । चिंचिनी-चियाँ = इमली का बीज । डारि दिया = त्याग किया । खोंचो = भिक्षा (बाज़ार की) । जागि = प्रसिद्ध होकर । इया = यह । बिया = दूसरा । छिया = गलीज़ । तकिया = शरण, आश्रय ।

३४—बिलग न मानिए = बुरा न मानिए ।

अति अरपे अनयरपे हूँ देहिं दैवहिं गारी ॥
ना कहि आयो नाय सों साँसति भय भारी ।
"कहि आयो, कीबी छमा निज ओर निहारी" ॥
समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी ।
सो सब विधि ऊपर करै अपराध बिसारी ॥
बिगरी सेवक की सदा साहबहिं सुधारी ।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ॥३४॥

कटु कहिए गाढ़े परे सुनु समुझि सुसाई ।
करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई ॥
समरथ सुभ जो पावई, बीर, पीर पराई ।
ताहि तकै सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई ॥
अपने अपने को भलो चहैं लोग लुगाई ।
भावै जो जेहिं तेहिं भजै सुभ असुभ सगाई ॥
बाँहबोल दै थापिए जो निज बरिआई ।
बिन सेवा सो पालिए सेवक की नाईं ॥
चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई ।
होत आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई ॥
बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई ।
नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई ॥३५॥

राग गौरी

मंगलमूरति मारुतनंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥
पवनतनय संतन-हितकारी । हृदय बिराजत अवधबिहारी ॥

३४—ऊपर करे = पक्ष ग्रहण करता है, सहायता करता है । निरारी = निराली, अनोखी ।

३५—सगाई = संबंध । बाँहबोल = भुजबल का भरोसा ।

मातुपिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत संभु सुक नारद॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद-नेह-निबाहू॥
बंदौं राम लषन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही॥३६॥

राग दंडक

लाल लाड़िलें लषन हितु हौ जन के।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु अपने पन के॥
धरनी-धरनहार भंजन-भुवनभार, अवतार साहसी सहसफन के।
सत्य-संध, सत्यब्रत, परमधरमरत, निरमल करम बचन अरु मन के॥
रूप के निधान, धनुबान पानि, तून कटि, महाबीर-बिदित, जितैया बड़ेरन के।
सेवक-सुखदायक, सबल, सब लायक, गायक जानकीनाथ-गुनगन के॥
भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम-स्यामघन के।
बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के॥३७॥

राग धनाश्री

जयति लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजगराज, भुवनेश, भूभारहारी।
प्रलयपावक-महाज्वाल-माला-वमन, शमन-संताप, लीलावतारी॥
जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन, शत्रुसूदन, रामभरतबंधो।
चारु-चंपकबरन, बसनभूषनी-धरन दिव्यतर, भव्य, लावण्यसिंधो॥
जयति गाधेय-गौतम-जनक सुखजनक विश्वकंटक-कुटिल-कोटिहंता।
बचन-चय-चातुरी-परसुधर-गर्वहर, सर्वदा रामभद्रानुगंता॥
जयति सीतेस-सेवासरस, विषयरस-निरस, निरुपाधि, धुरधर्मधारी।
विपुल-बलमूल, शार्दूलविक्रम, जलदनादमर्दन, महाबीर भारी॥
जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण-रामहित-करण-बरबाहु-सेतू।
उर्मिलारमण, कल्याणमंगलभवन, दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू॥३८॥

३८—भूधर = पृथ्वी को धारण करनेवाले। ज्वालमालावमन = लपट का समूह मुँह से निकालनेवाले। गाधेय = विश्वामित्र।

जयति भूमिजारमण-पदकंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषण-भानुबंश-भूषण, भूमिपाल-मणि-रामचंद्रानुरागी ॥
जयति विबुधेश-धनदादिदुर्लभ महा-राज-सम्राज-सुखप्रद-विरागी ।
खड्गधाराव्रतीप्रथमरेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-पतिप्रेम-पागी ॥
जयति निरुपाधि, भक्तिभावयंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी ।
पादुकानृपसचिव पुहुमिपालक परम धीर गंभीर बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान धनु यान महिमा बखानी ।
बाहुबल-बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़गति जानकी जानि जानी ॥
जयति रनअजिर-गंधर्वगनगर्वहर फेरि किये राम-गुनगाथ-गाथा ।
मांडवी-चित्तचातक-नवांबुदवरण, सरन-तुलसीदास-अभयदाता ॥३९॥

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम-तुहिनहर-किरनकेतू ।
देव ! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि सकल-कल्यान-हेतू ॥
जयति सर्वांगसुंदर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी ।
वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीरधर सत्रुसंकट-समन यत्प्रनामी ॥
जयति लवणांबुनिधि-कुम्भसम्भव, महादनुज-दुर्जन-दवन, दुरितहारी ।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरनरेनु-भूषित-भालतिलकधारी ॥
जयति श्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद-भक्ति-मुक्तिदाता ।
दासतुलसी चरनसरन सीदत, विभो ! पाहि ! दीनार्त्त-संताप-हाता ॥४०॥

३९—विबुधेश = इंद्र । यंत्रित = ताला लगा हुआ । परमिति = हद से परे, बेहद । गंधर्वगर्वहर = भरतजी के मामा युधाजित् को जब गंधर्वों ने तंग किया था तब उनकी सहायता के लिए भरतजी गए थे ।

४०—किरनकेतु = सूर्य । वर्म, चर्म, असि = कवच, ढाल और तलवार । यत्प्रनामी = जो प्रणाम करनेवाले हैं उनको । लवणाम्बुनिधि = लवणासुर रूपी समुद्र । कुम्भसंभव = अगस्त्य मुनि जिन्होंने समुद्र को सोख लिया था । श्रुतिकीर्त्ति = शत्रुघ्न की स्त्री । नर्मद = सुखदाता । सीदत = दुःख पाता है ।

बैजनाथ की सटीक विनय पत्रिका में ४१वाँ पद निम्नलिखित है, जो अन्य प्रतियों में नहीं है—

राग केदार

कवहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्यावबी कछु करुन-कथा चलाइ ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं 'सो है कौन'? कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकी जगजननि जन की किए बचन-सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ ॥ ४१ ॥

जयति श्रीजानकी भानुकुल-भानु की प्राणप्रिय-वल्लभे तरणि भूपे ।
राम-आनंद-चैतन्यघन-विग्रहा-शक्ति अह्लादनी साररूपे ॥
चित्त चरण चिंतनि जेहि धरत ही दूर हो काम भय कोह मद मोह माया ।
रुद्र विधि विष्णु सुरसिद्धि वंदित पदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥
कर्म जप योग विज्ञान वैराग्य लहि मोक्ष हित योगि जे प्रभु मनावैं ।
जयति वैदेही सब-शक्ति-शिरभूषणे ते न तव दृष्टि बिन कबहुँ पावैं ॥
कोटि ब्रह्मांड जगदीश को ईस जेहि निगम मुनि बुद्धि से अगम गावैं ।
विदित यह गाथ अहदान कुलनाथ सो नाथ तव दान कै हाथ आवैं ॥
दिव्य शत वर्ष जप ध्यान जब शिव धर्यो राम गुरुरूप मिलो पथ बतायो ।
चितै हित छीन लखि कृपा कीनी तबै, देखि, अति द्रुत महिं दरस पायो ॥
जयति श्री स्वामिनी सीय शुभगामिनी, दामिनी कोटि निज देह दरसे ।
इंदिरा आदि दै मत्त-गजगामिनी देव-भामिनी सबै पांव परसें ॥
दुखित लखि भक्त बिन दरस निज रूप तप यजन जप यतन ते सुलभ नाहीं ।
कृपा करि पूर्ण नवकंज-दल-लोचना प्रगट भइ जनकनृप-अजिर माहीं ॥
रमित तव विपिन प्रियप्रेम प्रकटन कारन लंकपति व्याज कछु खेल ठान्यो ।
गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु यतन करि तोहिं मिलि ईश आनंद मान्यो ॥
हीन तब सुमुख के संग रहि रंक सो बिमुख जो देव नहिं नाह मेरो ।
अधम उद्धरयि यह जानि गहि शरण तव दास तुलसी भयो आय चेरो ॥४१॥

४१—द्यायबी = देना, दिलाइयेगा । अघाइ = भरपेट । प्रभुदासीदास = तुलसी । बचन सहाइ किए = वचनों द्वारा की गई सहायता से ।

कबहुँ समय सुधि द्याइबो मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पान की ॥
सरलप्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की ।
निजगुन अरि-कृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहति न दिए दान की॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की ।
तुलसीदास न बिसारिए मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की ।४२।

जयति सच्चिद्व्यापकानंद परब्रह्म-विग्रह-व्यक्त लीलावतारी ।
विकल-ब्रह्मादि-सुर-सिद्ध-संकोचवश-विमल-गुण-गेह-नरदेह-धारी ॥
जयति कोशलाधीश-कल्याण, कोशलसुता-कुशल, कैवल्य-फल-चारु चारी।
वेदबोधित-कर्म-धर्म-धरणी-धेनु-विप्र-सेवक-साधु-मोदकारी ।
जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जनशाल, शापवश-मुनिवधू-पापहारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ॥
जयति धार्मिक-धुर धीर रघुवीर! गुरु-मातु-पितु-बंधु-वचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रि-विंध्याद्रि-दंडकविपिन-धन्यकृत, पुन्यकानन-विहारी ॥
जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित विराधा।
दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्वबाधा ॥
जयति खर-त्रिशिर-दूषण-चतुर्दशसहस-सुभट-मारीच-संहारकर्त्ता ।
गृध्र-शवरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित-निरुपाधि, त्रिविधार्ति-हर्त्ता ॥
जयति मदअंध कुकबंध बधि, बालि-बलशालि बधि, करण-सुग्रीव-राजा।
सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत, नमत पद रावणानुज निवाजा ॥
जयति पाथोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु, काल-मन-अगम लई ललकि लंका।
सकुल सानुज सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहितशंका॥

४२—बिसारनसील = विस्मरणशील, भूलने योग्य ।

४३—कोशलाधीश = राजा दशरथ । कोशलसुता = कौशल्या । पाकारिसुत = इंद्र का पुत्र जयंत। गर्त्त = गड्ढा। बिंडबित करी = लज्जित की। संघट = समूह ।

जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल,राम भे भूप, वैदेहि रानी ॥४३॥

जयतिराजराजेंद्रराजीवलोचनराम-नाम-कलिकामतरु,सामशाली ।
अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली॥
जयति मुनिदेव नरदेव दशरत्थ के, देव-मुनि-बंद्य किए अवधवासी ।
लोकनायक-कोक-सोक-संकट-समन, भानुकुल-कमल-कानन-विकासी ॥
जयति शृंगार-सर-तामरस-दाम-द्युति-देह, गुणगेह, विश्वोपकारी ।
सकल-सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमारूप, मनोभव कोटि-गर्वापहारी ॥
जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति-चारु-चर्मासि-वरवर्म-धारी ।
धर्मधुर धीर रघुवीर भुजबल-अतुल, हेलया दलित भूभार भारी ॥
जयतिकलधौत-मणि-मुकुट-कुंडल,तिलक-झलकभलिभाल,विधुवदन शोभा
दिव्य-भूषन-बसन, पीत उपवीत, किए ध्यान कल्याण-भाजन न को भा ? ॥
जयति भरत-सौमित्रि-शत्रुघ्न-सेवित सुमुख, सचिव-सेवक-सुखद-सर्वदाता।
अधम आरत दीन पतित पातक-पीन, सकृत नतमात्र कहे पाहि पाता ॥
जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत, पुण्यमय, धन्य जय राम-राजा।
चरित-सुरसरितकवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिवत मज्जत मुदित संत समाजा
जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर, सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला ।
विगत-दुखदोष, संतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत राम-राजलीला ॥
जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता ।
दासतुलसी चरणशरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहिभर्त्ता ॥ ४४ ॥

राग गौरी

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण-भवभय-दारुणं ।

४४—सामशाली = साम नीतिवाले । अनय = अनीति । किरणमाली = सूर्य । मनोभव = कामदेव । हेलया = खेल ही में, सहज ही में । कलधौत = सोना । सकृत = एक बार । पाता = रक्षक । कविमुख्य = वाल्मीकि । निःसरित = निकली हुई । वारांनिधि = समुद्र । नर्मद = सुखदाता ।

नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुणं ॥
कंदर्प-अगणित-अमित-छवि, नवनील-नीरज-सुंदरं ।
पटपीत मानहु तड़ित-रुचि शुचि नौमि जनकसुता-वरं ॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं ।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं ॥
सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदार अंग विभूषणं ।
आजानुभुज, सरचाप-धर, संग्रामजित-खरदूषणं ॥
इति वदत तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मनरंजनं ।
मम हृदयकंज निवास करु कामादि-खल-दल-गंजनं ॥ ४५ ॥

राग रामकली ।

सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ़ मन बारबारं ।
सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि, सठ! मानिविस्वासवदवेदसारं ॥
कोशलेंद्र नव-नीलकंजाभ-तनु मदनरिपु-कंजहृद-चंचरीकं ।
जानकीरमन, सुखभवन, भुवनैक प्रभु, समर-भंजन, परम कारुणीकं ॥
दनुज-बन-धूमध्वज, पान-आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं ।
अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव, गुनअयन, बहु-मयन-शोभानिधानं ॥
वासना-वृंद-कैरव-दिवाकर, काम-क्रोध-मद-कंज-कानन-तुषारं ।
लोभ-अति-मत्तनागेंद्र-पंचाननं, भक्तहित-हरन-संसारभारं ॥
केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं ।
सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पोतं ॥
शोक-संदेह-पाथोद-पटलानिलं, पाप-पर्वत-कठिन-कुलिसरूपं ।
संतजन-कामधुक-धेनु विश्रामप्रद, नाम-कलिकलुष-भंजन अनूपं ॥

४५—रुचि = शोभा ।

४६—धूमध्वज = अग्नि। केश = क + ईश = ब्रह्मा और महादेव। अनिल = वायु। पथि-संबल = मुसाफ़िरों के लिये कलेवा वा राह खर्च। मूलम् + इदम् + इव + एकम् = यही एकमात्र मूल है।

धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि-संबलं, मूलमिदमेव एकं ।
भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान दम नाम-आधीन साधन अनेकं ॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ।
येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ॥
श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नामबल विपुलमति मलिन-परसी ।
त्यागि सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी ॥

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन ।
हरन दुखद्वंद गोविंद आनंदघन ॥
अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै ।
दीप निज-बोध, गत क्रोध मद मोह तम, प्रौढ़ अभिमान-चितवृत्ति छीजै ॥
भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम-संतोषकारी ।
प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, विपुल-भवबासना-बीज-हारी ॥
असुभ-सुभकर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका, त्याग पावक, सतोगुन-प्रकासं ।
भगति-वैराग-बिज्ञान-दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥
बिमल-हृदि-भवन कृत सांति-पर्यंक सुभ सयन बिस्राम श्रीरामराया ।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥
एहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिलमुनितत्वदरसी ।
करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, वदति इति अमलमति दास तुलसी ॥४७॥

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की ॥

४६—तेन तप्तं हुतं......कालं = उसी ने तप, होम, और सब दान कर लिए और उसीने सब कर्म समूह कर लिए, जिसने समय को देख कर रात दिन रामनाम-रूपी पवित्र अमृत का पान किया । निसित = पैनी ।

४७—इति बासना = इस वासना की । निजबोध = आत्मज्ञान । प्रवर = श्रेष्ठ । वर्तिका = बत्ती । नीराजन = आरती, दीपदान । प्रमुख = आदि ।

४८—आरती = आर्ति, दुःख, पीड़ा ।

सुभग सौरभ धूप दीप वर मालिका।
उड़त अघ विहग सुनि ताल करतालिका॥
भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी।
विमल-विज्ञानमय, तेज-विस्तारिनी॥
मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिमजामिनी।
मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी॥
प्रनतजन-कुमुदवन-इंदुकर-जालिका।
तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका॥ ४८॥

दनुज-वन-दहन, गुनगहन, गोविंद, नंदादि-आनंददाताऽविनासी।
संभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर-तेजायतन क्रोधरासी॥
अनंत भगवंत जगदंत-अंतक-त्रास-समन श्रीरमन भुवनाभिरामं।
भूधराधीस जगदीस ईसान विज्ञानघन ज्ञानकल्यान-धामं॥
वामनाव्यक्त पावन परावर विभो, प्रगट परमातमा प्रकृति-स्वामी।
चंद्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेशगामी॥
नीलजलदाभ-तनु स्याम बहु-काम-छवि, राम राजीवलोचन कृपाला।
कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि, जटा सुरतटिनि, सित सुमनमाला॥
वसन-किंजल्क-धर चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला।
मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसारज्वाला॥
कृष्ण करुनाभवन, दवन-कालीय-खल विपुल-कंसादि-निर्वंसकारी।

४८—हिमजामिनी = जाड़े की रात। जालिका = समूह। महिषेश = महिषासुर।

४९—अंतक = यमराज। परावर विभो = सर्वत्र व्यापक। परावर = दूर और पास, सर्वत्र। किंजल्क = कमल की केसर के समान, जो पीले रंग की होती है। अंधकोरग = अंधक दैत्य रूपी सर्प। गुणवृत्ति = त्रिगुण व्यापार। सिंधुसुत = जलंधर। विरज = रजोगुण के प्रभाव से रहित। अनवद्य = दोष से रहित।

त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी ॥
ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परम हित ज्ञानगोतीत गुणवृत्तिहर्त्ता ।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीस, भव, दक्षमख-अखिल-विध्वंसकर्त्ता ॥
भक्तिप्रिय भक्तजन-कामधुक-धेनु हरि हरन-विकट-विपति-भारी ।
सुखद नर्मद वरद विरज अनवद्यऽखिल, विपिन-आनंद-वीथिन-विहारी
रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्वदुख-हरनि आनंदखानी ।
विष्णुसिवलोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास विसद बानी*॥४९

भानुकुल-कमल-रवि, कोटि-कन्दर्प-छबि, कालकलि-व्यालमिववैनतेयं
प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंडधर, तूनवर विसिष, बलमप्रमेयं ॥
अरुन राजीवदल-नयन सुषमा-अयन स्याम-तनुकांति वर-वारिदाभं ।
तप्तकांचन-वस्त्र शस्त्रविद्या-निपुन सिद्धसुर-सेव्य पाथोजनाभं ॥
अखिल लावन्यगृह विश्वविग्रह परम प्रौढ़ गुनगूढ़ महिमा उदारं ।
दुर्द्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भग्न-संसार-पादप-कुठारं ॥
सापबस-मुनिवधू-मुक्तकृत, विप्रहित-यज्ञरच्छन-दच्छ पच्छकर्त्ता ।
जनकनृप-सदसि-सिवचाप-भंजन, उग्र-भार्गवागर्व-गरिमापहर्त्ता ॥
गुरुगिरा-गौरवामरसुदुस्त्यज-राज्य त्यक्त श्री सहित; सौमित्रि-भ्राता ।
संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य, अज, दुष्टवधनिरत, त्रैलोक्य-त्राता ॥
दंडकारन्य-कृत-पुन्य-पावनचरन, हरन-मारीच-मायाकुरंगं ।
बालिबल-मत्तगजराज-इव केसरी सुहृद-सुग्रीव-दुखरासि-भंगं ॥
रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट, समर सैल-संकास रिपु-त्रासकारी ।
बद्ध पाथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकुल-दलन-दससीस-भुजबीस-भारी ॥

---

*यह पद रामभक्तों में हरिशंकरी के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि विष्णु और शिव के नाम साथ साथ आते गए हैं ।

५०—दुर्ग = दुर्गम । सदसि = सभा में । भार्गव = परशुराम । भार्गव = पूर्णगर्व । दुस्त्यज = कठिनता से त्यागने योग्य । अनुसृत्य = अनुसार, नाईं । भंग = काटने के हेतु । वहित्र = जहाज ।

दुष्टविबुधारि-संघात-महिभार-अपहरन अवतार कारन अनूपं ।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं ॥
सेष स्रुति सारदा संभु नारद सनक गनत गुन, अंत नहिं तव चरित्रं ।
सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रासनिधि वहित्रं ५०

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि,तारुण्यतनु तेजधामं ।
सच्चिदानंद आनंदकंदाकरं विस्वविस्राम रामाभिरामं ॥
नीलनव-वारिधर सुभग-सुभ-कांतिकर पीतकौशेय-वरवसन-धारी ।
रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सदृस-उद्योतकारी ॥
स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रू रुचिर अति, अरुन अंभोज लोचन बिसालं ।
वक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं, माररिपु-हृदय-मानस-मरालं ॥
नासिका चारु, सुकपोल, द्विज बज्रद्युति, अधर बिंबोपमा, मधुर हासं ।
कंठ दर, चिबुक वर, वचन गम्भीरतर, सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं ॥
सुमन-सुविचित्र-नवतुलसिका-दलजुतं मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं ।
भ्रमत आमोदबस मत्तमधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति-गानं ॥
सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं ।
वाम दिसि जनकजासीन-सिंहासनं कनक-मृदुवल्लिवत तरु-तमालं ॥
आजानुभुजदंड, कोदंड मंडित वाम बाहु, दच्छिण पानि बानमेकं ।
अखिल मुनिनिकर सुरसिद्ध गंधर्व वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं ।
अनघ अविछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं ।
प्रणतजन-खेदविच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि-साकं ॥
युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं, चिह्न कुलिसादि सोभातिभारी ।
हनुमंत-हृदिविमल-कृतपरममंदिरसदादासतुलसीसरन-सोकहारी॥५१॥

५१—कौशेय = रेशमी । वक्त्र = मुख । दर = शंख । आमोद = सुगंध । श्रीवत्स = श्री का चिह्न । केयूर = बिजायठ । अविछिन्न = पूर्ण । खलु = निश्चय करके । सर्वतोभद्र = सब प्रकार से कल्याण रूप । असमाकं = अस्माकं, हमको । साकं = सहित । सद्म = घर ।

कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित-अमितगुन,विपुल विस्तारलीला।
गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला॥
वारिचर-वपुषधर, भक्त-निस्तार-पर, धरनि कृत नाव महिमातिगुर्वी ।
सकल यज्ञांसमय उग्र-विग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥
कमठ अति विकट-तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी ।
प्रगटकृत अमृत, गो, इंदिरा, इंदु वृंदारका-वृंद-आनंदकारी ॥
मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक दुष्ट दनुज द्विजधर्म-मर्याद-हर्ता ।
अतुल मृगराजवपु धरित, विद्दरित अरि, भक्त-प्रह्लाद-अह्लादकर्त्ता ॥
छलन बलि कपट वटुरूप वामन ब्रह्म, भुवन-पर्य्यंत पद-तीनि-करणं।
चरन-नख-नीर त्रैलोक्यपावन परम, विबुधजननी-दुसह-शोकहरणं ॥
छत्रियाधीस-करिनिकर-वर-केसरी परसुधर विप्र-ससि-जलदरूपं ।
बीस-भुजदंड-दससीसखंडन चंडवेग-सायक नौमि राम-भूपं ॥
भूमि-भर-भारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूपधर-भक्तहेतू ।
वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-वंसाटवी-धूमकेतू ॥
प्रबल-पाखंड-महिमंडलाकुल देखि निंद्यकृत-अखिल-मखकर्म-जालं ।
शुद्धबोधैक घनज्ञान गुनधाम अज बुद्ध अवतार वंदे कृपालं ॥
कालकलि-जनित-मल-मलिनमन सर्वनर, मोहनिसि-निविड़यमनांधकारं।
विष्णुयशा-पुत्र कल्कीदिवाकर उदित दासतुलसी हरन विपति-भारं ॥५२॥

सर्व-सौभाग्यप्रद, सर्वतोभद्र-निधि, सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं ।
शर्व-हृदि-कंज-मकरंदमधुकर रुचिररूप भूपालमनि नौमि रामं ॥
सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीतं ।
निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोध-मद-हरन करुना-निकेतं ।
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं ।

५२—गुर्वी = बड़ी । क्रोड = शूकर । उर्वी = पृथ्वी । कंडुसुख = खुजलाने का सुख । विबुधजननी = अदिति । ससि = खेती । भर = भारी । अटवी = जंगल । विष्णुयशा = एक ब्राह्मण जिसके पुत्ररूप में कल्कि अवतार होगा ।

प्राकृत प्रकट परमातमा परमहित प्रेरकानंत वंदे तुरीयं ॥
भूधरं सुंदरं श्रीवरं मदन-मद-मथनं, सौंदर्य-सीमातिरम्यं ।
दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं ॥
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी ।
धर्मवर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक द्विजपूज्य ब्रह्मण्य जनप्रिय मुरारी ॥
नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानंद मूलं ।
सर्वरच्छक सर्वभच्छकाध्यच्छ कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥
सिद्धि साधक साध्य, वाच्य वाचक रूप, मंत्र-ज्ञापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा ।
परमकारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य-द्रष्टा ॥
व्योम-व्यापक विरज ब्रह्म बरदेस बैकुंठ वामन विमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध वृंदारकावृंद-वंदित सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥
पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुनसन्निपातं ।
बचन मन कर्म गतसरन तुलसीदास, त्रास-पाथोधि-इव कुंभजातं ॥५३॥
विश्वविख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्वमर्याद व्यालादगामी ।
ब्रह्म बरदेश बागीश व्यापक विमल विपुल बलवान निर्वानस्वामी ॥
प्रकृति, महतत्व, सब्दादि, गुन, देवता, व्योम मरुदग्नि, अमलांबु, उर्वी ।

५३—शर्व = महादेव । सर्वास्पद = सब वस्तुओं का मूलस्थान । प्राकृत = प्रकृति से बद्ध, मनुष्यरूपधारी । तुरीय = मोक्षरूप । भूधर = भूमि को धारण करनेवाले । ब्रह्मकर्म = ब्रह्म विद्या और कर्मकांड । निर्मान = बेहद, अपार । गूढ़ार्चि = गुप्त तेजवाला । वाच्य = अर्थ । वाचक = शब्द । स्रष्टा = सृष्टि का रचयिता । विरज = रजोगुण रहित (शुद्ध सत्व-स्वरूप) । बरद + ईश = देवताओं के स्वामी । संमोह = भारी मोह । सन्निपात = समूह, ढेर ।

५४—जिष्णो = हे जयशील । सर्पस्रग = सर्प में माला के समान अर्थात भ्रम-रूप वस्तु में सत्य वस्तु के समान । वेदांत के अनुसार इस मिथ्या संसार की जो सत्ता प्रतीत होती है वह ब्रह्मरूप सत्य वस्तु के कारण । ज्ञानप्रिय = ज्ञाता । अतिकल्प = कल्प से परे । तल्प = शय्या । वेदगर्भ = ब्रह्मा । अर्भक = पुत्र । वेदगर्भार्भक = सनकादिक । अवांक पर = यह और वह अर्थात परा अपरा विद्या । तमी = रात्रि । वंदारु = वंदना करनेवाले ।

बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तात्मा काल-परमानु चिच्छक्ति गुर्वी ॥
सर्वमेवात्र-त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद, विष्णो।
भुवन भवदंस कामारि-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-जनक जिष्णो ॥
आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पश्यंति ये ब्रह्मवादी।
यथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी ॥
गंभीर गर्वघ्न गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार-दाता ॥
सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत कल्पनातीत अहि-तल्पवासी।
वनज-लोचन वनज-नाभ वनदाभ-वपु वनचर-ध्वज-कोटि-लावन्यरासी ॥
सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्त्ति-हर्त्ता।
वेदगर्भार्भकादभ्रगुन-गर्व-अर्वापर-गर्व-निर्वापकर्त्ता ॥
भक्त-अनुकूल, भवसूल-निर्मूलकर, तूलअघ-नामपावक-समानं।
तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनीधरन सरन-भय-हरन करुनानिधानं ॥
बहुल बृंदारु-बृंदारकावृंद-पद-द्वंद, मंदारमालोरधारी।
पाहिमामीस संतापसंकुल सदा दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥५४॥

संत-संतापहर विश्वविश्रामकर राम कामारि-अभिरामकारी।
सुद्धबोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंदवर्द्धन खरारी ॥
सील-समता-भवन विषमता-मति-समन राम रमारमन रावनारी।
खड्गकर चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तूण, सर-सक्ति-सारंगधारी ॥
सत्यसंधान निर्वानप्रद सर्वहित सर्वगुन-ज्ञान-विज्ञानसाली।
सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नामदिवसेस-खर-किरनमाली ॥
तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी।
मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी ॥

२२—अभिराम = आनंद। सत्यसंधान = सत्यप्रतिज्ञ। तपन = सूर्य। तमपर = तमोगुण के परे। श्रुतिमाथ = वेदों के मस्तक अर्थात् मुख्य तत्व। दुराप = कठिनता से मिलनेवाले। करन = सामग्री।

वेदविख्यात वरदेस वामन विरज विमल वागीस वैकुंठस्वामी ।
काम-क्रोधादि-मर्दन विवर्धन-छमा शांतविग्रह विहँगराज-गामी ॥
परम पावन, पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्त्ता ।
भुवनभूषन, दूषनारि, भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता ॥
अमल अविचल अकल सकल संतप्त-कलि-विकलता-भंजनानंदरासी ।
उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, छीरसागर-अयन, सर्ववासी ॥
सिद्ध-कवि-कोविदानंददायक पदद्वंद, मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं ॥
नित्य निर्मुक्त संयुक्तगुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता ।
विश्व-पोषन-भरन विश्वकारन-करन, सरन-तुलसीदास-त्रासहंता ॥५५॥

दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्त्ता ।
दुष्टतादमन, दमभवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना-नासकर्त्ता ॥
भूरिभूषन भानुमंत भगवंत भवभंजनाभयद भुवनेस भारी ।
भावनातीत भवबंध भव-भक्तहित भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी ॥
वरद घनदाभ वागीस विश्वातमा विरज वैकुंठ-मंदिर-विहारी ।
व्यापकव्योम वंद्यांघ्रि वामन विभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंतापहारी ॥
सहज सुंदर सुमुख सुमन सुभ सर्वदा सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी ।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित् सर्वहित सत्यसंकल्प कल्पांतकारी ॥
नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता ।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥
महामंगलमूल मोद-महिमायतन मुग्ध-मधु-मथन मानद अमानी ।

२६—भानुमंत = सूर्य के समान प्रकाशवाले । ब्रह्मचिंता = ब्राह्मणों की चिंता । निजानंद = आत्मानंद स्वरूप । मानाथ = लक्ष्मीपति । अविरल = अनवच्छिन्न । आपन्न = भक्त । इहसोक = संसार का दुःख । अंभोदनाद = मेघनाद + घ्न = नाशक अर्थात् लक्ष्मणजी । आपन्न = विपद ग्रस्त । इह = संसार । अविपति = पृथ्वी के मालिक । दुर्विनीत = नम्रतारहित ।

मदनमर्दन मदातीत मायारहित मंजु मानाथ पाथोज-पानी ॥
कमललोचन, कलाकोस, कोदंडधर, कोसलाधीस, कल्यानरासी ।
यातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरी भक्त-मनपुन्य-आरन्यवासी ॥
अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंदसिंधो !
अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंभोदनादघ्न बंधो ॥
दासतुलसी खेदखिन्न, आपन्न, इह-सोकसंपन्न अतिसय सभीतं ।
प्रनतपालक राम परम करुनाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥ ५६ ॥

देहि सतसंग निजअंग, श्रीरंग, भवभंग-कारन, सरन-सोकहारी ।
येतु भवदंघ्रि-पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगतसंसय मुरारी !
असुर सुर नाग नर यच्छ गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये ।
संतसंसर्ग त्रयवर्गपर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥
वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निजधर्म-त्यागी ।
साधुपद-सलिल-निर्धूत-कल्मष सकल, स्वपच यवनादि कैवल्यभागी ॥
शांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन शब्द-ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी ।
दच्छ, समदृक स्वदृक विगत-अति-स्वपरमति परमरति सब विरति चक्रपानी ॥
विश्व-उपकारहित व्यग्र-चित सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत-पुन्यरासी ।
यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति छीराब्धिवासी ॥
वेद-पय-सिंधु, सुविचार-मंदर महा, अखिल-मुनिवृंद निर्मथनकर्त्ता ।
सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण*वैदर्भिभर्त्ता ॥
सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति-विच्छेदकारी ।

५७—श्रीरंग = लक्ष्मीपति । येतु = जो । भवत् + अंघ्रि = तुम्हारे चरण । त्रयवर्गपर = अर्थ, धर्म और काम से परे । प्राप = पाते हैं । द्विजबंधु = नीचब्राह्मण । स्वदृक = अपनी ओर अर्थात् अपने दयालु स्वभाव की ओर देखनेवाले ।

* यथा भागवत में—न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव !......
यथा वरुधांसत्संगः सर्वसंगापहोहि माम् ।

यथा रघुनाथ-सायक निसाचरचमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी ॥
यत्रकुत्रापि मम जन्म निज कर्मवश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे रामविश्राममेकम् ॥
प्रबल भवजनित-त्रैव्याधि-भेषज भक्ति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी ।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कह दासतुलसी ॥५७॥

देहि अवलंब करकमल कमलारमन दमनदुख समन-संताप-भारी ।
अज्ञान-राकेस-ग्रासन विधुंतुद, गर्व-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी ॥
वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंकादुर्ग रचित मन-दनुज-मयरूपधारी ।
विविध कोसौघ अति रुचिर मंदिरनिकर सत्वगुन-प्रमुख त्रय-कटककारी
कुनप-अभिमान-सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारम् ।
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल संगसंकल्प-वीची-विकारम् ॥
मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित-काम विश्रामहारी ।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ट विबुधांतकारी ॥
द्वेष-दुर्मुख, दंभ-खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद-मद-सूलपानी ।
अमितबल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी ॥
जीव भवदंघ्रि-सेवक-विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता ।
नियम यम सकल-सुरलोक-लोकेस लंकेसबस नाथ ! अत्यंत भीता ॥
ज्ञान अवधेस, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभारहर्त्ता ।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥
कैवल्य-साधन अखिल भालु मर्कट विपुल, ज्ञान-सुग्रीव-कृत जलधिसेतू ।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषय-वन-दहनमिव धूमकेतू ॥
दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित विश्वदुख-हरन बोधैकरासी ।
अनुज निज जानकी सहित हरिसर्वदादासतुलसी-हृदय-कमलवासी॥५८॥

दीनउद्धरन रघुवर्य करुनाभवन समनसंताप पापौघ-हारी ।
विमल-विज्ञान-विग्रह अनुग्रहरूप भूपवर विबुध-नर्मद खरारी ॥

५८—कुनप=शरीर ।

संसारकंतार अतिघोर गंभीर घन गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी ।
वासना-वल्लि खर-कंटकाकुल विपुल निविड़ विटपाटवी कठिन भारी ॥
विविध चितवृत्ति खग-निकर सेनोलूक काक बक गृध्र आमिष-अहारी ।
अखिलखल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी
क्रोध करि मत्त, मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक भालु अति उग्रकर्म्मा ।
महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार-धर्म्मा ॥
कपट मर्कट, विकट व्याघ्र पाखंडमुख दुखद-मृगव्रात उतपातकर्त्ता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं, पाहि,मां पाहि, भो विश्वभर्त्ता ॥
प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर,महामोह गिरिगुहा निबिड़ांधकारम् ।
चित्त बैताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ वृश्चिक-विकारम् ॥
विषय-सुख-लालसा दंस-मसकादि, खलझिल्लि,रूपादि सब सर्प स्वामी।
तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद व्यालादगामी ॥
घोर अवगाह भव-आपगा, पापजल-पूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर अपारा ।
मकर षड्वर्ग, गो नक्र, चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ, दुख तीव्र धारा ॥
सकल संघट पोच, सोचबस सर्वदा दासतुलसी विषय-गहन-ग्रस्तम् ।
त्राहि रघुवंसभूषन कृपाकर कठिनकाल-विकराल-कलि-त्रासत्रस्तम् ५९

नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यानपारायणं ज्ञानमूलम् ।
अखिल-संसार-उपकार-कारन सदय-हृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम् ॥
श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युतिवपुष-छवि,कोटि-मदनार्कअगणितप्रकाशम्
तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, करनिकर हासम् ॥
सकल-सौंदर्य्य-निधि,विपुल-गुण-धाम विधि-वेदबुधशंभुसेवित अमानम्
अरुण-पदकंज-मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वन्ति पानम् ॥
शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी ।
मारकंडेय मुनिवर्य हित कौतुकी, बिनहिं कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥

५९—कांतार = जंगल । खर = तीक्ष्ण । मात = कुँड । गो = है । चक्राकुला = भँवरवाली । संघट = जमघट, जमावड़ा ।

पुन्यबन शैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीनपद्मासनं एकरूपं।
सिद्ध-योगींद्र-वृंदारकानंदप्रद भद्रदायक दरस अति अनूपं॥
मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोध लोभादिपर्वतदुर्ग, भुवनभर्त्ता।
द्वेष मत्सर-रागप्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता॥
बिकटतर बक्र छुरधार प्रमदा, तीव्र-दर्प कंदर्प खर खड्गधारा।
धीर-गंभीर-मन-पीरकारक तत्र के बराका वयं विगतसारा॥
परम दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहिं हाथ बर बिरति-यष्टी।
दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, त्राहि त्राहि! दास कष्टी॥
दासतुलसी दीन, धर्मबंसलहीन श्रमित अति खेद, मति मोहनाशी।
देहि अवलंब न बिलंब अंभोजकर-चक्रधर तेज-बलशर्म-राशी॥६०॥

सकलसुखकंद आनंदवन-पुण्यकृत बिंदुमाधव द्वंद्व-बिपति-हारी।
यस्यांघिपाथोज अज शंभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी॥
अमलमरकत श्याम, काम-सतकोटि-छवि, पीतपट तड़ित इव जलदनीलम्।
अरुणशतपत्र-लोचन, बिलोकनिचारु, प्रणतजन-सुखद, करुणार्द्रशीलम्॥
काल-गजराज-मृगराज, दनुजेश-वन-दहन-पावक, मोह-निशि-दिनेशम्।
चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसम्॥
मुकुट कुंडल तिलक, अलकअलिव्रातइव, भृकुटिद्विजअधरवरचारुनासा।
रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसींव, हरि, इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा॥
उरसि वनमाल सुविशाल, नव मंजरी भ्राज श्रीवत्स-लांछन, उदारम्।
परम ब्रह्मण्य, अति धन्य गतमन्यु अज अमित बल बिपुल महिमाअपारम्॥
हार केयूर, कर कनक-कंकण, रतनजटित मणि मेखला कटिप्रदेशम्।
युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग, सौंदर्यवेषम्॥

६०—मारकंडेय...... = मारकंडेय जी के कहने से नारायण ने उन्हें प्रलय का दृश्य दिखाया था। मनभंग, चितभंग, छुर धार, खड्गधार = बदरिकाश्रम के पर्वतों के नाम। बराका = बेचारा। यष्टी = छड़ी। कष्टी = कष्टवाला।

सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्यश्री, दच्छदिशि रुचिर बारीशकन्या।
बसत विबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखंति नर तेऽतिधन्या ॥
अखिल-मंगल-भवन, निबिड़-संशय-शमन, दमन अजिनाटवी कष्टहर्त्ता।
विश्वधृत विश्वहित अजित गोवीत शिव विश्व-पालन-हरण, विश्वकर्त्ता॥
ज्ञानविज्ञान-बैराग्यऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्।
ग्रसित-भवव्यालअतित्रासतुलसीदासत्राहिश्रीरामउरगारियानम् ॥६१॥

राग आसावरी।

इहै परम फल परम बड़ाई।
नखसिख रुचिर बिंदुमाधव-छवि निरखहिं नयन अघाई॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु स्याम सुरुचि अधिकाई।
नीलकंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें दुति पाई॥
मृदुलचरन सुभ चिन्ह पदज नख अति अदभुत उपमाई।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई॥
जातरूप मनिजटित मनोहर नूपुर जन-सुखदाई।
जनु हर उर हरि बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई॥
कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई।
हेमजलज कल कलिन मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई।
कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई॥
गजमनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई।
जनु उडुगन-मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई॥

६१–दच्छदिशि = दक्षिण की ओर। बिंदुमाधव की मूर्ति के साथ लक्ष्मी की मूर्ति दाहिनी ओर थी। यह पुरानी मूर्ति अभी तक है। अजिनाटवी = पापों का जंगल।

६२–हरि = कामदेव। पदिक छाती पर पहिनने का एक भूषण विशेष। अथाई = बैठक, सभा।

भुजँग-भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई।
सोभासीवँ ग्रीव चिबुकाधर वदन अमित छवि छाई॥
कुलिस-कुंदकुड्मल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई।
नासा नयन कपोल ललित, श्रुति-कुंडल भ्रू मोहिं भाई॥
कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई।
अलप तड़ित जुग रेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई॥
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई।
बहु मनिजुत गिरिनील-सिखर पर कनक-बसन रुचिराई॥
दच्छभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई॥
सत सारदा सेस स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई।
तुलसिदास मतिमंद द्वंदरत कहै कौन विधि गाई? ॥६२॥

राग जयतिश्री

मन इतनेई या तनु को परम फलु।
सब अँग सुभग बिंदु माधव छवितजि सुभाउ अवलोकु एक पलु॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिरहारी।
कुलिस-केतु-जव-जलज-रेख बर, अंकुस मन-गज-बसकारी॥
कनक-जटित मनि नूपुर, मेखल कटितट रटति मधुर बानी।
त्रिवली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी॥
उर बन-माल पदिक अति सोभित, बिप्रचरन चित कहँ करषै।
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै॥
कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा-कंज-दर-चारु-चक्रधर, नागसुंड सम भुज चारी॥
कंबु-ग्रीव, छविसींव चिबुक द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा।

६२—भुजंगभोग = भुजग = नाग = हाथी + भोग = सूँड़, अर्थात् हाथी की सूँड़। कुड्मल = कली।

नव-राजीव-नयन, ससि-आनन, सेवक-सुखद बिसद हासा ॥
रुचिर कपोल, स्रवन कुंडल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै ।
ललित भृकुटि, सुंदर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥
रूप-सील-गुन-खानि दच्छदिसि सिंधुसुता रत-पदसेवा ॥
जाको कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥
तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै ।
नाहिं त दीन मलीन हीन-सुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥६३॥

राग बसंत

बंदौं रघुपति करुनानिधान । जाते छूटै भव भेदज्ञान ॥
रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस । सेवित पदपंकज अज महेस ॥
निज-भगत-हृदय-पाथोज-भृंग । लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥
अति प्रबल मोह-तम-मारतंड । अज्ञान-गहन-पावक प्रचंड ॥
अभिमान-सिंधु-कुंभज उदार । सुररंजन, भंजन भूमिभार ॥
रागादि-सर्पगन-पन्नगारि । कंदर्प-नाग-मृगपति मुरारि ॥
भवजलधि-पोत चरनारबिंद । जानकी-रमन आनंदकंद ॥
हनुमंत-प्रेमबापी-मराल । निष्काम-कामधुक गो दयाल ॥
त्रैलोक्य-तिलक गुनगहन राम । कह तुलसिदास बिश्रामधाम ॥६४॥

राग भैरव

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नव-नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥
सब साधनफल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा ।
रामनाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम-पियासा ॥
गरजि तरजि पापान बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम-अनुरागी ।
ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी ॥

एकअंग मग अगम गवन करि बिलमु न छिन छिन छाहैं ॥
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं ॥६५॥

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे !
घोर भव-नीरनिधि नाम निजु नाव, रे !
एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि, रे !
ग्रसे कलि रोग जोग संयम समाधि, रे !
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम, रे !
रामनाम ही सों अंत सबही को काम, रे !
जग-नभबाटिका रही है फलि फूलि, रे !
धुवाँ के से धैारहर देखि तू न भूलि, रे !
रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और, रे ! ॥ ६६ ॥
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर, रे !
रामनाम जपु जिय सदा सानुराग, रे !
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे !
राम-सुमिरन सब बिधि ही को राज, रे !
राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज, रे !
रामनाम महामनि, फनि जगजाल, रे !
मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल, रे !
रामनाम कामतरु देत फल चारि, रे !
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि, रे !
रामनाम प्रेम परमारथ को सार, रे !
रामनाम तुलसी को जीवन-अधार, रे ! ॥ ६७ ॥
राम राम राम जीव जौलौं तू न जपिहै ।

६५—एक अंग = अनन्य, एकांगी ।

६७—बिधि को राज = बेदशास्त्र की सारी विधियों या आज्ञाओं में श्रेष्ठ। निषेध सिरताज = सब निषिद्ध बातों से बढ़कर ।

तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै ॥
सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।
सुरतरु-तर तोहिं दुःख दारिद सताइहै ॥
जागत बागत सपने न सुख सोइहै ।
जनमि जनमि जुग जुग जग रोइहै ॥
छूटिये की जतन विसेष बाँध्यो जायगो ।
ह्वैहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो ॥
तुलसी तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को ।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥ ६८ ॥

सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को ।
संबर निसंबर को, सखा असहाय को ॥
भाग है अभागे हू को, गुन गुनहीन को ।
गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है ।
पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है ॥
माय बाप भूखे को, अधार निराधार को ।
सेतु भवसागर को, हेतु सुखसार को ॥
पतित-पावन रामनाम सों न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ६९ ॥

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै ।
मन रामनाम सों स्वभाव अनुरागिहै ॥
रामनाम को प्रभाव जानु जूड़ी आगिहै ।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥
राग रामनाम सों, बिराग जोग जागिहै ।
बाम विधि भाल हू न कर्म-दाग दागिहै ॥

६९—संबर = [संबल] कलेवा, राहखर्च ।

रामनाम-मोदक सनेह-सुधा पागिहै।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै॥
कामतरु रामनाम, जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै॥ ७०॥

ऐसेउ साहब की सेवा सों होत चोर, रे!
आपनी न बूझि, ना कहे को राढ़रोर, रे!
मुनि-मन-अगम, सुगम माइ बाप सो।
कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आप सों॥
लोक-बेद-विदित बड़ो न रघुनाथ सों।
सब दिन, सब देस, सबही के साथ सो॥
स्वामी सर्बज्ञ सों चलै न चोरी चार की।
प्रीति-पहिचानि, यह रीति दरबार की॥
काय न कलेस लेस, लेत मानि मन की।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की॥
रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम, रे!
फलत सकल फल कामतरु-नाम, रे!
बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम, रे!
सोउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम, रे! ॥७१॥

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हौं तो साईं-द्रोही, पै सेवक-हितु साँई॥
राम सा बड़ो है कौन? मोसों कौन छोटो?
राम सों खरो है कौन? मो सों कौन खोटो?
लोक कहै राम को गुलाम हौं, कहावों।
एतो बड़ो अपराध, भो न मन बाँवों॥

७०—खाँगिहै = कम होगा।
७१—राढ़ + रोर = बेकाम और उद्दंड। चार = नौकर, दूत।

पाथ-माथे चढ़ै तृन तुलसी ज्यों नीचो।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो॥७२॥

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी।
देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी॥
सोवत सपने सहै संसृति-संताप, रे।
बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी को साँप, रे!
कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे
दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं, रे!
तुलसी जागे तें जाइ ताप तिहूँ ताय, रे!
रामनाम सुचि रुचि सहज सुभाय, रे!॥७३॥

राग विभास

जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव!
जागि त्यागि मूढ़ताऽनुरागु श्री हरे।
करु विचार, तजु विकार, भजु उदार रामचंद्र,
भद्रसिंधु दीनबंधु, बेद बदत, रे!
मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो,
खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जू परे।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास,
बासना-सरोग-मोह-द्वेष-निबिड़-तम टरे॥
भागे मद-मान-चोर भोर जानि जातुधान,
काम-क्रोध लोभ-छोभ-निकर अपडरे।
देखत रघुबर-प्रताप बीते संताप पाप,
ताप त्रिबिध प्रेम-आप दूर ही करे।
स्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर,

७२-सींचो = रखते हैं। पाथ माथे = पानी के ऊपर।
७४—प्रेम-आप = प्रेम रूपी जल।

धीर बर विराग तोष सकल संत आदरे।
तुलसिदास प्रभु कृपालु निरखि जीवजन,
विहालु भंज्यो भवजालु परम मंगलाचरे ॥७४॥

राग ललित

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं;
रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो? जानौ सबही के मन की।
करम बचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ॥
दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना की
बासव, बिरंचि, सुर, नर, मुनिगन की।
स्वारथ के साथी, मेरे हाथ सों न लेवा देई,
काहू तो न पीर रघुबीर दीनजन की ॥
साँप सभा सावर लबार भए देव दिव्य,
दुसह साँसति कीजै आगे है या तन की।
साँचे परे पाऊँ पान, पंचन में पन प्रमान,
तुलसी-चातक-आस राम-स्याम-घन की ॥ ७५ ॥
राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू की बेद भाषैं
भलो है तेरो, तावें आनँद लहत हौं ॥
बाँधो हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तो साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ कोसलपाल कृपाल

७५—साँप सभा = दिव्य परीक्षा जिसमें सर्प, अग्नि आदि द्वारा अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निश्चय किया जाता था। दिव्य देना = परीक्षा देना। रोटी लूगा = अन्न वस्त्र।

लीन्हीं छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥
बूझ्यो ज्योंहीं, कह्यो "मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू,
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥
लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न संकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ७६ ॥

जानकी-जीवन, जगजीवन, जगतहित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीव-लोचन राम।
सरद-बिधु-बदन, सुखसील, श्रीसदन,
सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥
जग सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित सुमीत,
सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम।
आरतहरन, सरनद, अतुलित दानि,
प्रनतपाल, कृपालु पतित-पावन नाम ॥
सकल-बिस्व-बंदित, सकल-सुर-सेवित,
आगम निगम कहैं रावरे ई गुनग्राम।
इहै जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो,
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥ ७७ ॥

राग टोडी

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जाहि दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥
सुनि सुर नर नाग असुर साहिब तौ घनेरे।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥

त्रिभुवन तिहुँ काल विदित, वदत वेद चारो।
आदि अंत मध्य राम साहिबी तिहारी॥
तोहिं माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाव सील सुजस जाचन जन आयो॥
पाहन, पसु, बिटप, बिहँग अपने करि लीन्हें।
महाराज दसरथ के! रंक राय कीन्हें॥
तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥ ७८॥

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥ ७९॥

और काहि माँगिए, को मागिबो निवारै?
अभिमतदातार कौन दुखदरिद्र दारै?
धरम-धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो।
साहिब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो॥
सुसमय दिन द्वै निसान सब के द्वार बाजै।
कुसमय दसरथ के दानि! तैं गरीब निवाजै॥
सेवा बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाए।
जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै।

७८—माँगनो = मंगन, याचक।

रामचंद्र चंद्र तू ! चकोर मोहिं कीजै ॥ ८० ॥

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिविध ज्वर, करत फिरत बौराई ॥
कबहुँ जोगरत, भोगनिरत सठ, हठ वियोग बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंब-रत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी ॥
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति सन्निपात दारुन दुख बिनु हरिकृपा न नासै ॥
संजम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेपज समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग रामपद-प्रेमहीन नहिं जाई ॥ ८१ ॥

मोहजनित मल लाग बिबिध विधि, कोटिहु जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई ।
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे ।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भए, वचन दोष पर गाए ।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराए ॥
तुलसिदास व्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै ।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥ ८२ ॥

राग जयतश्री

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय ।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय ॥
लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय ।
जोवन-जर जुवती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-वाय ॥
मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।
रामबिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहूँ ताय ॥

सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय ।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुवंसराय ।
अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले जरा घाय ।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ ।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नायँ ॥ ८३ ॥

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।
भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ ।
सुखसाधन हरि विमुख वृथा, जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति चलु सुपंथ मिलि भले साथ ॥
देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ रामपद-कमल माथ ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ ॥८४॥

राग धनाछरी

मन माधव को नेकु निहारहि ।
सुनु, सठ-सदा रंक के धन ज्यों छनछन प्रभुहि सँभारहि ॥
सोभासील ज्ञान-गुन-मंदिर सुंदर परम उदारहि ।
रंजन-संत अखिल-अघ-गंजन-भंजन-विषय-विकारहि ॥
जौं बिनु जोग जज्ञ ब्रत संजम गयो चहहि भव पारहि ।
तौ जनि तुलसिदास निसि बासर हरिपद-कमल बिसारहि ॥८५॥

इहै कह्यो सुत बेद चहूँ ।
श्री रघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिंन ठौर कहूँ ॥
जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकर हूँ ।
सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ ॥

८४—दाय=दावँ या अवसर ।

जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ।
हरिपद-पंकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ॥
करुनासिंधु भगत-चिंतामनि सोभा सेवत हूँ।
और सकल सुर असुर ईस सब खाए उरग छहूँ॥
सुरुचि कह्यो सोई सत्य, तात! अति परुष बचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथ-बिमुख नहिं मिटै बिपति कबहूँ॥८६॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो॥
बिछुरे ससि रबि, मन! नयननि तें पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि होहि राम कर चेरो॥८७॥

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो॥
जदपि बिषय सँग सहे दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानत हूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किए नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाइ? सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥८८॥

८७—उरग छहूँ = काम, क्रोध आदि षड् रिपु। सुरुचि = ध्रुव की सौतेली माता। यह भजन ध्रुव की माता के उपदेश के रूप में है जो उन्होंने ध्रुव को दिया था।

मेरो मन हरि! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाय निजै ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥
हौं हारचो करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥८९॥

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥९०॥

माधव हौं निसि दिवस मरचो।
तब हौं ते न भयो हरि! थिर जब ते जिव नाम धरचो ॥
बहु बासना, बिबिध कंचुक-भूषन-लोभादि भरचो।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वाँगु न करचो?
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरचो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू सो न हरचो ॥
थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुरचो।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय-बिकल डरचो ॥

८९—गृहपसु = कुत्ता।
९०—मति = सदृश (पूरबी-सातेन)।

जेहि गुन तें बस होहु रीझि करि सो मोहि सब बिसर्यो ।
तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो ॥९१॥

माधव जू मो सम मंद न कोऊ ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ ॥
रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो ।
देखत बिपति बिषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो ॥
महामोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो ।
श्रीहरिचरन-कमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो ॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरै ।
निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरै ॥
परम-कठिन-भवब्याल-ग्रसित हौं, त्रसित भयो अतिभारी ।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपति नाथ बिसारी ॥
जलचर-बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिं देखत निज नासा ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै ।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ॥९२॥

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम ॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन ।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन ॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी ।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी ।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥

९३—मृगराज-मनुज = नरसिंह । नर-नारी = अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ।

एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर॥
लोभ ग्राह, दनुजेस क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार॥९३॥

काहे तेँ हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥
पतितपुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं अधम सभीत दीन? किधौं बेदन मृषा पुकारो?॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तेँ न्यारो।
तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥
नाहिंन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो॥९४॥

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनिहैं॥
हँसि करिहैं परतीत भगत की भगतसिरोमनि मनिहैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं॥९५॥

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के।
तौ क्यों कटत सुकृत-नख तेँ मोपै बिटप-बृंद अघ-बन के॥

९४—पनवारो = पत्तल। गारो = गर्व या गौरव।

कहिहै कौन कलुष मेरे कृत करम वचन अरु मन के।
हारहिं अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक एक छन के॥
जौ चित चढ़ै नाम-महिमा निज गुन-गन पावन पन के।
तौ तुलसिहिं तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के॥ ९६॥

जो पै हरि जन के अवगुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते?
जौ जप-जाप-जोग-व्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते?
जौ जहँ तहँ पन राखि भगत को भजन प्रभाव न कहते।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते?
जौ सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते।
तौ जमभट साँसति-हर हम से वृषभ खोजि खोजि नहते॥
जौ जग-विदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न वहते।
तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते॥ ९७॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीती।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीती॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी॥
जाकी मायावस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो॥
विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति बेद-बिदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख॥
जाको नाम लिए छूटत भव जनम-मरन-दुखभार।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यौ दस बार॥

९७—नहते = नाधते, जोतते। ९८—लीख = लकीर, पक्की बात।

जोग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-करधारी॥६८॥

विरद गरीबनिवाज राम को।
गावत वेद पुरान संभु सुक प्रगट प्रभाव नाम को।
ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन, कपि जदुपति पांडव सुदाम को।
लोक सुजस, परलोक सुगति इनमें को हो राम काम को॥
गनिका, कोल, किरात, आदि-कवि, इनतें अधिक बाम को?
बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को?
छली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को?
नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग जुग जुग चालत चाम को॥६९॥

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपन तें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ॥
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।

६८—बेंत-करधारी = छड़ी बरदार।

६९—जदुपति = उग्रसेन। सुदाम = सुदामा। चाम को चालत = चमड़े का सिक्का चलाता है।

ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ ॥
कपि सेवाबस भए कनौड़े, कह्यो, पवनसुत आउ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ ॥
अपनाए सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरतसभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ ॥ १०० ॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?
कौने देव बराय बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप, जड़ जमन कवन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ? ॥ १०१ ॥

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ॥
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि, बंसी-पद-अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो।
हिय बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥

१००—चपत = अन्याय। चपाउ = नटखटी। समाउ = समाई, क्षमता, सहन शक्ति। पसाउ = प्रसाद।

१०१—बराय = चुन चुन कर।

हैं स्रुति-विदित उपाय सकल, सुर केहि केहि दीन निहोरै ?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥१०२॥

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरौ जीव-जड़ताई॥
चहौं न सुगति सुमति, संपति, कछु रिधि सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाय मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआईं।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ-अंड की नाईं॥
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि एक ठाईं ॥१०३॥

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं।
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद बिमुख न पैहौं॥
मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं॥
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं।
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं॥
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥१०४॥

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं ॥ १०५॥

१०४—छरभार—उत्तरदायित्व का बोझा; कामों की सँभाल।

राग रामकली

महाराज रामादर्यो धन्य सोई।
गरुअ, गुनरासि, सर्बज्ञ, सुकृती, सूर, सीलनिधि, साधु तेहि सम न कोई॥
कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीधसम-दम-दया-दान-हीने।
नाम लिए राम किए परमपावन सकल तरत नर तिनके गुनगान कीने॥
व्याधअपराध की साध राखी कौन? पिंगला कौन मति भक्ति भेई?
कौन धौं सोमजागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई?
पंडुसुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं सोध किए सुद्धता लेस कैसो।
प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहुँ को, सुजस संसार हरिहर को जैसो॥
कोल, खस, भिल्ल जमनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो।
दीन-दुख-दमन श्रीरमन करुनाभवन पतित-पावन बिरद बेद गायो॥
मंदमति कुटिल खल-तिलक तुलसी सरिस भोन तिहुँलोक तिहुँकाल कोऊ।
नाम की कानि पहिचानि जन आपनो।
प्रसत कलिव्याल राखो सरन सोऊ॥१०६॥

राग बिलावल

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह-लोचन सुठि सुंदर स्याम॥
सिय समेत सोभित सदा, छबि अमित अनंग।
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग॥
बलि पूजा चाहत नहीं, चाहै एक प्रीति।
सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति॥
देइ सकल सुख, दुख दहै आरतजन-बंधु।
गुन गहि अघ अवगुन हरै, अस करुनासिंधु॥
देस काल पूरन सदा, बद बेद पुरान।
सब को प्रभु, सब मों बसै, सब की गति जान॥

१०६—भेई = भिगोई, डुबाई। सोमजागी = सोम याग करनेवाला।

को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ?
तुलसिदास तेहि सेइए संकर जेहि सेव ॥ १०७ ॥
बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय ।
सकल काम पूरन करै जानै सब कोय ॥
बेगि, बिलंब न कीजिए, लीजै उपदेस ।
बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस ॥
प्रेमबारि तर्पन भलो, घृत सहज सनेह ।
संसय समिधि, अगिनि छमा, ममता बलि देह ॥
अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार ।
आकरषै सुख संपदा संतोष बिचार ॥
जे यहि भाँति भजन किए मिले रघुपतिं ताहि ।
तुलसिदास प्रभुपथ चढ़्यो, जो लेहु निबाहि ॥१०८॥
कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि !
त्रिबिध-ताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥
यह कलिकाल-जनित मल मतिमंद मलिनमन ।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियै जन ?
सब प्रकार समरथ, प्रभो ! मैं सब बिधि दीन ।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करम-बिहीन ॥
भ्रमत अनेक जोनि रघुपति ! पति आन न मोरे ।
दुख सुख सहौं रहौं सदा सरनागत तोरे ॥
तो सम देव न कोउ कृपालु समुझौं मन माहीं ।
तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं ॥१०९॥
कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भवजनित बिपति अति ।
इंद्रिय सकल बिकल सदा निज निज सुभाउ रति ॥
जो सुख संपति, सरग नरक संतत सँग लागी ।

१०८—समिधि = लकड़ी ।

हरि परिहार सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥
मैं अति दीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे ।
जो न द्रवहु, रघुबीर धीर ! काहे न दुख लागे ॥
जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुखसमन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे ॥११०॥

केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ॥ १११॥

केसव कारन कौन गुसाईं ।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अज्ञ की नाईं ॥
परम पुनीत संत कोमलचित तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत विप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु ? कछु रही सगाई ?
काल कर्म, गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम, फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥
जौं तुम तजहु भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन क्रम बचन नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ॥
जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥ ११२ ॥

१११—रबिकर-नीर = मृगतृष्णा का जल । कोउ कह......मानै = न्याय, वेदांत और सांख्य के अनुसार संसार और ब्रह्म के सत्यासत्य के सिद्धांत अर्थात् नाना दार्शनिक वाद ।

११२—सीदत = दुःख पाता है ।

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ?
प्रनतपाल प्रन तोर, मोर प्रन जिअउँ कमलपद देखे ॥
जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मै न दास, तैं स्वामी।
तब लगि जे दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरयामी ॥
तैं उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै।
बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं, अब न तजे बनि आवै ॥
जनक जननि, गुरु बंधु, सुहृद पति सब प्रकार हितकारी।
द्वैतरूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी ॥
सुनु अदभ्र-करुना, बारिज-लोचन, मोचन-भय-भारी।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी ॥ ११३ ॥

माधव ! मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-बिषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतु-रहित, कृपालु, आरत-हित, ईसहि त्यागी।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी ?
नाहिंन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ज्ञानभवन तनु दिएहु, नाथ ! सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहिं दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित, हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहँ पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥११४॥

माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै ॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥

अंतर मलिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरै न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मारे॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना-बिनु विमल विवेक न होई।
बिनु बिवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई॥११५॥

माधव! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-विपति सतावै॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौ पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय कारन निसि बासर धावै॥
जेहि के भवन विमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै।
सपने परवस पर्‌यो जागि देखत केहि जाइ निहोरै?
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥११६॥

हे हरि! कवन दोष तोहिं दीजै?
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे।
तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत विषय-अनुरागे॥
भूत-द्रोह-कृत मोह-बस्य हित आपन मैं न विचारो।
मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु इन महँ रहनि अपारो॥
वेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगव्यापी।
भेदत नहिं श्रीखंड बेनु इव सारहीन मन पापी॥
मैं अपराध-सिंधु करुनाकर! जानत अंतरजामी।
तुलसिदास भवव्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी॥११७॥

११६—अर्थ = इंद्रियों के विषय।

हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु ?
जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु ॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे।
रहनि आन विधि, कहिय आन, हरिपद-सुख पाइय कैसे ॥
देखत चारु मयूर नयन-सुभ, बोलि सुधा इव सानी।
सविप उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥
अखिल-जीव-वत्सल निर्मत्सर चरन-कमल-अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुबीर ! धीरमति अतिसय निज-पर-त्यागी ॥
जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन विचारि करुना-निधान करु दाया ॥११८॥

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ?
देखत सुनत विचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै ॥
भगति, ज्ञान, वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहहु, देउ कछु कोऊ, असि बासना न उर तें जाई ॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै ॥
जद्यपि भगन-मनोरथ विधि-वस सुख इच्छत दुख पावै।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ विनु चित्र बनावै ॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥११९॥

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?
जद्यपि मृपा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्यो कीर की नांई ॥
सपने व्याधि विविध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई।

१२०—अर्थ = इंद्रियों के विषय।

वैद्य अनेक उपाय करहिँ, जागे विनु पीर न जाई ॥
स्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि विनु तजे,भजे विनु रघुपति विपति सकै को टारी ?
बहु उपाय संसार-तरन कहँ विमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास 'मैं मोर' गए विनु जिय सुख कबहुँ न पावै ॥१२०॥

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई ॥
जौ जग मृषा, ताप-त्रय-अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगबारि सत्य, भ्रम तें दुख होइँ बिसेखे ॥
सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव कोउ जब लगि आपु न जागै ॥
अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया विवेक ते व्यवहारी सुखकारी ॥
तुलसिदास सब बिधिप्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति-भगति संत-संगति बिनु को भवत्रास नसावै ॥ १२१ ॥

मैं हरि साधन करै न जानी।
जस आमय भेपज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी ॥
सपने नृप कहँ घटै विप्रवध, विकल फिरै अघ लागे।
बाजिमेध सत कोटि करै नहिं सुद्ध होय विनु जागे ॥
स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अविचारे।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहि मरै न मारे ॥
निज भ्रम तें रविकर-संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय, तरिय नहिं भाई ॥१२२॥

१२२—दिरमानी = वैद्य।

अस कछु समुझि परत, रघुराया !
बिनु तव कृपा दयालु दासहित मोह न छूटै माया ॥
वाक्यज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ॥
जैसे कोउ इक दीन दुखी अति असन-हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥
षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु बिषय-आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जगजोनि भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं ॥१२३॥

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआई।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं ॥
असन, बसन, बसु, बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥
बिटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए ॥
रघुपति-भगति-बारि-छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥१२४॥

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा ॥

१२४—बसु = धन। पुत्रिका = पुतली। छालित = प्रक्षालित, धोया हुआ।

अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहिं जानि अनाथा ॥
मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा । रघुनायक करहु सँभारा ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तस्कर तव धामा ॥
चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होय तुम्हारा ॥१२५॥

मन मेरे-मानहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ॥
उर आनहि प्रभु कृत हित जेते । सेवहि तजे अपनपौ, चेते ॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब सम लेखहिं बिपति बिहाई ॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥
तुलसिदास बिनु असि मति आये । मिलहिं न राम कपट लय लायें॥१२६॥

मैं जानो हरिपद-रति नाहीं । सपनेहु नहिं बिराग मन माहीं ॥
जे रघुबीर-चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ॥
काम, भुअंग डसत जब जाही । बिषय-नींब कटु लगत न ताही ॥
असमंजस अस हृदय बिचारी । बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥
जब कब रामकृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई॥१२७॥

सुमिरु सनेह सहित सीतापति । रामचरन तजि नहिंन आन गति ॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी । कलि मति बिकल, न कछु निरुपाधी ॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥
हरनि एक अघ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभुकृपा-कालिका ॥१२८॥

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ अमंगल घटत ॥
बिनु स्रम कलि-कलुप-जाल कटु कराल कटत ।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ॥
जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ अटत ।
बाँधिबे को भवगयंद रेनु की रजु बटत ॥

परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत ॥ १२९ ॥

राम, राम, राम, राम, राम, राम जपत।
मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत ॥
कहु केहि लहे फल रसाल बबुर-बीज बपत।
हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत ॥
काल, करम, गुन, सुभाव सबके सीस तपत।
रामनाम-महिमा की चरचा चले चपत ॥
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।
कलिजुग वर बनिज बिपुल नाम नगर खपत ॥
नाम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किय रावन-रिपु तुलसिहु से अपत ॥१३०॥

पावन प्रेम-रामचरन जनम लाहु परम।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥
जोग, मख, बिवेक बिरति वेद-विहित करम।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥
तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम।
तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम ॥ १३१ ॥

राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत।
जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत ॥

१२९—लटत = ललचाता है। हटत = हटकता है, मना करता है (कि ऐसा मत कर)।

१३०—गाल गूल = बकवाद बनाव, व्यर्थ की बात। गपत = गप मारते हुए, बकते हुए। लपत = लपकते हैं। थपत = पति-हीन, गया बीता।

१३२—कियत = कितना है।

जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल वियत।
तहँ तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत॥१३२॥

तोसो हौं फिरि फिरि हित सत्य वचन कहत।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत॥
छोटो बड़ो, खोटो खरो जग जो जहँ रहत।
अपने अपने को भलो कहहु को न चहत?
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत॥
बिषय मुद निहारि भार सिर ज्यों काँधे वहत।
योंही जिय जानि मानि सठ तू साँसति सहत॥
पायो केहि घृत विचारु हरिनबारि महत।
तुलसी तकु ताहु सरन जाते सब लहत॥१३३॥

ताते हौं वार वार देव! द्वार परि पुकार करत।
आरत नत दीनता कहे प्रभु संकट हरत॥
लोकपाल सोकबिकल रावन-डर डरत।
का सुनि सकुचे कृपालु नरसरीर धरत?
कौसिक, मुनितीय, जनक सोच-अनल जरत।
साधन केहि सीतल भये सो न समुझि परत॥
केवट, खग, सबरि सहज चरनकमल न रत।
सनमुख तोहिं होत नाथ कुतरु सुफर फरत॥
बंधुवैर कपि बिभीपन गुरु गलानि गरत।
सेवा केहि रीझि राम किए सरिस भरत?

१३२—बियत = आकाश।

१३३—हरिनबारि = मृगतृष्णा का जल। मयत = मथते हुए।

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत ॥
जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गए तुलसिहु से तरत ॥ १३४ ॥

राग सूहो विलावल

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो ।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो ॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को ।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को ॥
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली ।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति विषफल फली ॥ १ ॥

अजहूँ समुझि चित्त दै सुनु परमारथ ।
है हित सों जगहूँ जाहि तें स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई ।
देखु खल अहिखेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु, मातु, गुरु, स्वामी, अपनपो, तिय, तनय, सेवक, सखा
प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिनु हेतु हित तहिं तैं लखा ॥२॥

दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है ।
छलहि छाँड़ि सुमिरे छोह किए ही है ॥
किए छोह छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजै ।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै ॥
हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ॥ ३ ॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि ।
ध्यान-अगम सिव हू, भेंट्यो केवट उठि ॥
भरि अंक भेंट्यो सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सों ।

सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो ॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किए आपु तें बंदित बड़े।
तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥४॥
स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनि है।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मानिहै ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसिदास जीवन जनम को फल पाइहै ॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुनग्राम रामहिं धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीस-चरन-सरोज मन मधुकर किये ॥५॥१३५॥

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
मायाबस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुखलेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यौ ॥
बहु जोनि जन्म जरा बिपति, मतिमंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम-बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारि लखि पायो कहीं ॥१॥
आनँदसिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि चलि आयो तहाँ ॥
निर्मल निरंजन निर्बिकार उदार सुख तैं परिहर्यो।
निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह पर्यो ॥ २ ॥
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही ॥
तातें परबस पर्यो अभागे। ता फल गर्भबास दुख आगे ॥
आगे अनेक समूह संसृति, उदरगति जान्यो सोऊ।
सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ ॥

१३६–३—हेठ = नीचे।

सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवहीं।
कोमल सरीर, गँभीर वेदन, सीस धुनि धुनि रोवहीं ॥ ३ ॥
तू निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो ॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हौं। परम कृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हौं ॥
तोहिं दियो ज्ञान विवेक जन्म अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी विषम माया गुनमई ॥
जेहि किए जीव-निकाय बस रस हीन दिन दिन अति नई।
सो करौ बेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई ॥४॥
पुनि बहु विधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी।
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी ॥
प्रेर्‌यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव जातना-पावक दह्यो ॥
अति खेद-व्याकुल अल्प बल छिन एक बोलि न आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हर्षित गावई ॥ ५ ॥
बाल-दसा जेते दुख पाए। अति असीस नहिं जाए गनाए।
छुधा व्याधि व्याधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी ॥
जननी न जानै पीर सो केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै विविध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै ॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
व्यतिरेक तोहि निर्दय महा खल आन कहु को सहि सकै? ॥६॥
जौवन जुवति-सँग रंग रात्यो। तब तू महा मोह मद मात्यो।
तातें तजी धर्म मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा ॥
बिसरे बिषाद निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत-आवर्त्त संसृति-चक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥
कृमि-भस्म-बिट-परिनाम तनु तेहि लागि जगु बैरी भयो।

१३६-६—अनीस = अनाथ। व्यतिरेक = सिवाय। १३६-७—बिट = विष्ठा।

परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥ ७ ॥

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई।
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन माहीं ॥
सो प्रगट तनु जर्जर जराबस ब्याधि सूल सतावई।
सिरकंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई॥
गृहपाल हू तें अति निरादर, खान पान न पावई।
ऐसिहु दसा न बिराग, तहँ तृष्णा तरंग बढ़ावई ॥ ८ ॥

कहि को सकै महा भव तेरे। जन्म एक के कछुक गने रे।
खानि चारि संतत अवगाहीं। अजहुँ न करु विचार मन माहीं ॥
अजहूँ बिचारि बिकार तजि भजु राम जनसुख-दायकं।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुर-नायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार-माया-तारनं।
कैवल्य, पति, जगपति, रमापति, प्रानपति गतिकारनं ॥ ९ ॥

रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भय-हारी।
बिनु सतसंग भगति नहिं होई। ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइए।
जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइए ॥
जिन्हके मिले सुख दुख समान, अमानतादिक गुन भए।
मद मोह लोभ बिषाद क्रोध सुबोध तें सहजहि गए ॥१०॥

सेवत साधु द्वैत-भय भागै। श्रीरघुबीर-चरन लय-लागै ॥
देहजनित बिकार सब त्यागै। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥
अनुराग सो निज रूप जो जग तें बिलच्छन देखिए।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए ॥

१३६—८—गृहपाल = कुत्ता।

१३६—९—भव = जन्म। खानि चारि = स्वेदज, अंडज, पिंडज, ऊष्मज, ये चार प्रकार के जीव।

निर्मल निरामय एकरस, तेहि हर्ष सोक न व्यापई।
त्रैलोक्य-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥ ११॥
जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिँ सहाई॥
जो मारग स्रुति साधु बतावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥
पावै सदा सुख हरिकृपा, संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख देत दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पावई।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गावई॥१२॥१३६॥

राग बिलावल

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै?
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै॥
तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहि मीच मरै।
बेद-बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति-पथ पाउँ धरै?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै॥
प्रभुप्रसाद सौभाग्य बिजय-जस पांडु-तनय बरिआईं बरै॥
जो जो कूप खनैगो पर कह सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहु सुख न संतद्रोही कहँ, सुरतरु सोउ बिष-फरनि फरै॥
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै?
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरै॥१३७॥

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक धरिहौ, नाथ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंडोदक दै धाम दियो।

जेहि कर बालि बिदारि दास-हित कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन दीन्हों ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया।
निसि बासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥१३८॥

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँताप तई है।
देव-दुआर पुकारत आरत सब की सब सुखहानि भई है ॥
प्रभु के बचन बेद-बुध-सम्मत मम मूरति महिदेव-मई है।
तिन्हकी मति रिस, राग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु—वाद हठि हेरि हई है ॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है ॥
कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥
दीजै दादि देखि नातो बलि, मही-मोद-मंगल-रितई है।

१३९—दुनी = दुनिया। हेतवाद = तर्क। रई है = रँगी है, मग्न है। सिद्धि सई = सिद्धि और सार। बिनु टहल टई = बिना काम का काम। ढील दई है = जाने देते हैं, छोड़ देते हैं, ध्यान नहीं देते हैं, रोक टोक नहीं करते हैं।

भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है।
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुना-बारि भूमि भिजई है।
रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है॥
उथपे-थपन, उजार-बसावन, गई-बहोर बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर अभय-बाँह केहि केहि न दई है? ॥१३९॥

तै नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद बिमुख अभागी।
निसि बासर रुचि पाप, असुचि मन, खल मति-मलिन निगमपथ-त्यागी।
नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को स्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी।
तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि सठ हठि पियत-बिषय-बिष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननि-दुख लागी॥१४०॥

रामचंद्र रघुनायक! तुम सों हौं बिनती केहि भाँति करौं?
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं॥
परदुख दुखी, सुखी परसुख तें संतसील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं॥
भक्ति, बिराग, ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं।
सिव-सरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं॥
जानत हूँ निज पाप-जलधि जिय जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि सम रज तें निदरौं॥
नाना बेष बनाइ दिवस निसि परबित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकौ पल न कबहुँ अलोल-चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं॥

१३९—जई = फल का अंकुर। नासो बलि = बलि ने आपने पृथ्वी दान में ली है, इससे उसकी देखभाल रखनी चाहिए। रितई = खाली की हुई, रहित की हुई। अवध = अवाध्य। सदई = सदैव।

जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥ १४१ ॥

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि ! क्यों करि बिनय सुनावौं ?
सकल धर्म बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं ?
जानत हूँ हरि रूप चराचर मैं हठि नयन न लावौं।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ लोचन-सलभ पठावौं ॥
स्रवनन को फल कथा तिहारी यह समुझौं समुझावौं।
तिन्ह स्रवनन परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं ॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि' कहि कहि सबहि सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान-मोह-मद-खलमंडली बसावौं ॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गवावौं।
हाटक घट भरि धरयो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं ॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं।
पर-प्रेरित इरषा-बस कबहुँक कियो कछु सुभ, सो जनावौं ॥
बिप्रद्रोह जनु बाँट परयो, हठि सब सों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति-बिलास सब संतन माँझ गनावौं ॥
निगम, सेष, सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहिं कलपसत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं ? ॥
जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवौं ?
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं ॥

१४१—अवटि = मरम कर, चक्कर खाकर।

१४२—अंजन-केस = दीपक। तावौं = मूँदता हूँ, बंद करके यत्न से रखता हूँ। बाँट परयो = मेरे हिस्से में आया है। मति-बिलास = मन की मौज से।

तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं।
नाथकृपा भवसिंधु धेनुपद सम जिय जानि सिरावौं ॥ १४२ ॥

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं! मन अनीति-रत मेरो।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे निसि दिन फिरत अनेरो ॥
मानत नाहिं-निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहु करत न फेरो।
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोधरत तिन सों प्रेम घनेरो ॥
पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हर्ष बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥
साधन-फल, स्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो पर कर काँकिनी लागि सठ बेंचि होत हठि चेरो ॥
कबहुँक हौं संगति-प्रभाव ते जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भट-भेरो ॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति बिपति-जाल अति घेरो।
तापर सहि न जात करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ॥
हारि परयो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥१४३॥

सो धौं को जो नाम-लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर?
कारुनीक बिनु कारन ही हरि, हरी सकल भवभीर ॥
बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबंधु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम ॥

१४३—अनेरो = व्यर्थ। खेरो = खेड़ा, गाँव। काँकिनी = कौड़ी।

१४४—बिप्रबंधु = नीच ब्राह्मण।

पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आए प्रभु हरयो दुसह उर-दाह॥
व्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक अगनित अवगुन-मूल।
नाम-ओट तें राम सबनि की दूरि करी सब सूल॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन्ह तें, रघुकुलभूषन भूप!
सीदत तुलसिदास निसि बासर परयो भीम तमकूप॥१४४॥

कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे?
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे॥
गज, प्रहलाद, पांडुसुत, कपि सब के रिपु-संकट मेट्यो।
प्रनत बंधुभय-बिकल बिभीषन उठि सो भरत ज्यों भेट्यो॥
मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन, बिबेक, बिराग लोग भले करम करम करि ल्यावौं॥
सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गुसाईं॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हारयो।
बिनु कारन के कलह बड़ो दुख, प्रभु सों प्रगटि पुकारयो॥
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ, को बिपति-निवारक भव-तारक जग माहीं?॥
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भगति बाँह बैरख ज्यों, सुबस बसै अब खेरो॥१४५॥

हौं सब बिधि राम रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहिबी होति है ख्याल कालकलि केरो॥
काल कर्म इंद्रिय-बिषय गाहकगन घेरो।

१४५—करम करम करि=क्रम क्रम से, धीरे धीरे। अनीस=अच्छे स्वामी नहीं। अलायक=[हिं॰ अ+फा॰ लायक] अयोग्य। बैरख=(अरबी) झंडा, पताका।

हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो ॥
बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो ।
मैं कह्यो तब छल-प्रीति कै माँगै उर डेरो ॥
नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो ।
अब गरीब जन पोषिए, पायबो न हेरो ॥
जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो ।
तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो ॥ १४६ ॥

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन मारे ।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥
मिले रहैं, मारयो चहैं कामादि सँघाती ।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती ॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।
कियो कथिक को दंड हौं जड़ कर्म कुचाली ॥
देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी ।
करहिं सबै, सिर मेरेही फिरि परै अनैसी ॥
बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं ।
असमंजस में मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥
बारक बलि अवलोकिए कौतुक जन जी को ।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥ १४७ ॥

कहौं कौन मुँह लाइ कै, रघुबीर गुसाईं !
सकुचत समुझत आपनी सब, साईं दोहाई !
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं ।

१४६—मलजुग = कलियुग । जेरो = जेर किया है; वशीभूत किया है, जीत लिया है ।

१४७—अलेखी = बेढब, अन्यायी ।

गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥
कृपासिंधु बंधु दीन के आरत-हितकारी।
प्रनतपाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पदप्रीति सुधारी।
पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी ॥
नाथ गरीबनिवाज हैं, मैं गही न गरीबी।
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ॥ १४८ ॥

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरो?
जनम गँवायो तेरेहि द्वार, मैं किंकर तेरो ॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें।
तोहिं कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें?
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन।
जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस-बिभूषन ॥
दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व-बिलोचन।
तोसों तुही न दूसरो नत-सोच-बिमोचन ॥
पराधीन देव, दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।
बोलनिहारे सों करै, बलि, बिनय कि झाईं ॥
आपु देखि मोहिं देखिये जन मानिय सांचो।
बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बाँचो ॥
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥ १४९ ॥

रामभद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं ॥

१४८—आपनी = अपनी करनी। धेइ = ध्याइ, ध्यान करके।

१४९—बोलनिहारा = बोलता शुद्ध आत्मा, चैतन्य। झाईं = प्रतिबिंब स्वरूप जीव।

नातो बड़े समर्थ सों एक ओर किधौं हूँ।
तोको मोसे अति घने, मोको एकै तूँ ॥
बड़ी गलानि हिय हानि है, सर्वज्ञ गुसाईं ?
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं ॥
भलो पोच राम को कहै मोहिं सब नर नारी।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी ॥
असमंजस मन को मिटै, सो उपाय न सूझै।
दीनबंधु कीजै सोई बनि परै जो बूझै ॥
बिरुदावली बिलोकिए तिन्ह में कोउ हौं हौं।
तुलसी प्रभु को परिहर्‍यो सरनागत सो हौं ॥१५० ॥

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यों, खल ! खेह न खातो ॥
जौ तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो।
सीतापति-सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥
राम सोहाते तोहिं जौ तू सबहिं सोहातो।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥
राम-नाम-अनुराग ही जिय जो रतिआतो।
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो ॥
सेइ साधु, सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो।
जनम कोटि को कँदैलो हृद-हृदय थिरातो ॥
भव-मग अगम अनंत है बिनु स्रमहि सिरातो।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥

१५१—कुल कारनी = सब के कारण। रतिआतो = प्रीति करता। हृद = ताल। कँदैलो = कीचड़वाला। जाय = व्यर्थ।

अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो।
होतो मंगलमूल तू, अनुकूल विधातो॥
जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहिं रातो।
तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँताप न तातो॥ १५१॥

राम भलाई आपनी भल कियो न काको?
जुग जुग जानकि-नाथ को जग जागत साको॥
ब्रह्मादिक विनती करी कहि दुख वसुधा को।
रविकुल-कैरव-चंद भो आनंद-सुधा को॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित-हित को दियो फल कोप-कृपा को॥
हरयो पाप आप जाइकै संताप सिला को।
सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को॥
रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को॥
मुदित मानि आयसु चले वन मातु पिता को।
धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को?
गुह गरीब गत-ज्ञाति हूं जेहि जिउ न भखा को॥
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को?
सदगति सबरी गिद्ध की सादर करता को।
सोच-सींव सुग्रीव के संकट-हरता को॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल-गहा को।
आज विराजत राज है दसकंठ जहाँ को॥
बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको॥

१५२—जागत साको=साका जगता है, कीर्ति चली जाती है। तिया=ताड़का। काल-गहा=कालग्रस्त।

गति न लहै रामनाम सों विधि सो सिरजा को ?
सुमिरत कहत प्रचारि कै वल्लभ गिरिजा को ॥
अकनि अजामिल की कथा सानंद न भा को ?
नाम लेत कलिकाल हूं हरिपुरहिं न गा को ?
रामनाम-महिमा करै काम-भूरुह आको।
साखी बेद पुरान है तुलसी तन ताको ॥ १५२ ॥

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ।
निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर-बंधु, बिभीषन-हित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥
प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पवि-पंजर नाउँ।
कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ॥१५३॥

देव ! दूसरो कौन दीन को दयालु ?
सील-निधान, सुजान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय, प्रनत-पालु ॥
को समर्थ सर्बज्ञ सकल प्रभु सिव-सनेह-मानस-मरालु ?
को साहिब किए मीत-प्रीति बस खग निसिचर कपि भील भालु ?
नाथ-हाथ माया-प्रपंच सब जीव दोष गुन करम कालु।
तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहालु ॥१५४॥

राग सारंग

बिस्वास एक राम नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को ॥
पढ़िबो परयो न छठी छ मत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को।
ब्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को ?

१५२—आलिस = मूर्ख। काममूरुह = कल्पवृक्ष। आको = आक या मदार भी।
१५३—पवि-पंजर = रक्षा के लिए वज्र का पिंजरा।

करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
ज्ञान, विराग, जोग, जप, तप, भय, लोभ, मोह, कोह, काम को ॥
सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक-गुन-ग्राम को ।
बैठे नाम-कामतरु तर डर कौन घोर घन धाम को ?
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥१५५॥

कलि नाम कामतरु राम को ।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ।
नाम लेत दाहिनो होत मन वाम विधाता वाम को ।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ।
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ॥१५६॥

सेइए सुसाहिब राम सो ।
सुखद, सुसील, सुजान, सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम सो ॥
सारद, सेस, साधु महिमा कहैं, गुनगन-गायक साम सो ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चंद्र-ललाम सो ॥
गमन बिदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो ।
साखी ताको बिदित बिभीषन बैठो है अविचल धाम सो ॥
टहल सहज जन महल महल जागत चारो जुग जाम सो ।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो ॥
जाके भजे तिलोक-तिलक भए त्रिजग-जोनि तनु तामसो ।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न, ताहि बिधाता वाम सो ॥१५७॥

१५५—छठी न पर्यो = भाग्य में न लिखा गया। मत = शास्त्र। दाम = धन।

१५६—ललित ललाम = सुंदर राम नाम।

१५७—तनु तामसो = तामस शरीरवाले (राक्षस) भी।

राग नट

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ?
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि ॥१५८॥

है प्रभु मेरोई सब दोसु।
सीलसिंधु, कृपालु, नाथ, अनाथ-आरत पोसु ॥
बेप, बचन, बिराग, मन, अघ, अवगुननि को कोसु।
राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु ॥
राग रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥
संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु।
दंभ हूं कलि नाम-कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु।
रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु ॥१५९॥

१५८—अँजोरि लेत=खोज लेता है।

१५९—निरजोसु=निश्चय।

मैं हरि पतित पावन सुने ।
मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने ॥
व्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो राखिए आपने ॥१६०॥

राग मलार

तोसों प्रभु जो पै कहूँ कोउ होतो ।
तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लट ऐसो घटि को तो ॥
कृपासुधा जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो ।
स्वाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित-चातक को पोतो ॥
काल करम बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो ।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥
जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो ।
तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो ॥१६१॥

राग सोरठ

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काज सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥१६२॥

१६०—मने = वर्जित हुआ, वे आना मना किया गया ।
१६१—को तो = कौन था ? निसोतो = खरा । पोतो = बच्चा ।

एकै दानि-सिरोमनि साँचो।
जोइ जाच्यो सोइ जाचकता-बस फिरि बहु नाच न नाच्यो॥
सब स्वारथी असुर, सुर, नर, मुनि; कोउ न देत बिनु पाए।
कोसलपाल कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाए॥
हरिहु और अवतार आपने राखी बेद-बड़ाई।
लै चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बाल-मिताई॥
कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाँची।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि! दारुन आस-पिसाची॥१६३॥

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम-सनेह-सगाई॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहुँ पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन परयो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट-मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु-बड़ाई॥
प्रेम-कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरो रिनी कह्यो हौं कपीस सों, ऐसी मानिहि को सेवकाई॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई॥१६४॥

रघुवर! रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई॥

१६४—हाते करि राखत = अलग रखते हैं, दूर करते हैं। जनमि = जनमा कर, जन कर।

थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप किया सकल सँग भाई॥
मिलि मुनिवृंद फिरत दंडकवन, सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सवरी की बरनत प्रीति सुहाई॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर जती गयंद चढ़ाई।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई॥
यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई॥ १६५॥

ऐसे राम दीनहितकारी।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी॥
साधनहीन दीन निज अघवस सिला भई मुनि-नारी।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोक-हत सरन गए भय टारी॥
विहँगजोनि आमिष अहार-पर, गीध कौन व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी॥
अधम जाति सवरी जोषित जड़ लोक बेद तें न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी॥
कपि सुग्रीव बंधुभय-ब्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी॥
रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी।

१६४—कौनप = पातकी।

बेदबिदित पावन किए ते सब, महिमा नाथ तुम्हारी ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥ १६६ ॥

रघुपति ! भक्ति करत कठिनाई ।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी ॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं ॥ १६७ ॥

जौ पै रामचरन रति होती ।
तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती ॥
जो संतोष सुधा निसि बासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन कुरंग ज्यों धावै ॥
जौ श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥
जे लोलुप भए दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे ॥
नहिं एकौ आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते ।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ ! नाम के नाते ॥१६८ ॥

१६७—यहि दसा-हीन = इस दशा को प्राप्त हुए बिना ।

१६८—निसोती = शुद्ध, खालिस ।

जो मोहिं राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥
वंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये करि चीठे ॥१६६॥

यों मन कबहूँ तुमहि न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ॥
ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर घर के ।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निर्मल गुनगन रघुबर के ॥
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी ।
रामप्रसाद-माल, जूँठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥
चंदन चंद्रबदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति-पद-पदुम परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए बपु बचन हिये हूँ ।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रनाम किए हूँ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे ।
रामसीय-आस्रमनि चलत त्यों भए न स्रमित अभागे ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है ।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥१७०॥

कीजै मोको जमजातनामई ।
राम तुम से सुचि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई ॥
गरभवास दस मास पालि पितुमातुरूप हित कीन्हों ।
जड़हिं बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥

१६६-उबीठे=ऊबे, मन हटा ।

कपट करौं अंतरजामिहुँ सों, अघ व्यापकहिं दुरावौं।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं॥
उदर भरौं किंकर कहाइ, बेच्यो विषयनि हाथ हियो है।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिसहु तें कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पी के॥
स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-द्रोहाई।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिसि गरुआई॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो अरु करिहैं।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं॥१७१॥

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो॥
यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥
परुषवचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरिभक्ति लहौंगो॥१७२॥

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायहि पै जानिबो करम-फल, भरि भरि बेद परोसो॥
आगम-बिधि, जप, जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो॥

१७१—साँइ-द्रोहाई = स्वामी के विरुद्ध आचरण।

काम, क्रोध, मद, लोभ मोह मिलि ज्ञान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
रामनाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरो सो॥१७३॥

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भए मुदमंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूँजी प्रान ते प्यारो।
जासेों होय सनेह रामपद; एतो मतो हमोरा॥१७४॥

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के॥
सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने॥१७५॥

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नाते।

१७३—आम घरो=कचा घड़ा।

एते अनादर हूँ तोहि तें न हातो ॥
जोरे नए नाते नेह फोकट फीके ।
देह के दाहक, गाहक जी के ॥
अपने अपने को सब चाहत नीको ।
मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को ॥
जीव को जीवन, प्रान को प्यारो ।
सुखहू को सुख राम सो विसारो ॥
कियो, करैगो तोसे खल को भलो ।
ऐसे सुसाहिब सों तू कुचाल क्यों चलो ॥
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै ।
राढ़उ राउत होत, फिरि कै जूझै ॥१७६॥

जौ तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागौं ।
परिहरि पाँय काहि अनुरागौं ॥
सुखद सुप्रभु तुमसों जग माहीं ।
स्रवन-नयन-मन-गोचर नाहीं ॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया ।
तुम मायापति, हौं बस माया ॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता ।
हौं कुपूत, तुमहीं पितु माता ॥
जौ पै कहूँ कोउ बूझत बातो ।
तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥१७७॥

भए हूँ उदास राम मेरे आस रावरी ।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए ।
प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए ॥

१७६—हातो = अलग, दूर। फोकट = व्यर्थ। राढ़उ = कायर भी।

मीन तें न लाभ-लेस पानी पुन्य-पीन को ?
जल बिनु थल कहा मीच-बिनु मीन को ?
बड़े ही की ओट, बलि, बाँचि आए छोटे हैं ।
चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहु-बाम को ।
मोको सुभदायक भरोसो रामनाम को ॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है ।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥१७८॥

राग बिलावल

कहाँ जाउँ ? कासों कहौं ? को सुनै दीन की ?
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की ॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।
मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥
मोसे क्रूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
किए बहुमोल तैं करैया गीधस्राध के ॥
तुलसी की तेरे ही बनाए, बलि, बनैगी ।
प्रभु की बिलंब-अंब दोष दुख जनैगी ॥ १७९ ॥

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो ।
राय दसरथ के तू उथपन-थापनो ॥
साहिब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥
कौने कियो समाधान सनमान सीला को ?

सुधन न, सुतन न, सुमन सुआउ सो ॥
जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥
बाप बलि जाउँ आपु करिए उपाय सो।
तेरेहि निहारे परै हारेउ सुदाउ सो ॥
तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरे ही बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥
नाम-अवलंब-अंबु दीन मीन-राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥१८२॥

राग असावरी

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै
ऐसी बिरुदावलि बलि बेद मनियत है ॥
गीध को कियो सराध, भीलिनी को खायो फल
सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत
जोग ज्ञान हू तें गरू गनियत है ॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलिहूँ काल
महिमा समुझि उर अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबंधु-द्वारे हठ ठनियत है ॥ १८३ ॥

रामनाम के जपे जाइ जिय की जरनि।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए

१८२—सुआउ = दीर्घायु।

भृगुनाथ सो रूपी जितैया कौन लीला को ?
मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-वेदपाल को ?
बोल को अचल, नत करत निहाल को ?
संग्रही सनेहवस अधम असाधु को ?
गीध सवरी को, कहो, करिहै सराध को ?
निराधार को अधार, दीन को दयालु को ?
मीत कपि केवट, रजनिचर भालु को ॥
रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं ।
महाराज सुजन, समाज तें बिराजे हैं ॥
साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है ।
सीलसिंधु ढील तुलसी की बार भई है ॥१८०॥

कँहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए ।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥
सहस सिला तें अति जड़ मति भई है ।
कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ?
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।
कलिमल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥
करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥
महामोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं ।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं ॥१८१॥

नाथ-गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो ।
राम रीझिबे को जानो भगति न भाउ सो ॥
करम सुभाव काल ठाकुर न ठाँउ सो ।

---

१८१ पद-राग-जाग = चरणों में स्नेहरूपी यज्ञ । भियो हौं = डरा हूँ ।

सुधन न, सुतन न, सुमन सुआउ सो ॥
जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सों न-बढ़त हिआउ सो ॥
बाप बलि जाउँ आपु करिए उपाय सो।
तेरेहि निहारे परै हारेउ सुदाउ सो ॥
तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरे ही बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥
नाम-अवलंब-अंबु दीन मीन-राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो ॥१८२॥

राग असावरी

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै
ऐसी बिरुदावलि बलि बेद मनियत है ॥
गीध को कियो सराध, भीलिनी को खायो फल
सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत
जोग ज्ञान हू तें गरू गनियत है ॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलिहूँ काल
महिमा समुझि उर अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबंधु-द्वारे हठ ठनियत है ॥ १८३ ॥
रामनाम के जपे जाइ जिय की जरनि।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए

१८२–सुआउ = दीर्घायु।

जैसे तम नासिवे को चित्र के तरनि ॥
करम-कलाप, परिताप, पाप साने सब
ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दंभ, लोभ, लालच उपासना बिनासि नीके
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥
जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ज्ञान
बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटि
सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि।
रामनाम को प्रताप हर कहैं, जपैं आपु,
जुग जुग जानें जग बेदहूँ बरनि ॥
मति रामनाम ही सों, रति रामनाम ही सों,
गति रामनाम ही की बिपति-हरनि।
रामनाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक
तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥१८४॥

लाज न आवत दास कहावत।
सो आचरन बिसारि सोच तजि जो हरि तुम कहँ भावत।
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि जप तप जाग बनावत।
मो सम मंद महा खल पाँवर कौन जतन तेहि पावत ?
हरि निर्मल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तह आवत ॥
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत।
तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत ॥

१८५—सावत = सवति भाव, डाह, ईर्षा

भव-सरिता कहँ नाव संत यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिन सों करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत॥
नाहिंन और ठहर मो कहँ तातें हठि नातो लावत।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि तुलसिदास गुन गावत॥ १८५॥

कौन जतन विनती करिए।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिए॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिए।
जातें विपति-जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिए॥
जानत हूँ मन बचन कर्म पर हित कीन्हें तरिए।
सो विपरीत देखि परसुख बिनु कारन ही जरिए॥
स्रुति पुरान सब को मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिए।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहि न आदरिए॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भव-निधि परिए।
कहो अब नाथ! कौन बल तें संसार-सोक हरिए॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिए।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि पचि मरिए॥१८६॥

ताहि तें आयो सरन सवेरे।
ज्ञान-बिराग-भगति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे॥
लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरे।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे॥
दोष-निलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥
बिष पियूष सम करहु, अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।

तुलसिदास यह विपति-बाँगुरो तुमहि सों बनै निवेरे ॥१८७॥

मैं तोहिं अब जान्यों, संसार !
बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल प्रगट कपट-आगार ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किए विचार।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोरयो हौं बारहि बार ॥
सुनु खल छल बल कोटि किए बस होहिं न भगत उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं व्यवहार ॥
निज हित सुनु सठ! हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभु के दासन तजि भजहि जहाँ मद मार ॥१८८॥

राग गौरी

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे!
बिषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे!
मंद बिलंद अमेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे!
काँट कुराय लपेटन लोटन ठांवहि ठाँउँ बझाऊ रे!

१८७—बाँगुरो = जाल।

१८९—अटखट = गड़बड़। सरल = सड़ा हुआ। दिहल = दिया। मंद = नीचा। बिलंद = ऊँचा। अमेरा = धक्का। दलक = झटका। कुराय = कंकड़ी। लपेटन = पैरों में लिपटजानेवाला तृण। लोटन = सरीसृप, साँप। बझाऊ = बझाव, उलझन।

जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे !
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे !
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ! ॥१८९॥

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह।
तातें भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥
ज्यौं मुख मुकुर बिलोकिए अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहुँ न आपने ये मातु पिता सुत नारि ॥
दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक, तनु सेत ॥
करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुबीर सो नेह निबाहनिहार ॥
जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि।
तातें कछु समझ्यो नहीं कहा लाभ कह हानि ॥
साँचो जान्यो झूठ को, झूठे कहँ साँचो जानि।
को न गयो, को न जात है, को न जैहै करि हितहानि ॥
बेद कह्यो, बुध कहत हैं अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिये की आँखिन हेरि ॥१९०॥

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम कनौड़ो राम सो नहिं दूसरो दयालु ॥
तन साथी सब स्वारथी, सुर ब्यवहार-सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान ॥
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकर बड़े, पयद प्रेमपथ क्रूर ॥
जाको मन जासों बँध्यो ताको सुखदायक सोइ।

१९०—खरि = खली सीठी।
१९१—समचर = एक सा व्यवहार करनेवाला। सिखी = मोर।

सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ॥
सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग विसेखि॥
खग सबरी पितु मातु ज्यों माने, कपि को किए मीत।
केवट भेट्यो भरत ज्यों ऐसो को कहु पतित-पुनीत॥
देइ अभागहिं भाग को, को राखै सरन सभीत।
वेदविदित बिरुदावली, कवि कोविद गावत गीत॥
कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो दाम सो परयो न फिरि खर खोट॥
मन-मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज।
सो तुलसी कियो आपनो रघुबीर गरीबनिवाज॥१६१॥

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेह न नीच।
स्वारथ परमारथ कहाँ ? कलि कुटिल बिगोयो बीच॥
धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान।
करतब बिनु बेष देखिए ज्यों सरीर बिनु प्रान॥
बेद-विदित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनु बारि॥
नाना पथ निरबान के, नाना विधान बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु रामनाम दिन राति॥१६२॥

अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू, कब खीझि दई तोहिं गारि।
दरपन बदन निहारि कै सुविचार मान हिय हारि॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरत पल लगै न आधु।
'पाहि कृपानिधि !' प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु॥

१६१—दिवान = दरबार। किलविषी = दोषयुक्त, पापी।

बालमीकि-केवट-कथा, कपि-भील-भालु-सनमान ।
सुनि सनमुख जो न राम सों तिहि को उपदेसहि ज्ञान ॥
का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति-निरबाहु ?
जासु बंधु बध्यो ब्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ॥
भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियो रघुराज !
राम गरीबनिवाज के बड़ी बाँह-बोल की लाज ॥
जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चालु ।
सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन पुलक सरीर ।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भवभीर ?
प्रभु कृतज्ञ सरबज्ञ हैं, परिहरु पाछिली गलानि ।
तुलसी तोसों राम सों कछु नई न जान पहिचानि ॥१९३॥

जो अनुराग न राम सनेही सों । तो लह्यो लाहु कहा नर देही सों ॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भए सुमति राम अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किए अघ अवगुन-उदधि अभागी ॥
ज्ञान बिराग जोग जप तप मख जग मुद-मग नहिं थोरे ।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे ॥
लोक बिलोकि, पुरान बेद सुनि, समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति रामपद-पंकज सकल सुमंगल-खानी ॥
अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय होइ पलक महँ नीको ।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसी को ॥१९४॥

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजै कृपा आपनी नाईं ॥
परमारथ सुरपुर-साधन सब स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव बिषाद अधिकाई ।

१९४—मुद-मग = मंगल के मार्ग ।

रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई ॥
आधि-मगन मन, ब्याधि-विकल तन, बचन मलीन झुठाई ।
एतेहुँ पर तुम सों तुलसी को प्रभु सकल सनेह सगाई ॥१९५॥

काहे को फिरत मन करत बहु जतन,
मिटै न दुख बिमुख रघुकुल-बीर ।
कीजै जो कोटि उपाइ त्रिविध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाइ मुनिवर-कीर ॥
सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखु बिचारि,
मिलै न मथत वारि घृत बिनु छीर ।
समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥
आगम निगम ग्रंथ, ऋषि मुनि सुर संत
सबही को एक मत सुनु, मतिधीर ।
तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥१९६॥

नाहिंन चरन रति ताहि तें सहौं बिपति
कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर ।
बसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग
ताहि क्यों भ्रम निरखि रबिकर-नीर ? ॥
सुनिय नाना पुरान मिटत नाहिं अज्ञान
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर ।
बझत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥
कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम, विधि

१९६—मुनिवर कीर = शुकदेवजी । हीर = गूदा, सार ।

नहिं जप तप बस मन, न समीर।
तुलसीदास भरोस परम करुना-कोस
प्रभु हरिहैं विषम भवभीर ॥१९७॥

भैरवी

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही तें।
अंतहुँ तोहिं तजैंगे, पामर! तू न तजै अबही तें ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी तें ॥१९८॥

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन-सरोज सुधारस रविकर-जल लय लायो ॥
त्रिजग, देव, नर, असुर, अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भए बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥
जातें निरय-निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ कटै भवबंधन, सो मगु तोहिं न बतायो ॥
अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहु विधि डहँकायो।
पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो ?
विषयहीन दुख, मिले बिपति अति, सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत-पावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो ॥
छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु बृथा गँवायो।

१९७—समीर = प्राण वायु, जिसे योगी वश में करते हैं।

१९९—निरय = नरक। प्रेत-पावक = दलदलों और मैदानों में रात को दिखाई देता हुआ लुक जिसे आग समझकर लोग धोखा खाते हैं।

तुलसिदास हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥१९९॥

तांबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो।
नीच! मीचु जानत न सीस पर, ईस निपट बिसारयो॥
अवनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत को न इन्हहि अपनायो
काके भए गए सँग काके सब सनेह छल-छायो॥
जिन्ह भूपनि जग जीति, बाँधि जम अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हेँ, तू गिनती कब आयो?
देखु बिचारि सार का सांचो, कहा निगम निजु गायो।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो॥२००॥

लाभ कहा मानुष तनु पाए।
काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाए।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाए॥
परदारा, परद्रोह, मोहबस किए मूढ़ मन भाए।
गर्भबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराए॥
भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गवाए॥
गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाए।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताए? ॥२०१॥

काज कहा नरतनु धरि सारयो?
पर-उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न बिचारयो॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोग फल, भवतरु टरै न टारयो।
राम-भजन तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवारयो॥

२००—तांबे...पायो=मानो तांबे से मढ़ी पीठ लेकर आया, अर्थात् शरीर का नाश नहीं होगा। निजु=प्रधानतः, विशेष रूप से।

२०१—घटत=काम आता है।

संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि निज-आतमा न तारयो।
जनम अनेक बिबेकहीन बहु जोनि भ्रमत नहिं हारयो॥
देखि आन की सहज संपदा द्वेष-अनल मन जारयो।
सम दम दया दीन-पालन सीतल हिय हरि न सँभारयो॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम वचन बिसारयो।
तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो॥२०२॥

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान॥
परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरि पूरि॥
दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर।
बिगत मोह माया मद हृदय बसत रघुबीर॥
तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद।
गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानंद॥
चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन, चित अहँकार।
बिमल बिचार परमपद निज सुख सहज उदार॥
पाँचईं पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप॥
इन्ह कर कहा न कीजिए बहुरि परब भवकूप॥
छठि षट्वर्ग करिय जय जनकसुता पति लागि।
रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि॥
सातैं सप्तधातु-निर्मित तनु करिय बिचार।
तेहि तनु केर एक फल, कीजै पर-उपकार॥
आठईं आठ-प्रकृति-पर निर्बिकार श्रीराम।
केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहु काम॥
नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख दीन्ह॥

दसइँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि ।
साधन वृथा होइँ सब मिलहिं न सारँगपानि ॥
एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ ।
सोइ ब्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ ॥
द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक ।
परहित-निरत सो पारन बहुरि न ब्यापत सोक ॥
तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत ।
मन-क्रम-बचन-अगोचर, व्यापक, व्याप्य, अनंत ॥
चौदसि चौदह भुवन अचरचर रूप गोपाल ।
भेद गए बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ॥
पूनौं प्रेमभगति-रस हरिरस जानहिं दास ।
सम सीतल गत-मान ज्ञानरत बिषय उदास ॥
त्रिबिध सूल होलिय जरै, खेलिय अस फागु ।
जो जिय चहसि परम सुख तो यहि मारग लागु ॥
श्रुति-पुरान-बुध-संमत चाँचरि चरित मुरारि ।
करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥
संसय-समन दमन-दुख सुखनिधान हरि एक ।
साधुकृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाइ अनेक ॥
भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन ।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥ २०३ ॥

राग कान्हरा

जौ मन लागै रामचरन अस ।
देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस ॥
द्वंद-रहित, गत-मान, ज्ञानरत, बिषय-बिरत खटाइ नाना कस ।

२०३—चाँचरि = फाग के स्वाँग ।
२०४—खटाइ = परीक्षा में पूर्ण उतरे । कस = जाँच, परीक्षा ।

सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस ?
सर्व भूतहित निर्व्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक-रस।
तुलसिदास यह होइ तबहि जब द्रवै ईस जेहि हतो सीसदस ॥२०४॥

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु।
तौ तजि बिषय बिकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ए चारि दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसष करि परिहरु॥
स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अगजग-रूप भूप सीतावरु॥
इहै भगति बैराग्य ज्ञान यह हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥२०५॥

नाहिंन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति सम बिपति-निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवक-बस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ?
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत-चिंतामनि बिरद पुनीत पतितजन-तारन॥
सुमिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न।
साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसुता अरु बारन॥
जाको जस गावत कवि कोविद, जिन्हके लोभ मोह मद मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिबधू-उधारन ॥२०६॥

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिंन।
आनँदभवन दुखदमन सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहिं न॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूँ जे समाहिं न।
सुमिरत नाम बिबस हू बारक पावत सो पद जहाँ सुर जाहिं न॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहिं न।
तुलसिदास सठ तेहिं न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥२०७॥

राग कल्यान

नाथ सों कौन विनती कहि सुनावौं ?
विविध अनगनित अवलोकि अघ आपने
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥
विरचि हरि-भगति को वेष वर टाटिका
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं।
नाम-लगि लाइ, लासा-ललित-बचन कहि
व्याध ज्यों विषय-विहँगनि बझावौं ॥
कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर वारियहि,
साधुगनती में पहिलेहिं गनावौं।
परम बर्बर खर्वगर्व-पर्वत चढ़्यो
अज्ञ सर्वज्ञ जनमनि जनावौं ॥
साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ
कोउ राम रावरो हौंहुँ तुम्हरो कहावौं।
बिरद की लाज करि दासतुलसिहि, देव !
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥२०८॥
नाहिनै नाथ अवलंब मोहिं आन की।
करम मन बचन पन सत्य, करुनानिधे!
एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥
कोह मद मोह ममतायतन जानि मन,
बात नहिं जाति कहि ज्ञान विज्ञान की।
काम-संकल्प उर निरखि बहु बासनहि
आस नहिं एक हू आँक निरवान की ॥

२०८—टाटिका = टट्टी। लगि = लग्गी, बाँस की लंबी छड़। जनमनि = मनुष्यों में श्रेष्ठ।

२०९—एक हू आँक = सोलह आने में एक आना भी, कुछ भी।

वेद-बोधित करम धरम बिनु, अगम अति
जदपि, जिय लालसा अमरपुर जान की।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन
द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की॥
भगति दुरलभ परम, संभु सुक मुनि मधुप,
प्यास पदकंज-मकरंद-मधु पान की।
पतित-पावन सुनत नाम बिश्रामकृत
भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की॥
नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहिं,
भूप! मोहिं सक्ति आपान की।
दासतुलसी सोउ त्रास नहिं गनत मन
सुमिरि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की॥२०६॥

और कहँ ठौर, रघुबंसमनि मेरे?
पतित-पावन प्रनत-पाल असरन सरन
बाँकुरे बिरद बिरुदैत केहि केरे॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम कै
करत नहिं कान बिनती बदन फेरे।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं, करुनासिंधु!
क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिन हेरे॥
मुख्य रुचि होति बसिबे की पुर रावरे,
राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे।
अगम अपबर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,
नाम-बल क्यों बसौं जमनगर नेरे?
कतहुँ नहिं ठाउँ कहँ जाउँ, कोसलनाथ!
दीन बितहीन हौं बिकल बिनु डेरे।

२०६—आपान की = अपनी।

दास तुलसिहिं बाम देहु श्रब करि कृपा,
　　बसत गज गीध व्याधादि जेहि खेरे ॥ २१० ॥
　　कबहुँ रघुबंस-मनि सो कृपा करहुगे ?
जेहि कृपा व्याध गज बिप्र खल नर तरे
　　तिन्हहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे ॥
जोनि बहु जनमि किए करम खल बिबिध बिधि,
　　अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे ।
दीनहित अजित सर्बज्ञ समरथ प्रनतपाल,
　　चित-मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥
मोह मद मान कामादि खल-मंडली,
　　सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ।
जोग जप ज्ञान बिज्ञान तें अधिक अति,
　　अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥
मंदजन-मौलि-मनि, सकल-साधनहीन,
　　कुटिल-मन, मलिन-जिय जानि जो डरहुगे ।
दासतुलसी बेद-बिदित बिरुदावली,
　　बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ? ॥ २११ ॥

राग केदारा

　रघुपति बिपति-दवन ।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन ॥
कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन ॥
गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ?
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥२१२॥
　हरि सम आपदाहरन ।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह-दुखसागर-तरन ॥

[illegible] चरन ।
[illegible] सुनाभ-धरन ॥
[illegible] करन ।
[illegible] हरन ॥
[illegible] सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥२१३॥

राग कल्याण

ऐसी कौन प्रभु की रीति ।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥
काममोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह ।
जगतपिता बिरंचि जिन्हके चरन की रज लीन्ह ॥
नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।
कियो लीन सु आपु में हरि राजसभा मँझारि ॥
ब्याध चित दै चरन मारयो मूढ़मति मृग जानि ।
सो सदेह सुलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।
प्रगट पातक-रूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥ २१४ ॥

श्री रघुवीर की यह बानि ।
नीचहूँ सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥
परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ?
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि ॥
गीध कौन दयालु जो बिधि रच्यो हिंसा सानि ?
जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि ॥

२१३—सुनाभ = चक्र ।

प्रकृति-मलिन कुजाति सवरी सकल अवगुन-खानि ।
खात ताके दिए फल अति रुचि बखानि बखानि ॥
रजनिचर अरु रिपु विभीषन सरन आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥
कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि ।
किए ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥
राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिन दानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥२१५॥

हरि तजि और भजिए काहि ?
नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ॥
कनक-कसिपु विरंचि को जन करम मन अरु बात ।
सुतहिं दुखवत विधि न बरज्यो काल के घर जात ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिए दस सीस ।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥
और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत ।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥
को न सेवत देत संपति ? लोक हू यह रीति ।
दास तुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ॥२१६॥

जो पै दूसरो कोउ होइ ।
तो हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ?
काहि ममता दीन पर, को पतितपावन नाम ?
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ?
रहे संभु विरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।
सोक-सरि बूड़त करीसहिं दई काहु न टेक ॥
बिपुल भूपति-सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि!'

२१७—करीस = गजराज । सदसि = सभा । नर-नारि = अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी ।

सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥
एक मुख क्यों कहौं करुना-सिंधु के गुनगाथ ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ॥
आप से कहुँ सौंपिए मोहिं जौ पै अतिहि घिनात ।
दासतुलसी और विधि क्यों चरन परिहरि जात ?॥२१७॥

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल, सकल-मंगल-करन ॥
सरदभव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज-बरन ।
लच्छि लालित ललित करतल छवि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट बटु बलि-छरन ।
विप्रतिय, नृग, बधिक के दुखदोष दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-वृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारनतरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥२१८॥

द्वार हौं भोर ही को आज ।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥
कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज ॥
हहरि हिय में सदय बूझ्यो जाइ साधु-समाज ।
मोहुँ से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज ॥
दीनता दारिद दलै को कृपा बारिधि बाज ।
दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिरताज ॥

२१८—लच्छि = लक्ष्मी ।

२१९—रिरिहा = रट लगा कर और गिड़गिड़ा कर माँगनेवाला । आरि = टेक, हठ । बाज = बिना, बग़ैर ।

जनम को भूखो भिखारी हौं गरीबनेवाज ।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज ॥२१९॥

करिय सँभार, कोसलराय !
और ठौर, न और गति, अवलंब नाम बिहाय ॥
बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय ।
राम राउर नाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय ॥
रामराज न चले मानस-मलिन के छल-छाय ।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय ॥
लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय ।
त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥
अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय ॥
कृपासिंधु बिलोकिए जन-मन की साँसति साय ।
सरन आयो, देव दीनदयालु ! देखन पाय ॥
निकट बोलि न बरजिए बलि जाउँ हनिय न हाय ।
देखिहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय ॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय ।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥
बिनय सुनि बिहँसे अनुज सों वचन के कहि भाय ।
भली कही कह्यो लषन हूँ हँसि, बने सकल बनाय ॥
दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय ।
मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय ॥
पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय ।

२२०—गोमाय = गोमायु, गीदड़ । कुदाय देत = घात करता है । साय = जाय या शांत हो । गोमुख नाहर न्याय = ऊपर से गाय की तरह सीधा, पर असल में व्याघ्र के समान क्रूर ।

दास तुलसी कहत मुनिगन, 'जयति जय उरगाय' ॥२२०॥

नाथ-कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति ॥
सुगुन, ज्ञान, बिराग, भगति सुसाधननि की पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननि की थाति ॥
अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ तें ताति।
जाउँ कहँ बलि जाउँ? कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति ॥
आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुखाति ॥ २२१ ॥

बलि जाउँ, और कासों कहौं?
सदगुन-सिंधु स्वामि सेवक-हितु कहुँ न कृपानिधि सो लहौं ॥
जहँ जहँ लोभ लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥
काल सुभाव करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।
मोको तो सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥
उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ-किंकर न हौं।
अब रावरो कहाय न बूझिए सरनपाल सांसति सहौं ॥
महाराज राजीव-बिलोचन मगन-पाप-संताप हौं।
तुलसी-प्रभु जब तब जेहि तेहि बिधि राम निबाहे निरबहौं ॥२२२॥

आपनो कबहुँ करि जानिहौ।
राम गरीब-निवाज राजमनि बिरद-लाज उर आनिहौ ॥
सील सिंधु सुंदर सब लायक समरथ सदगुन-खानि हौ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ ॥
बेद पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन दानि हौ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ ॥

२२०—उरगाय = विष्णु।

आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौं।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत-भय भानिहौ ॥ २२३ ॥

रघुवरहिं कबहुँ मन लागिहै ?
कुपथ, कुचाल, कुमति; कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै ?
जानत गरल अमिय विमोहवस, अमिय गनत करि आगि है ॥
उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै।
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक रामप्रेम-पाग पागि है ॥
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह माँगिहै।
तू यहि विधि सुख-सयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागिहै ॥२२४॥

भरोसो और आइहै उर ताके।
कै कहुँ लहै जो रामहिं सो साहिब, कै अपनो बल जाके।
कै कलिकाल कराल न सूझत मोह-मार-मद-छाके ॥
कै सुनि स्वामि-सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अँग थाके।
हौं जानत भलि भाँति अपनपौ, प्रभु सो सुन्यो न साके ॥
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर भले भए करतब काके ?
मोको भलो रामनाम सुरतरु सो रामप्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के ॥२२५॥

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ॥
करम, उपासन, ज्ञान बेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अंधहिं ज्यों सूझत रंग हरो ॥
चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।

२२३—भानिहौ = भंजन करोगे, नष्ट करोगे।
२२६—कुंजरो नरो = नरो वा कुंजरो वा; दुविधा या संदेह।

सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो ॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो ।
मेरे ते माय बाप दोउ श्राखर हौं सिसु-श्ररनि श्ररो ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।
श्रपनो भलो राम नामहिं तें तुलसिहिं समुझि परो ॥२२६॥

नाम राम रावरोई हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे ॥
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो श्रवडेरे ।
मोहुँ से कोउ कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे ?
फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे ।
नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल श्रब हौं बबुर बहेरे ॥
साधत साधु लोक परलोकहि, सुनि गुनि जतन घनेरे ।
तुलसी के श्रवलंब नाम को एक गाँठि कई फेरे ॥२२७॥

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो ।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ श्रादि मध्य परिनामो ॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो ।
रामनाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृतसील भील-भामो ॥
बालमीकि श्रजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ।
उलटे पलटे-नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो ॥
राम तें श्रधिक नाम-करतब जेहिं किए नगर-गत गामो ।
भए बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥ २२८ ॥

२२७—श्रवडेरे = चक्करदार, बेढब ।

२२८—भीलभामो = भील की स्त्री शबरी भी । सामो = सामग्री । ललामो = रत्नों के आभूषण ।

गरैंगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकी-जीवन ! जनम जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।
तुम्हसों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं ॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भौंतुवा भौंर को हौं ।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं ॥२२९॥

अकारन को हितु और को है ?
बिरद गरीब-निवाज कौन को भौंह जासु जन जोहै ?
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो बिरंचि बिरचो है ।
कोल कुटिल कपि भालु पालिवो कौन कृपालुहि सोहै ?
काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै ?
को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ? ॥२३०॥

और मोहि को है काहि कहिहौं ?
रंकराज ज्यों मन को मनोरथ केहि सुनाइ सुख लहिहौं ?
जम-जातना जोनि-संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।
मोको अगम, सुगम तुम्हको प्रभु ! तउ फल चारि न चहिहौं ॥
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ॥
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिए तुलसी को पन निर्बहिहौं, ॥२३१॥

दीनबंधु दूसरो कहँ पावों ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावों ? ॥
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।

२२९—जोर = जोड़ । भौंतुवा = जौ के बराबर एक काला कीड़ा जो नदियों में तैरा करता है; ये नावों के निकट झुंड के झुंड दिखाई देते हैं ।

२३१—पानही = जूता ।

इहै समुझि सुनि रहौं मौन ह्वै, कहि भ्रम कहा गँवावों ?॥
गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों।
अति लालची काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनौ कछुक जनावों।
सो कीजै जेहिं भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावों॥ २३२॥

मनोरथ मन को एकै भाँति।
चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति॥
करमभूमि कलि जनम कुसंगति मति बिमोह मद माति।
करत कुजोग कोटि क्यों पैयत परमारथ-पद-साँति॥
सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुखकाँति॥२३३॥

जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौवन जुवतिन लियो जीति।
रोग-बियोग-सोक-स्रम-संकुल बड़ि वय वृथहि अतीति॥
राग-रोष-इरषा-बिमोह बस रुची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति॥२३४॥

ऐसेहि जन्म-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पाँय पिराने।

२३२—अपनौ = आप भी।
२३४—अतीति = बीत गई। समीति = समिति, समाज।

सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिरानै॥
यह दीनता दूरि करिबे को अमित जतन उर आनै।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचानै॥२३५॥

जो पै जिय जानकीनाथ न जानै।
तौ सब करम धरम श्रमदायक, ऐसेइ कहत सयानै॥
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद पुरान बखानै।
पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमानै॥
काको नाम धोखेहूँ सुमिरत पातक-पुंज सिरानै।
बिप्र, बधिक, गज, गीध कोटि खल कौन के पेट समानै॥
मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आनै।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयानै॥२३६॥

काहे न रसना रामहि गावहि?
निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि॥
नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि?
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन-कलंक नसावहि॥
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि।
सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम नृपहि पहिरावहि॥
बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि॥
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि॥२३७॥

आपनो हित रावरे सों जो पै सूझै।
तौ जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै॥
निज अवगुन, गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै?॥२३८॥

२३८—रूझै=रुद्ध होता है, रुकता है।

जाको हरि दृढ़ करि अंग करयो ।
सोइ सुसील पुनीत वेदबिद बिद्या-गुननि-भरयो ॥
उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपंथ डरयो ।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि सुनि लोक तरयो ॥
जो निज धर्म वेद-बोधित सो करत न कछु बिसरयो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधरयो ॥
ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो* ।
अजर अमर कुलिसहुँ नाहिंन बध सो पुनि फेन मरयो† ॥
बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगरयो ?
उनको कियो सहाय बहुत, उर को संताप हरयो ॥
गनिका अरु कंदर्प तें जग महँ अघ न करत उबरयो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धरयो ॥
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तो न जानि परयो ।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो ॥ २३९ ॥

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे ।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे ?
कबहुँ न डरयो निगम-मग तें पग नृग जग जान जिते दुख पाए ।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सुनाभ बाहन तजि धाए ॥
सुर मुनि बिप्र बिहाय बड़े कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो ।
बायों दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो ॥

२३९—अंग करयो = अंगीकार किया । कृकलास = गिरगिट । कूपमज्जित = कूएँ में पड़ा हुआ (राजा नृग) । उधरयो = उद्धार किया । ब्रह्मबिसिख = ब्रह्मास्त्र । * राजा परीक्षित । † नमुच दैत्य को इंद्र ने समुद्र की फेन से मारा था । खरयो = खड़ा खड़ा ।

२४०—करसी = कंडे की आग । जंगली कंडों की आग में जल कर मरना बड़ा भारी तप माना जाता था । सुनाभ = चक्र । बायों दियो = किनारा खींचा, छोड़ दिया ।

मानत भलहि भलो भगतनि ते, कछुक रीति पारथहिं जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम बस और सबै जल की चिकनाई॥ २४० ॥

तब तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति देते।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सादर आगे ह्वै लेते॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये ताको भे ते।
लियो छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गए रिसरेते॥
गोतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि है नाथहि नीके मालुम जेते।
तिन्ह के काज साधु-समाज तजि कृपासिंधु तब तय उठि गे ते॥
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते?
मेरे पासंगहु न पूजिहैं, ह्वै गए, हैं, होने खल जेते॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते॥२४१॥

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई!
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन! कुटिलाई॥
हौं मन बचन कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितनि-गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथहित, चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई।
हौं सभीत, तुम हरन सकल भय, कारन कौन कृपा बिसराई?॥
तुम सुखधाम राम समभंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई।२४२।

यहै जानि चरनन्हि चित लायो।
नाहिंन नाथ अकारन को हितु तुम समान पुरान स्रुति गायो॥
जननि, जनक, सुत, दार, बंधुजन भए बहुत जहँ जहँ हौं जायो।

२४१—भे=भय। गे ते=गए थे। पूतरो बाँधिहै=भाट लोग जिससे कुछ न पाकर अप्रसन्न होते हैं उसके नाम का पुतला बनाकर उसकी निंदा करतेहुए लिए फिरते हैं।

सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥
सुर, मुनि, मनुज, दनुज, अहि, किन्नर मैं तनुधरि सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप-पापबस काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो ॥
जतन अनेक किए सुख-कारन हरिपद-विमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपतिजाल जग छायो ॥
मो कहँ नाथ! बूझिए यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो।
अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो ॥२४३॥

याहि तें मैं हरि! ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय-कमल-रघुनाथहिं बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौं आयो ॥
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ॥
व्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो ॥
तुम सम ज्ञाननिधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥२४४॥

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस वृथहिं मंदमति बारि बिलोयो ॥
करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास-निचोयो ॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ॥२४५॥

२४५—बिगोयो = बिगाड़ा, नष्ट किया। बिलोयो = मथा।

लोक बेदहूँ बिदित बात सुनि समुझि
मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति ।
छोटे बड़े, खोटे खरे मोटेऊ दूबरे
राम ! रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥
होती जो आपने बस रहती एकही रस
दुनी न हरख सोक साँसति सहति ।
चहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई
केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥
करम काल सुभाव गुन दोष जीव-जग-माया
तें सो सभय भौंह चकित चहति ।
ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनिहूँ
छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति ॥
सतरंज को सो राज, काठ को सबै समाज
महाराज बाजी रची प्रथम न हति ।
तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ !
बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥ २४६ ॥
राम जपु, जीह ! जानि, प्रीति सों प्रतीति मानि,
राम नाम जपे जैहै जिय की जरनि ।
रामनाम सों रहनि, रामनाम की कहनि,
कुटिल-कलिमल-सोक-संकट-हरनि ॥
रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराउ कही आपनी करनि ।
भवसागर को सेतु, कासी हूँ सुगति हेतु,
जपति सारद संभु सहित घरनि ॥
बालमीकि ब्याधहू अगाध-अपराध-निधि,

२४६—राज = राजा ।

मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल,
हारो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥
नाम-महिमा अपार सेष सुक बार बार
मति-अनुसार बुध बेद हुँ बरनि ।
नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु
रामनाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥ २४७ ॥

पाहि पाहि ! राम पाहि ! रामभद्र रामचंद्र
सुजस श्रवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीनबंधु ! दीनता-दरिद्र-दाह-दोप-दुख
दारुन-दुसह-दर-दरप-हरन ॥
जब जब जगजाल-व्याकुल करम काल
सब खल भूप भए भूतल-भरन ।
तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि
थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन ॥
बेद लोक सब साखी, काहू की रती न राखी,
रावन की बंदि लागे अमर मरन ।
ओक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ
रामराज भयो धरम चारिहु चरन ॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर
ख्याल ही कृपालु कीन्हें तारन-तरन ।
पील-उद्धरन सीलसिंधु ढील देखियत
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ २४८ ॥

भली भाँति पहिचाने जाने साहिब जहाँ लौं जग
जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम ।

२४८—दर = डर । भूतल-भरन = पृथ्वी के भार । रती = तेज, कांति ।

प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाहीन सब किए कालहू करम ॥
दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े
जीते लोकनाथ नाथबल निभरम।
रीझि रीझि दिए बर खीझि खीझि घाले घर,
आपने निवाजे की न काहू को मरम ॥
सेवा-सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सदगुन-धाम राम पावन परम।
सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहि
विदित विसेषि घटघट के मरम ॥
तो सो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो सो,
दया में बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माहँ
तुलसी विकल बलि कलि कुधरम ॥ २४९ ॥
तौ हौं बारबार प्रभुहिं पुकारिकै खिझावतो न
जोपै मोको होतो कहूँ ठाकुर ठहरु।
आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे
राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु ॥
सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी
हित कै न माने विधि हरिउ न हरु।
रामनाम ही सों जोग छेम, नेम प्रेम-पन
सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु ॥
समाचार साथ के अनाथ-नाथ! कासों कहौं?
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु।

२४९—निभरम = निःशंक।
२५०—जोग छेम = योग क्षेम, प्राप्ति और रक्षा। गहरु = विलंब, देर।

निज काज, सुरकाज, आरत के काज राज !
बूझिए बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥
रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों
डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु ।
कहेही बनैगी, कै कहाए बलिजाउँ, राम !
'तुलसी तू मेरो हारिहिये न हहरु' ॥२५०॥

राम रावरो सुभाउ, गुनसील महिमा प्रभाउ
जान्यो हर हनुमान लखन भरत ।
जिन्हके हिये-सुथल राम-प्रेम-सुरतरु
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाय भाइ पति
ते सनेह-सावधान रहत, डरत ।
साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परमिति नीति
नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥
सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं
राम की भगति बड़ी बिरति-निरत ।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ
समुझि सयाने नाथ ! पगनि परत ॥
छ-मत बिमत, न पुरान मत, एक मत
नेति नेति नेति नित निगम करत ।
औरनि की कहा चली ? एकै बात भले भली
रामनाम लिए तुलसी हूँ से तरत ॥२५१॥

आप आपने करत मेरी घनी घटि गई ।
लालची लबार की सुधारिए बारक, बलि,

२५१—बिरति-निरत = विषयों से विरक्ति में तत्पर होने से । छ-मत = छ दर्शनों के मत । बिमत = विरुद्ध मत ।

रावरी भलाई सबही की भली भई ॥
रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिनमन,
पर-अपवाद मिथ्या-वाद बानी हई।
साधन की ऐसी विधि, साधन बिना न सिधि,
बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ॥
पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबंधु दई।
इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो,
ताहि तें त्रिताप तयो लुनियत बई ॥
स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि तें अधिक,
परलोक-फीकी मति लोकरंग-रई।
बड़े कुसमाज राज आजुलौं जो पाए दिन
महराज केहूँ भाँति नाम-ओट लई ॥
रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न विधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ २५२ ॥

राम! राखिए सरन, राखि आए सब दिन।
बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो,
आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन ?॥
लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी
नाथ पै अनाथनि सों भए न उरिन।
स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो,
काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥
खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार
'तुलसी तू मेरो', बलि, कहियत किन ?

जाहि सूल निरमूल होहिं सुख अनुकूल,
महाराज राम रावरी सौं तेहि छिन ॥२५३॥

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद
रामनाम-प्रेम-पन अविचल वितु है॥
सतकोटि चरित अपार दयानिधि ! मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहूँ फल को फल,
सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो क्रतु है॥
स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम
रामनाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाय कही, साँचियै परैगी सही
सीतानाथ-नाम चित हूँ को चितु है॥ २५४॥

राम ! रावरो नाम साधु-सुरतरु है।
सुमिरे त्रिबिध धाम हरत, पूरत काम
सकल-सुकृत-सरसिज को सरु है॥
लाभहू को लाभ, सुखहू को सुख सरबस,
पतित-पावन, डरहू को डरु है।
नीचे हू को, ऊँचे हू को, रंक हू को, राव हू को
सुलभ सुखद आपनो सो घरु है॥
वेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो
नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है।
ऐसे रामनाम सों न प्रीति न प्रतीति मन
मेरे जान जानिवो सोइ नर खरु है॥
नाम सो न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु

२५४—क्रतु = यज्ञ।

साहिब सुधी सुसील-सुधाकरु है।
नाम सों निबाहु नेहु दीन को दयालु देहु
दास तुलसी को, बलि, बड़ो बरुहै ॥२५५॥

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत।
तुम से सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो
काल की करम की कुसाँसति सहत ॥
करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत ?
नाथ की महिमा सुनि समुझि, आपनी ओर
हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत ॥
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु, आप,
माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत।
मेरी तो थोरी ही है, सुधरैगी बिगरियो,
बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥२५६॥

दीनबंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ,
सब को भलो है, राम ! रावरो चरन ॥
पाहन पसु पतंग कोल भील निसिचर
काँच तें कृपानिधान किए सुबरन।
दंडक-पुहुमि पायँ-परस पुनीत भई,
उकठे बिटप लागे फूलन फरन ॥
पतित-पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव,
दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन।

२५५—बरु = बल।

२५६—सखा न, सुसेवक न = सखा कहिए तो...सेवक कहिए तो आप ही हैं। सौं = कसम। रही रावरी चहत = आपकी बात (साख, मर्यादा) रहे यही चाहता हूँ।

सीलसिंधु ! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा,
तोसों तुही तुलसी को आरतिहरन ॥२५७॥
जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान,
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं॥
मोसे दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।
गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की, बड़ाई
छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरि हौं॥
बड़ो साँइद्रोही, न बराबरी मेरी को कोऊ,
नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं।
दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची,
सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं॥
राखिए नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि,
दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढील किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं॥२५८॥
रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि, बेद की न, लोक कहा कहैगो।
प्रभु को उदास-भाव जन को पाप-प्रभाव
दुहू भाँति दीनबंधु ! दीन दुख दहैगो !
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत परबस को न सहैगो ?
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु !

२५८—गहडोरिहौं = मथ कर गंदला कर दूँगा।

अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो ॥
करमी, धरमी, साधु, सेवक, विरत, रत
आपनी भलाई थल कहां कौन लहैगो ?
तेरे मुहँ फेरे मोसे कायर कपूत कूर
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ? ॥
काल पाय फिरत दसा दयालु! सब ही की,
तोहिं बिनु मोहिं कबहूं न कोऊ चहैगो।
बचन करम हिये कहौं राम सौंह किए
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥२५६॥
साहिब उदास भए दास खास खीस होत,
मेरी कहा चली ? हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं।
लोक में न ठाउँ, परलोक को भरोसो कौन ?
हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥
करम सुभाव काल काम कोह लोभ मोह
ग्राह, अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं।
छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट,
पाहि! प्रभु पाहि! तिहुँ ताप पाप दह्यो हौं ॥
रीझि बूझि सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,
दूध को जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।
रटत रटत लट्यो, जाति पाँति भाँति घट्यो,
जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं ॥
अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो,

२५९—लटे=शिथिल, नीचे गिरे, पतित। लटपटे=गिरते पड़ते।

२६०—खीस होत=नष्ट होते हैं। जाइ रह्यो हौं=नष्ट हो रहा हूँ। मह्यो=मट्ठा। भाँति=मर्यादा, चाल। नह्यो न चहौं=नहाना नहीं चाहता।

नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।
तुलसी समुझि समुझायो मन बारबार
अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निरबह्यो हौं॥२६०॥

मेरी न बनै बनाए मेरे कोटि कलप लौं
राम! रावरे बनाए बनै पलपाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
लिये बेर बदलि अमोल-मनि-आउ में॥
मानस मलीन, करतब कलिमल-पीन,
जीह हू न जप्यों नाम, बक्यो आउ बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलि हूँ भलो,
बाल-दसा हूँ न खेल्यों खेलत सुदाउँ मैं।
देखा-देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई,
प्रगटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं
राग रोप द्वेष पोषे, गोगन समेत मन,
इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मैं।
आगिली पाछिली, अबहूं की अनुमान ही तें
बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं॥
जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हूँ,
झूठे साँचे आसरो साहिब रघुराउ मैं॥२६१॥

कह्यो न परत, बिनु कहे न रहे परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता॥
दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता।

२६१—काउ=कभी।

नाथ-गुनगाथ गाए हाथ जोरि माथ नाए
 नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रधीनता ॥
एहो दरबार है गरब तें सरब-हानि,
 लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
मोटो दसकंध सो न, दूबरो बिभीषन सो,
 बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ॥
यहाँ को सयानप अयानप सहस सम,
 सूधी सत भाय कहे मिटति मलीनता।
गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किए
 होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता ॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
 सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता।
करुनानिधान बरदान तुलसी चहत
 सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥२६२॥
 नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की।
रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेमनेम लियो
 रुचिर रहनि रुचि मति गति तीय की ॥
दुकृत सुकृत बस सबही सों संग पर्‌यो
 परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की।
मेरे भले को गोसाईं पोच को न सोच संक
 हौं किए कहौं सौंह साँची सीयपीय की ॥
ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी
 यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की।

२६२—मिसकीनता=(अ० मिसकीन) नम्रता।

२६३—कीय की=किए की, करनी की।

तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलसी हित
राखि कहौं हौं जो पै तो ह्वैहौं माखीय को ॥२६३॥
मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो ।
चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहुँ काल कहु को है हितु हरि सो ॥
नए नए नेह अनुभए देह-गेह बसि
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत
जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो ॥
बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके
देत एकगुन लेत कोटिगुन भरि सो ।
करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ॥
आदि अंत बीच भलो, भलो करै सबही को
जाको जस लोक बेद रह्यो है बगरि सो ।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान
कैसे कल परै सठ बैठो सो बिसरि सो ॥
जीव को जीवन-प्रान, प्रान को परम हित
प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो ।
तुलसी तोको कृपालु जो कियो कोसलपाल
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥२६४॥
तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सिय-पी को ।
केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होइ नाथ सों नातो नेह न नीको ॥
जल चाहत पावक लहौं, बिष होत अमी को ।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि तमी को ॥
जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनि-घी को ।

सुनि उपचार विकार को सुविचार करौं जब तब बुधि बल हरै ही को ॥
प्रभु सों कहत सकुचत हौं, परौं जनि फिरि फीको।
निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै ख्याल
अब तुलसिदास जड़ जी को ॥ २६५ ॥

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि परयो हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौंहूँ रावरो जदपि अघ अवगुननि भरयो हौं ॥
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि, सुमति तें कुमति करयो हौं॥
अगनित गिरि कानन फिरयों, बिनु आगि जरयो हौं।
चित्रकूटए गए लखी कलि की कुचाल सब, अब अपडरनि डरयो हौं ॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खरयो हौं।
चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा
सुनि, प्रभु सों गुदरि निबरयो हौं ॥२६६॥

प्रन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार परयो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निबरयो हौं ॥
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टरयो हौं।
उदर दुसह सांसति सही बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकरयो हौं ॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अरयो हौं।
तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गरयो हौं ॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भरयो हौं।
तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहरयो हौं॥२६७॥

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै ॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरि है।

२६२—तरनि = सूर्य। समी = शमि।
२६७—मचला = मचलनेवाला हठी।

अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेक ते नहिं टरिहैं ॥
हरषिहैं न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहैं।
हानि लाभ दुख सुख सबै सम चित हित अनहित कलिकुचाल परिहरिहैं ॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहैं, नीर नयननि ढरिहैं।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम
लखि आनंद उमगि उर भरिहैं ॥ २६८ ॥

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को।
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को, हित ज्यों धन लोभ-लीन को ॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को।
त्यों मेरे मन लालसा करिए करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥
मनसा को दाता कहैं स्रुति प्रभु प्रवीन को।
तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ, दयानिधि दीजै दान दीन को ॥२६९॥

कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहूँ चितैहो।
भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि! अवगुन अमित बितैहो ॥
जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही, तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो ॥
बिनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हिते हौ।
तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पिते हौ ॥२७०॥

जैसो हौं तैसो हौं राम! रावरो जन जनि परिहरिए।
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए ॥
हौं तो बिगरायल ओर को, बिगरो न बिगरिए।
तुम सुधारि आए सदा सबको सब बिधि, अब मेरियो सुधरिए।
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए?
कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए ॥

२७०—भितैहो = डरोगे। अपभयहुँ तें = अपने ही डर से।
२७१—ओर को = हद दरजे का। बिगरिए = बिगाड़िए। सुधरिए = सुधारिए।

अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहूँ बिलोचन पीर होति हित करिए ॥२७१॥

तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम ! बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूँ हित मेरो ॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटि न हेरो ॥
भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल-घेरो।
देवनि हूँ देव परिहरयो, अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो ॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात है परी समुझिए धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो ॥
ह्वैहै जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भलेरो।
देव ! दिनहूँ दिन बिगरिहै बलि जाँउ, बिलंब किए अपनाइए सबेरो॥२७२॥

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबंधु सेवक-सखा, आरत अनाथ पर सहज छोहु केहि केरे ?
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।
कृपा, कोप, सति भाय हूँ धोखहुँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ॥
जौं चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे।
तुलसिदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन-अवधि अति नेरे ॥२७

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन को ?
को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को।
गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को।
अधन, अगुन, आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नबीन को।
मुख कै कहा ? कहौं बिदित है जी की प्रभु प्रवीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में, एक टेक रावरी तुलसी से मनमलीन को॥२७४

२७२—अनेरो = व्यर्थ का, निकम्मा।
२७३—सौंधी = रुचिकर, अच्छी।

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम, कियो न सँभाषन काहूँ ॥
तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥
दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर-निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भए भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिना हूँ ।
नाम की महिमा सील नाथ को मेरो भलो
बिलोकि अब तें सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥ २७५ ॥

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम रावरे बिन भए जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ॥
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो ।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, पर्यो न छारहुँ छायो ॥
असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो ।
महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो ॥
नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो ।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निरलज्ज नचायो ॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति थायो ।
मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ॥
दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जसु गायो ।
तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह-बोल दै बिरदावली बुलायो ॥ २७६ ॥

रामराय बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो !
स्वामि सहित सब सों कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो ।

२७५—दुनि = दुनियाँ । ओर-निबाहू = अंत तक निबाह करनेवाला ।
२७६—पटपति = राजा । थायो = ढूँढ़ा ।

किए विचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत वीच बिच काँचो॥
. विनयपत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पाँचो ॥२७७॥
पवन-सुवन, रिपुदवन, भरत लाल, लखन दीन की।
निज निज अवसर सुधि किए बलि जाँउ, दासआस पूजिहै खास खीन की॥
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ गति भए गति-बिहीन की॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहिं परमिति पराधीन की ॥२७८॥
मारुतिमनरुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलि-कालहुँ नाथ नाम सोँ प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैंहूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है ॥२७९॥

२७७—टाँचन=टाँको या डोर्यों से। टाँचो=टँके हुए।
२७९—लै उठी=यही बात कहने लगी।